इतिहास साक्षी है

भगवतशरण उपाध्याय

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६० ई०
मूल्य तीन रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

श्रीमती रमा जैन को

वक्तव्य

इतिहास साक्षी है और इतिहास साक्षी नही है। ये कहानियाँ भी नही है। अधिकतर घटनाएँ है, घटनाएँ इतिहासपर आधारित। कुछ घटनाएँ शुद्ध इतिहासपर आधारित है, कुछ इतिहासके आभासपर। इस प्रकार ये ऐतिहासिक साहित्य प्रस्तुत करती है, इतिहास नही। आशा करता हूँ इससे पाठकोंका मनोरञ्जन होगा। यह भी आशा है कि ये ऐतिहासिक साहित्यका सृजन करनेवाले साहित्यकारोके लिए कच्ची सामग्री भी प्रस्तुत करेगी। इनमे-से अनेक 'इतिहास साक्षी है···' के शीर्षकसे 'धर्मयुग'मे और 'घटनाएँ जो भुलाई न जा सकी' शीर्षकसे 'अमृत पत्रिका' तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'मे छप चुकी है।

काशी
१२।४।६०

—भगवतशरण उपाध्याय

विषय-क्रम

इतिहास साक्षी है

नारीका पहला दर्शन

बात पुरानी है, बहुत पुरानी, इतिहाससे भी पुरानी। तबकी, जब दुनिया ही पुराणोकी थी।

हिमालयकी निचली उपत्यकामे अनेक ऋषि तब आश्रम बना तप-जप किया करते थे। उन्ही आश्रमोमे एक तपोवन ऐसे ऋषिका भी था जो यम-नियमोसे अपने शरीरको असाधारण साध चुके थे। उनका विश्वास सिह और अजशावक समान रूपसे करते थे, समान रूपसे सभी जीव उनका स्नेह पाते थे। उनके मस्तक और दाढीके केश लम्बे और जटिल थे, नथनोसे बाल निकलकर हवामे लहराते और जटा तथा श्मश्रुका कुछ ऐसा योग था कि देखनेवालोकी आँखे बस देखती रह जाती और महर्षिके तेजके सामने मस्तक अपने आप झुक जाता।

तब अयोध्यामे राजा दशरथ राज करते थे। तीन-तीन रानियोके रहते भी उन्हे वशका सुख नसीब न हुआ। बडे-बडे यत्न किये गये, वैद्योने अनेको प्रकारकी ओषधियाँ दी, उपचार किये, ऋषि-महर्षियोने कितने ही मत्र-जोग, क्रिया-अनुष्ठान किये पर तीनो रानियोमेसे एक भी सन्तान प्रदान कर राजाके मनका दुख न मेट सकी और न अपनी ही गोद भर सकी। राजा जब-जब दूसरोको पुत्र-स्नेहसे आर्द्र देखता, पुत्रोको गोदमे लिये पुलकित गात देखता तब-तब उसका आशा-बन्ध टूट जाता और बोझिल मनसे अपने भाग्यको वह कोसता। सरयूमे जब किसीको पिण्डदान या तिलाजलि करते देखता तब उसे अपने पितरोकी याद आती, वंशके क्षीण हो जानेकी। स्वय सूर्यको जलाञ्जलि देते उसकी अजलि काँप जाती, आँसूकी एकाध बूँद उसमे टपक पडती। और सन्ततिके अभावसे संतप्त

राजा मन मारकर कह उठता—"अब पितरोको मीठे जलकी जगह, लगता है, नेत्रोका खारा जल ही मिलेगा !"

केवल मनकी तृष्णा ही, सततिका प्यार ही वशके प्रति राजाके मोहके कारण न थे, कोशलका महाराज्य भी दशरथके बाद स्वामीहीन हुआ चाहता था, इसका भी दु:ख राजा-प्रजा दोनोको कुछ कम न था। पडोसी राज्य अयोध्यापर आँख गडाये थे और कुछ अजब न था कि राजाके देहावसानके पश्चात् पडोसी राजाओकी अभियानमे आई सेनाएँ अयोध्याकी सीमाओपर टकरा जाती। सो दशरथने मन्त्रियोको बुलाया, गुरुवर वसिष्ठसे मनकी बात कही। तब पुरोहितने सुझाया कि अगर ऐसा कोई व्यक्ति राजाका पुत्रेष्टि यज्ञ कराये, जिसका पापने कभी स्पर्श न किया हो, जो सर्वथा निष्कलुष हो, सभी प्रकारसे पुण्यात्मा—तब कही हमारी इच्छा पूरी हो सकती है। पर पाप-पकमे सने ससारमे ऐसा प्राणी मिल भी कहाँ सकता था जिसे पापने छुआ न हो ?

जब कुकृत्योंके परिणामस्वरूप ही प्राणी मर्त्यलोकमे आता है, जब कुकर्म ही उसे जन्म-मरणके बन्धनमे बाँध देते है, जब भवसागर तरनेवालोका एकमात्र आसरा कर्मो-कुकर्मोका अभाव है, तब निश्चय इस धरापर जनमनेवाला हर कोई पापके स्पर्शमे उसकी व्यापक परिधिमे है। इससे प्रकट था कि ऐसा कर्मठ महर्षि न मिलेगा जो मुनिके बताये यज्ञका अनुष्ठान कर सके।

शकित राजाने मुनिसे पूछा—"मुनिवर, ऐसा महाप्राण भला धरापर मिलेगा कहाँ, जिसको पापने स्पर्श न किया हो ?"

त्रिकालदर्शी महर्षिने अपनी व्यापक दृष्टि फैलाई और क्षणभर आँखे मूँद, फिर खोल, कहने लगे—"राजन्, द्वन्द्वोके इस जगत्मे दोनो ही पक्ष वर्तमान है, निराकारका उत्तर साकार है, पापका पुण्य, मृत्युका अमृत, बन्धका मोक्ष। ऐसा पुरुष भी पृथ्वीपर है, जिसपर पापने कभी अपनी छाया नही डाली। मै जो अपने नेत्र फैलाकर देखता हूँ तो हिमगिरिके

अञ्चलमे ऋष्यश्रृङ्ग उस दृष्टिपथमे साकार हो उठता है। पिताके तपोवनमे जन्मसे रहते हुए, नगर-गाँवके प्रभावसे दूर, उस युवा-बालकने साधारण ससारकी वृत्ति नही जानी है। उसने नरकके द्वारस्वरूप नारीका स्पर्श तो क्या उसका मुख भी नही देखा है। और यदि पृथ्वीपर कोई ऐसा है जो तुम्हारे पुत्रेष्टिका उचित ऋत्विज हो सकता है तो बस वही श्रृगी ऋषि है।"

पर जब ऋषिकी स्थिति ऐसी थी कि उसने अपनी युवावस्था तक नारीके दर्शन तक नही किये थे तब भला राजधानीमे उसके आनेकी सम्भावना ही कहाँ थी? और गुरुने कहा भी कि कठिनाई श्रृगीको वहाँसे राजधानीमे लानेकी ही है, क्योकि उसने कभी अबतक आश्रमसे बाहर पग नही डाले है और उसके पिता तपोधन ऋषिवर उसपर और आश्रममे आनेवाले महर्षियोपर सदा वरुणकी-सी दृष्टि रखते है। उस तपोवनमे जाते पापकी काया काँपती है, सभी जीव-जन्तु वहाँ जाते अपना औद्धत्य और ईहा आश्रमके बाहर छोड जाते है। कैसे कार्य सधेगा, यह कहना कठिन है। हाँ, एक ही चीज है, जो श्रृगीको इधर ला सकती है—रूपका मोह। पर रूपका मोह तो उसे है नही, रूप उसने देखा ही नही। फिर भी यदि किसी प्रकार नारी उसके यम-नियमको तोड सके तो सम्भवत हमारा इष्ट सधे। अर्थात्, पुण्यको पापकी छायासे होकर निकलना होगा, पुण्यपर पाप द्वारा क्षण भर ग्रहण लगाना होगा, तभी अयोध्याकी गद्दी राजन्वती हो सकेगी। किन्तु आगे यह बात सोच मै काँप उठता हूँ क्योकि पापकी उत्तेजना अपने उपक्रमसे बाहर है। अब तक मैने 'धर्म' और 'मोक्ष' ही साधा है, यह 'काम' कोई और ही साधे।

महर्षिकी बात राजाकी समझमे आयी! महर्षि राजसभासे उठकर चले गये, राजाने मन्त्रियोकी ओर देखा। एकने सुझाया, वारवनिताएँ यदि वहाँ भेजी जायँ और जो वे अपने सारे हाव-भाव, अपनी समूची चेष्टाएँ,

अपनी अशेष विलास-मुद्राएँ विधिवत् वहाँ विकसित करे तो कुछ आश्चर्य नही जो तरुण मुनिका मन डोल जाय, जो आस्था डिग जाय ।

साम्राज्यके भीतर-बाहरके नगरोमे सुन्दरसे सुन्दर वेश्याओकी खोज होने लगी । ऐसी गणिकाएँ, जिनको देख पुण्यको काठ मार जाय, तप सिहर उठे, तव लाकर मन्त्रियोने अयोध्यामे खडी कर दी । उन्हे देख राजाको लगा कि इष्ट हथेलीमे आ गया है और उसका चित्त गद्गद हो गया ।

कर्णीरथोपर अभिसारकी सारी माया लिये कामकी नायिकाएँ हिमालयकी ओर चली, मन्त्रियोके रथ अनुचर-परिचरोकी छायामे उनके पीछे चले और एक दिन जब सूर्य भगवान् अस्ताचलके पीछे अपनी कमजोर पीली किरणे समेट रहे थे, अयोध्याका वह दल हिमालयकी छायामे जा पहुँचा । महर्पिका तपोवन वहाँसे दूर न था और रातकी चाँदनीमे भी लोगोने देखा कि वहाँके जोव-जन्तु संयत है, कि तपोधन मुनिके तपके ऐश्वर्यसे वहाँके मानव-भिन्न प्राणियों तकके स्वभावमे अन्तर पड गया है ।

प्रात. जब लोगोने नेत्र खोले तव देखा वनकी छटा असाधारण है । ऋतुराजका अनुकूल अवसर तो कार्यकी सिद्धिके लिए वैसे भी चुना गया था पर मधुऋतुका जो वैभव उस वनमे था वह भला अयोध्यामे कहाँ गोचर हो मकता था ? तरु कुसुमोसे लदे थे, लताएं प्रसूनोसे झूम रही थी और मकरन्दकी धारासार वर्पासे वातावरण मह-मह कर रहा था । जीवनके आरम्भके जितने साधन जीवधारी खोज सकता है, सृष्टिके आरम्भकी जितनी विभूति मिथुनको चाहिए वह सब वहाँ प्राप्य थी । किन्नरोके जोडे गिरि-शिखरके प्रपातपर कुलाच रहे थे, सभीता मृगी प्रिय मृगकी सीगोसे मर्म खुजला रही थी, कोकिला कोकिलकी चोचमे चारा डाल पुलकित टेर रही थी । वारागनाओने जाना, अवसर समीचीन है और वे रथोको छोड, जन-सकुल परिवारको छोड, श्रोणिभारसे अलसगमना, मदात्ययसे पग-पग-पर स्खलित होती, सालस नयनोको बार-बार घूर्णित करती, पञ्च-

सायककी मूर्तिमान सेना-सी बालऋषिकी विजयको चली। चराचरकी गति थम गई, पाप और पुण्यका लेखा-जोखा करनेवाला वरुण हाथमे तुला साधे सन्नाटेमे आ चुपचाप तपोवनकी ओर देखने लगा। सृष्टिकी महाविभूतियोसे शृगीका मानस बना था। पापको जीतनेवाला वह महर्षि वरुणका अन्यतम गर्व था। उसकी विजय वरुणकी विजय थी पुण्यकी।

आश्रम शान्त और नीरव था। तप, शम, दम, सयमसे तृष्णाओका सर्वत्र नियत्रण किये था। कामकी सेना एक बार सहसा रुक गई, पर अकेले बालऋषिको देख उसने उसपर धावा किया। शृगीके पिता समिधा लेने गये हुए थे, उनके शीघ्र लौटनेकी कोई सम्भावना न थी, कोई भय न था। पाप अपने भाव-सचरणमे लगा।

लास्यकी मूर्ति गणिकाओके घुँघरू यकायक बज उठे। मृगोने वेदिकाओसे अपने मस्तक ऊपर उठाये और जो देखा तो कुछ ऐसे चकित हुए कि आधे कुचले तृण मुँहसे गिर चले और उन्हे उसका गुमान भी न हुआ। नृत्यकी ध्वनि जो आश्रमके प्रत्यन्तो तक गूँजी तो मृगीसे खेलते शृगीने भी उधर देखा और बस देखता ही रह गया—विस्मयकी मुद्रामे सिर उठा, विस्मयकी मुद्रामे नेत्रोकी पुतलियाँ घूम गई, विस्मयकी मुद्रामे तर्जनी चिबुकपर जा लगी।

सही, बालऋषिने अब तक नारी न देखी थी, न उसकी आकृति, न उसका रूप। और न ही उसने उसका मोहजाल जाना था। देखा और देखता रह गया। वह स्वय असाधारण पौरुषका धनी था, अव्यय सौन्दर्यकी एकत्रित काया। चौडे ललाटसे लम्बे केश पीछेको मुडकर कधोपर लटक गये थे, भ्रमर श्याम दीप्तिमान थे। कन्धे शिराव्यंजित थे, भुजाएँ घुटनोको छूती थी, वक्षका विस्तार शक्तिकी सीमाएँ खीचता था। वल्कल उस बालरूपपर कसा था और तेज जैसे शरीरको घेरे-घेरे फिरता था। शक्ति और रूप अपनी अप्रत्याशित मण्डनहीन प्राथमिक ताजगीमे उसका अभिसिचन

कर रहे थे और अव उसकी विस्मित मुद्रा वारागनाओके हियेको बेध चली :

वारागनाएँ थिरकती हुई उनकी ओर चली और बालऋषि विस्मित उनकी ओर बढा। कामका सहचर वसन्त मुसकराया, मदनने पाँचो बाण खीच तपोधनपर मारे। बाण लक्ष्यपर ठीक बैठे। बालऋषि बिध गया।

थोडी देर वाद प्रमदाएँ अपना सौरभ तपोधनको भेट करती, उसपर अपनी तृष्णाओकी छाया डालती चली गई। शृगीके पिता मुनिके लौटनेका समय हो चुका था और उनके आने तक ठहरे रहना विपत्तिसे खाली न था। हृष्टमन वे वहाँ लौटी जहाँ दशरथके मत्री अपने परिजनोके साथ पल-पल उनके लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। लौटकर वारागनाओने मत्रियोसे विस्तारपूर्वक वालऋषिके पुण्य-प्रताप और उसपर अपनी विजयकी चर्चा की। मत्रियोकी आँखोमे आशाकी कोर चमकी।

उधर वृद्ध तपस्वी जब आश्रम लौटे तो लगा जैसे तपोवनपर अशौच छाया हुआ है, जैसे पाप तपोवनपर कुण्डली मारकर बैठा है। ऋषिकी समझमे न आया कि आचारका भला उस आश्रममे निधन कैसे हो सकता है जहाँ वरुणवत् वे स्वय यम-नियमोका सचालन करते थे? पर पापके प्रवेशका आभास उन्हे आश्रमके निवासियोको देखकर ही मिल गया। मृग अब शान्त न थे, न अजोके जोडे ही काम विरत थे, और न आश्रमके कपि ही पवित्र दिखते थे। ऋषिका मन तपोवनमे पापोदयके भयसे काँप उठा।

सीधे शृगीको खोजते वे उस निकुजमे पहुँचे जहाँ शीतल शिलापर वह वल्कल फेंके औंधे मुँह पडा था। पिताको देखकर भी न तो वह उठा, न उसने नमन किया, न आसन दिया, न बोला। पिता उसके इस अनजाने व्यापारसे चकित-दुखी हो गये, बोले—"शान्तं पापम्! शान्त पापम्! शृगी क्या हो गया तुझे? मेरी अनुपस्थितिमे तपोवनको यह क्या हो गया? और भला तेरा वल्कल कहाँ है?"

"वल्कल पुष्करिणीके तीर पडा है जिसमे गोतेपर गोता लगाकर भी 'शरीरकी ज्वाला शान्त न कर सका और अब तो पितृचरणोमे साधना करनेकी भी सामर्थ्य न रही।" अलसाया आधा सोता आधा जागता शृगी कुम्हलाये मनसे बोला।

महर्षि तप गये। जाना कि उनकी अनुपस्थितिमे कोई आया-गया है, किसीने शृंगीके नरत्वको छेड दिया है। बोले—"बोल शृगी, कह न सभी बाते।"

"क्या कहूँ, पिता, नये प्रकारके ब्रह्मचारी आये—मधुरदर्शन, हिम-धवल, रागरजित, कटि पर्यन्त केश कलाप वाले, मृदुतन, स्पर्शसुखद, नयनाभिराम कि देखता रह गया। उन्होने अपने शरीरसे आलिगित कर विविध प्रकारसे मुझे भेटा, चाटा और प्यार किया और जब वे ब्रह्मचारी, जो तुम्हारे रूखे-सूखे क्रिया-प्रबन्धोसे कृशित जटिल ब्रह्मचारियोसे सर्वथा भिन्न थे, चले गये तब मेरी शिथिल काया भी जैसे डह चली, जो पुष्करिणी-के शीतल जलमे बार-बार नहाकर भी अभी डह ही रही है। मेरे अच्छे पिता, मै उन ब्रह्मचारियोके पास जाऊँगा।" शृगी बोला।

महर्षिने जान लिया कि मानवगन्ध पुत्रको लग गयी है और अब तुषारका मारा कमल आचारकी छायामे न जी सकेगा। फिर भी वे दिनो उसे अगोरकर बैठे रहे, भरसक उसकी रक्षाका प्रयत्न किया। अपने वनावासमे उधर नर्तकियाँ मन्त्रियोके साथ शृगीकी प्रतीक्षामे बैठी रही।

पर तपका कार्य कष्टसाध्य है, आश्रममे चुप बैठे रहनेसे भी नही सध पाता। तपोधनको एक दिन आश्रमसे बाहर जाना ही पडा। अयोध्याका चरमण्डल आश्रमके कोने-कोनेपर आँखे गड़ाये विचर रहा था और उसने तत्काल वारवनिताओको सूचना दी कि तपोवन रक्षाहीन है, कि शृगी अकेला आश्रममे डह रहा है।

आश्रमपर मदनका फिर धावा हुआ और इस बार उसने वहाँ न तन छोडा, न मन, शृगीको नगरकी ओर वह उठा ले चला। प्रमदाओने अतिशय विलासके सम्मोहनकी बात शृगीसे पहले ही कह दी थी और यह भी कि तपोवनके वातावरणमे वह देवदुर्लभ भोग सरल साध्य नही, कि उसके लिए नगरके उद्दीपक परकोटेमे जाना होगा।

शृगी वारागनाओ और मन्त्रियोके साथ अयोध्या पहुँचा। उसने दशरथका पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। रानियोकी कोख भरी, महर्षिका तपोवन उजड गया। वरुणकी तुला हाथसे छूट पडी, पुण्यका मस्तक झुक गया, पाप विहँसा।

जब क्षत्रिय ब्राह्मणका गुरु बना !

बात बहुत पुरानी है, उत्तर-वैदिक कालकी—जब महाभारतका युद्ध अभी हाल, केवल दो सौ बरस पहिले, होकर चुका था। वह काल उपनिषदोका युग कहलाता था। तब वैदिक ऋषियोका युग समाप्त हो चुका था और वर्णोके बीच एक नये संघर्षने जन्म लिया था। विश्वामित्र और वसिष्ठमे कर्मकाण्ड और पुरोहितोके लिए कशमकश अभी लोगोको भूली न थी, बल्कि उनके वशजोमे नये सिरेसे, नई शक्ति और उत्साहसे वही कशमकश फिर उभड आई थी।

वैदिक कालमे ही ब्राह्मण ऋषियोने पुरोहिताई अपने हाथमे भरपूर कर ली थी, यज्ञोकी कुजीके रूपमे कर्मकाण्डकी पोथीके अपने विशेष ग्रन्थ भी उन्होने अलग रच लिये थे जिन्हे वे अपने नामके सदृश ही 'ब्राह्मण' कहते थे। उधर राजन्योने भूमिपर कब्जा कर लिया था। और देशके राजा और सामन्तोके रूपमे वही स्वामी थे। क्षत्रिय राजाओके अधिकारमे बडे-से-बडे जनपद आ गये थे और नये-नये जनपदोके लिए वे अश्वमेध और दिग्विजय करने लगे थे। आदर्श 'एकराट् चक्रवर्ती' का था जिसके लिए राजा नित्य रक्तपात करते और दूसरोकी स्वाधीनता कुचलकर अपना वैभव और ऐश्वर्य बढाते।

राजाओकी यह तृष्णा इतनी बढी कि अनेक बार ब्राह्मण ऋषियोको उनके यज्ञोको असफल करनेमे भी तत्परता दिखानी पडी। अर्जुनके परपोते जनमेजयके अश्वमेधको जब अपनी चतुराईसे उसके पुरोहित तुरकावषेयने अपवित्र कर दिया तब जनमेजयके भाइयोने अपने क्षत्रिय बन्धुओ और अनुचरोके साथ ब्राह्मणोका नरसहार किया। वह परम्परा अभी मरी न थी और दोनो पक्षोके नये वशधरोमे भी राज्य था। तभीकी बात है यह

वह उपनिषद्-काल था जब राजाओको भूमि जीतनेकी तृष्णा भूमिकी उपलब्धिसे मिट चली। तब एक दूसरी तृष्णाने उनके भीतर घर किया। वह तृष्णा थी ज्ञान-विजयकी। अब उन्होने ज्ञानके क्षेत्रमे अपना साका चलाना चाहा और चलाया भी। राजाओके दरबार तब ज्ञानके अखाडे बन गये। और उनमे ऋषियो और ब्रह्मवादियोके शास्त्रार्थ होने लगे। अबके ज्ञान-गुरु ब्राह्मण नही क्षत्रिय थे, और वह भी क्षत्रिय राजा। उन्होने प्रजाका रुख एक दूसरी ओर फेर दिया जिसका न कोई शरीर था, न कोई आकृति थी, जो न खाता था न खिलाता था, फिर जो सर्वशक्तिमान् था, और जिसे 'ब्रह्म' कहते थे। इन्द्रको मास और सुरासे छकानेवाले भौतिक सबलवाले बेचारे ब्राह्मणोको भला इस नये अशरीरी ब्रह्म और उसके अनुचर आत्माका बोध कैसे होता ? उनके इन्द्रका जाल इस नये ब्रह्मके इन्द्रजालसे कट गया और कर्मकाण्डका सारा आधार ही नष्ट हो गया। अब उनके लिए सिवा इसके कोई चारा न था कि वे राजाओके अनुयायी बनते, उनके द्वारा आयोजित दरबारी शास्त्रार्थोमे भाग लेते।

देशमे ऐसे दरबारी अखाडोकी सख्या चार थी—पजाबमे केकय, गगा-यमुनाके द्वाबमे पचाल, काशी—जनपदमे काशी और उत्तर बिहारमे मिथिला। इनमे सबसे पूरबका दरबार जनक विदेहका मिथिलामे था। राजा जनक, जो रामचन्द्रके ससुर और जानकीके पिता थे वे सीरध्वज जनक थे, विदेह जनकसे भिन्न और बहुत पहिलेके। परन्तु विदेह जनक उनसे महान् माने गये क्योकि उन्होने विदेह जातिकी जनताका नाम विरुदके रूपमे धारण कर उसे ऐसा रूप दिया जो ब्रह्मज्ञानी ऋषिका बाना बन गया—देह रहते उसने उन्हे विदेह अर्थात् जीवन्मुक्त बना दिया, यद्यपि वह उतने ही पार्थिव थे जितने उनके विदेहभिन्न अनुयायी। क्योकि कहा जाता है कि एक पैर जहाँ उनका सिहासनपर रहता था वही दूसरा जगलमे रहता था—काश कि कोई समझ पाता कि चाहे उनका एक पैर जगलमे रहता रहा हो दूसरा नि सदेह सिहासनपर जमा रहता था।

मिथिलाके पच्छिमके काशी जनपदके स्वामी अजातशत्रु थे और जैसे जनकके दरबारमे याज्ञवल्क्य आदि ऋषि जनकके उपदेशका अमृत अपने कानोमे ग्रहण करते थे वैसे ही काशिराज अजातशत्रुके दरबारमे दृप्त बालाकि आदि ऋषि राजा द्वारा किये ब्रह्म और आत्माकी व्याख्या सुन-कर अपना दर्प मेटते थे। वैसे ही पचालोकी राजधानी कपिलामे प्रवहण जैबलि अपनी पचाल-परिषद्मे ब्रह्मका विस्तार करता था। सबसे पच्छिम उस मध्य पजाबमे जहाँसे राजा दशरथको उनकी छोटी रानी कैकेयी मिली थी वही केकय जनपद था। उस जनपदका स्वामी अश्वपति कैकेय था। उसी अश्वपतिकी यह कहानी है जो क्षत्रियोके वैभव और ब्राह्मणोके पराभवकी वार्तामे उपनिषदोमे अमर हो गई है।

उद्दालक आरुणि अपने आश्रममे एकसे एक विचक्षण ऋषिकुमारो-को ब्रह्माचरणमे दीक्षित करते और उन्हे वैदिक ज्ञानमे पारङ्गत करते थे। इन्ही कुमारोमे स्वय उनका पुत्र श्वेतकेतु और बादमे विख्यात होनेवाले याज्ञवल्क्य थे। विद्याध्ययन समाप्त कर श्वेतकेतु आरुणेय और याज्ञवल्क्य ज्ञानकी दिग्विजयके लिए आश्रमसे बाहर निकले।

अभी कुछ ही दूर गये थे कि विदेह जनकका रथ सामने आता दिखाई पडा। श्वेतकेतुका कुलागत दर्द जागा, इधर नये ज्ञानमे मजा हुआ मुसक-राता राजन्य ब्राह्मणोकी सकपकाई स्थितिको भाँप कर भीतर भी मुदित हो रहा था। राह कौन दे, प्रश्न यह था। और छिड गया शास्त्रार्थ। राजाने बहसके बीच अग्निहोत्र सबधी प्रश्न किये ? कुमार निरुत्तर हो गये, उनका दर्पिल मानस कुम्हला गया। उन्होने राजाको मार्ग दे दिया। सन्तुष्ट मुदित राजाने कुमारोको शिष्यत्वके लिए निमन्त्रित किया। याज्ञवल्क्य तो ज्ञानको इष्ट मान राजाके पीछे चले पर ज्ञानके धनी आचार्योका कुल-दर्प श्वेतकेतुमे जागा और उसने राजन्यको गुरु बनानेसे इन्कार कर दिया।

पिताके आश्रमको लौट उसने महर्षि आरुणिसे पूछा—पिता, यह क्या पढाया हमे तुमने जो राजन्यके प्रश्नके सामने हमारी एक न चली। पिताने

तथ्य जानकर कहा—वत्स, विद्या वह गूढ है, केवल राजाओकी जानी है। और जो तुम जनकके पास लौटनेमे लजाते हो तो अश्वपतिके पास चलो, पर भूलो नही कि ज्ञान यह तुम्हे राजन्य ही देगा, ब्राह्मण नही, और कि वह दिशा मेरी भी अनजानी है।

और जब श्वेतकेतुने पिताकी बात मान ली तब पिता-पुत्र दोनो अश्वपतिके देश केकयको चले जहाँ राजा अपने ज्ञानका प्रसार सैन्धवोसे शौरसेनो तक करता था, कुरुओसे मत्स्यो तक। उसके राज्यमे न तो चोर थे न मद्यप और न स्त्रैण न अशिक्षित, और वह बड़े घमण्डसे कहा करता था—

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥"

उसी राजाके दरबारमे जब आरुणि और आरुणेय पहुँचे तब अश्वपतिने उनका इष्ट जान उन्हे सबोधित कर कहा—"समित्पाणी भव!"—हाथोंमे समिधा धारण करो।

यह राजाकी स्वाभाविक ही गर्वोक्ति थी क्योकि क्षत्रियको गुरु बनाकर उसका ज्ञान पानेके लिए उसके सामने ब्राह्मण ऋषियोकी दो पीढी सिर झुकाये हाथ जोडे खडी थी। उसके लिए वह समय निस्सदेह बडे अभिमानका था।

मंत्र यह ब्राह्मण आचार्यका था, कुलपति ऋषिका, जिसका वह आश्रममे वेदाध्ययनके लिए आये नये ब्रह्मचारीको दीक्षित करते समय उच्चारण किया करता था। वह ब्राह्मण-गुरुका मत्र था, इस अर्थमे प्रयुक्त कि ज्ञान तुम्हारा कच्चा है, उसी कच्ची लकडीकी तरह जो तुम्हारे हाथमे है, कच्चा ईधन, जिसे मै अपने ज्ञानकी अग्निसे प्रज्वलित कर दूँगा और तुम 'विदग्ध' हो जाओगे।

श्वेतकेतु और उसके पिताने शिष्यके रूपमे प्रतीक स्वरूप ईधन या समिधा धारण की और राजन्य राजा अश्वपति कैकेयने उन्हे अपने ज्ञानसे विदग्ध कर गुरुका आदर पाया।

कपट-गज

वत्सराज उदयन यद्यपि अपने रोमाञ्चक कृत्योके लिए विशेष प्रसिद्ध हो गया है, वह किसी अशमे भी युद्धसे विरत न था। जिस प्रकार पिछले कालके मुगल बादशाह विलाससे विमुख न होते हुए भी युद्धके प्रति जागरूक रहते थे उसी प्रकार उदयन भी मर्मकी प्यासके साथ ही खड्गकी प्यास भी बुझाया करता था। जिस घटनाका हम यहाँ उल्लेख करने जा रहे है उसमे युद्ध और विलास दोनोके आकर्षक अश मिले है।

बुद्धके समयकी बात है, ईसासे प्राय ५५० वर्ष पहलेकी। देशमे चार प्रबल राज्य एक दूसरेसे टकराते रहते थे—मगध, कोसल, वत्स, अवन्ती। विशेष रण-साज मगध और कोसलके मध्य, वैसे ही वत्स और अवन्तीके बीच सजा करते। महाभारत युद्धके कई पीढियो पश्चात् जब गगाकी बाढसे कौरवोकी राजधानी हस्तिनापुर बह गया, तब जनमेजयके वशज निचक्षुने यमुनाके तटपर आजके इलाहाबादके जिलेमे, प्रयागसे कोई ३५ मील पश्चिम, कौशाम्बी नगरीमे अपनी राजधानी स्थापित की। वह राजधानी वत्सोकी कहलाई और कालान्तरमे कौशाम्बीका राजा उदयन हुआ।

उदयन विलासी था। अनुराग उसके अन्तरको सदा अभिषिक्त रखता। और अपने रागमे उसने समीपवर्ती चराचरको रँग दिया। नारी न थी जिसके अन्तरमे उसके लिए टीस न उठी, नर न था जिसने अपने प्यारकी सौगन्ध उदयनके विलाससे न खाई। कौशाम्बीके महलोमे मृदगकी स्निग्ध गम्भीर ध्वनि अट्ट-प्रकोष्ठोको गुँजाती रहती, और घोषाका निनाद राजप्रासादके कलश-कँगूरोके ऊपर उठ दिशाओमे छा जाता। घोषा उदयनकी

वीणाका नाम था और बीणा-वादनमे उदयनसे बढकर कोई निपुण न हुआ, न तब, न तबके पहले, न तबके पीछे ।

प्रासादका प्रमदवन अपने छोरोकी छाया यमुनाकी लहरियोपर डालता और जब तटके खुले निकुञ्जमे सजी दोलापर बैठे उदयन और उसकी प्रियाको सहचरियाँ झुलाती तब उसकी पेगभरी छायाको छूते ही कालिन्दी-का गहरा नीला हृदय जैसे आनन्दसे डोल उठता ।

उदयन और अवन्ती (मालवा) के राजा चण्डप्रद्योत महासेनमे पुरानी अनबन थी । वत्स उत्तरमे था, अवन्ती दूर दक्षिणमे । पर दोनोकी सीमाएँ एक-दूसरेसे लगती थी और राजनीतिमे तो पडोसी ही स्वाभाविक शत्रु होता है, प्रकृत्यमित्र । सो उदयन और प्रद्योत भी स्वाभाविक शत्रु थे । निरन्तर दोनोमे टक्करे होती और कभी अवन्ती कभी वत्सकी भूमिका एक टुकडा शत्रु-राज्यके हाथमे चला जाता । अन्तमे प्रद्योतने निश्चय किया कि शस्त्रधनी उदयन बिलासके बावजूद यदि शस्त्रसे न जीता जा सका तो कपटसे ही क्यो न उसे वशमे करे, आखिर चतुर्विधा राजनीतिके ही अग साम और दाम भी तो हैं । निश्चयको कार्यरूपमे बदलते उसे देर न लगी ।

वनोमे माधव डोल रहा था, वासन्ती लताएँ सहकार वृक्षोको अपने कलेवरमे लपेटे निहाल कर रही थी, मञ्जरियो और कुसुमोसे पराग बरस रही थी, भौरोकी गूँजसे वनका कोना-कोना गुञ्जायमान था । तभी सीमान्त वनके रखवालोने निवेदन किया—"देव, विशाल गज वनके एकान्तमे देखा गया है । देव उसके बन्धनके लिए शीघ्र पधारे । ऋतुराज यौवनपर है, वनका कोना-कोना सूर्यके प्रखर-किरणजालसे उजागर है ।"

राजा हस्तिकान्त लेकर सीमान्तके वनोकी ओर नालागिरि हाथीपर सपद भागा । राजा हाथियोके शिकारका बडा शौकीन था । नारीके सामीप्य मुखमे अगर कोई बाधा होती तो बस इसी हाथीके शिकारकी, क्योकि अच्छे गजके वनमे देखे जानेपर राजा फिर विलासकक्षमे नही रुक सकता था अङ्कशायिनी चाहे उर्वशी हो, चाहे रम्भा, चाहे मेनका, चाहे

चित्रलेखा। और यह हस्तिकान्त वीणा उसकी घोपासे भिन्न थी। घोपा वह तब निनादित करता जब नारीका कोमल अन्तर उसके मर्मको छूना होता और हस्तिकान्त वह तब स्वरित करता जब वनकी उपत्यकामे गज-राज अपनी सूंडसे गुजलक भरता होता। चला उदयन हस्तिकान्त वीणा लिये।

पाया उसने वह विशाल गज, पर अकेला, जब उसके सहचर और आटविक-वनचर पीछे छूट गये थे। हस्तिकान्तके मादक स्वरसे उसे ऐसा लगा कि गजके पग थिरकने लगे, कि उसके गुजलकोकी गति तीव्र और तालप्रवण हो गई। वीणा हाथमे लिये राजा हाथीको बाँधनेके विचारसे आगे बढा। हाथी चुपचाप खडा था, विशाल, निश्चल कालकूट। वनचरोकी राह न देख शिकारी गजके निकट पहुँच गया, अतिनिकट, स्पर्शकी दूरीमे। और तब वह सहसा चिहुँका। गज प्रकृत गज न था, कपट गज था। सहसा उसका उदर कपाटकी भाँति खुल गया और अनेक सशस्त्र सैनिकोने निकल कर उदयनको घेर लिया। गजराजको बाँधनेकी इच्छा करने वाला नरराज स्वय बँध गया।

× × ×

उज्जैनीकी कारामे रहते साल बीत गये। ऋतुएँ सहसा आती, सहसा चली जाती। राजाकी काराकी दीवारे मोटी थी, उसके परकोटेमे उपवन न था। पर जब मधुकी रातें आकाशपर छा जाती, जब कोयलकी कूक दीवारोको छेद काराके अन्तरमे बिजलीकी भाँति कौध जाती तब भला उदयन कैसे न जानता कि प्रकृति उसका उपहास कर रही है, कि जगत्मे वसन्त बगरा है, कि प्रियाकी यादमे कोयल टेर रही है? और तन्त्रीनाद सहसा बह चलता, सहसा चुप भी हो जाता, क्योकि उस नादका अर्थ क्या जो किसीको छू न पाये, जिसके स्पर्शसे किसीके रोम पुलक न उठे? उद-यनने देखा, उसकी काराकी दीवारे पत्थरकी है, और कौशाम्बी दूर उत्तर

है, पहाडोके पार, जहाँ वसन्तमे भी उसके अभावमे हेमन्त छाया है, शिशिर काँपता है। और वह तन्त्री धर देता।

पर तन्त्रीवादनमे उदयनका कौशल किसका न जाना था। उसके नादसे शिप्राका अन्तर वैसे ही काँप उठा करता था जैसे यमुनाका। और शिप्राके तटपर उज्जैनीके राजाके अभिराम प्रासादमे एक नितान्त कमनीय काया थी, प्रद्योतकी सुन्दरी कन्या वासवदत्ता। वासवदत्ता अनाघ्रात कुसुमकी भाँति टटकी, अलोनी मजरीकी भाँति, प्रातः अछूते मन्द समीरणकी भाँति पराग निर्मित काया-सी थी। पर उसके पावन हियेमे भी उदयनके रागका कम्पन घर कर चुका था। बहुत पहलेसे जब वत्सराज अभी कौशाम्बीमे ही था वह उसके राग-वैभवकी कथा सुन चुकी थी। तन्त्रीनादपर उसकी प्रभुता वत्ससे आने वाले गायक उसके पितासे बताते, स्वय उससे बखानते और उत्कठित मृगीकी भाँति वत्सकी ओर, उत्तर कालिन्दीकी धाराकी ओर वासवदत्ता अपनी वीणाकी झकार प्रवाहित कर देती—कौन जाने अनिलवाही राग कदाचित् वत्सराजके तन्त्री-नादको छू ले। और जो पुलक इस असम्भव कल्पनासे उसे हो आती उसका आनन्द अत्यन्त गोपनीय था, उसकी सखियोका भी अजाना।

काराका तन्त्रीनाद जब दिगन्तको लहरा चला तब वासवदत्ताके अन्तरने भी वह टेर सुनी, अपने पुस्कोकिलकी टेर, जिसके सुनने मात्रसे उसकी काया काँप उठी।

पितासे वासवदत्ताने अनुनय की कि उसे उदयनके वीणावादनका लाभ हो और प्रद्योतने उदयनसे वीणा सीखनेकी आज्ञा कन्याको दे दी। उदयन और वासवदत्ता वीणाके माध्यमसे मिले। दोनोके राग एक दूसरेको विकम्पित करते और धीरे-धीरे अनुरागके अकुर दोनोके हियेमे फूट पडे। उदयनका राग-सौरभ जब शिप्रातीरके उस राजावासमे विमान भूमिके चाँदनीमे चमकते तलपर झरने लगता तब जैसे चराचर सहसा ठमक जाता, वासवदत्ताके भीतर कामनाओकी बेले लहरा उठती। अनन्त कमनीय साधे उसे

आन्दोलित कर देती और उसके सालस नयन अपलक तन्त्रीके तारोपर जादूकी-सी फिरती राजाकी उँगलियोको निहारने लगती। दोनोने एक-दूसरेको जाना, दोनो मद गये।

प्रद्योत अब अवन्तीके साथ-साथ वत्सका भी राजा था, उज्जैनीके साथ कौशाम्बीका भी। पर जहाँ उज्जैनी रागध्वनित थी वहाँ कौशाम्बी राग-हीन सूनी हो गई थी। उसका नायक उज्जैनीका बन्दी था।

एक दिन सहसा उज्जैनीके उत्तर द्वारसे एक हाथी निकला और राज-पथपर दौड चला। उज्जैनीके नर-नारी निद्रामग्न थे, शिप्राकी लहरियाँ निश्चित सोती थी, प्राचीरोके पहरुए ऊँघ रहे थे और हाथी उत्तरकी ओर भागा जा रहा था। जिस कपटसे अवन्तीके राजाने वत्सराजको बाँधा था उसी कपट-गजकी आकृति वाले नालागिरिपर उदयनको भगाकर उसके मन्त्री यौगन्धरायणने राजमातासे की हुई अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

हाथी भागा। राजा आगे बैठा वीणा हाथमे लिये था, पीछे उसकी कमरसे चिपटी वासवदत्ता बैठी थी। और पीछे सेवक यौगन्धरायण नकुली (तोडा) का मुँह खोले सोना बरसा रहा था जिसमे पीछा करने वाले शत्रु सैनिक सिक्के चुननेमे लगे रहे और नालागिरि कौशाम्बी पहुँच जाय। नालागिरि कौशाम्बी पहुँचा, वत्सका विलास लौटा, कौशाम्बीकी यमुना लहरा कर बही। और कौशाम्बीके कलावन्तोने राजाका वह वासवदत्ताके साथ पलायन अपने साँचेमे ढाल लिया। अनेकानेक कौशाम्बीके मिट्टीके ठीकरोपर यह अभिराम कथा खुदी मिलती है।

भारतका कोलम्बस : विजयकुमार

विजय कोलम्वस और वास्को दि गामाकी परम्पराका था । उनका ही सुदूरका पूर्ववर्ती । उसकी लका-यात्राकी कहानी साहित्य और कलाकी कृतियोमे लिखी है । अजन्ताकी भित्ति-चित्रोसे भी अधिक सजीव अतीव मामल उत्खचन उस यात्राका कठोर शिलाओपर मिलता है ।

और यह पत्थरमे लिखी कहानी, जिस विजयकी है, वह राजकुमार था, देश-निकाला राजकुमार । समुन्दर लॉघनेकी जितनी कथाएँ आदमीने गढी है, उन सबसे सजीव, सबसे सच्ची, सबसे रोमाचक लोमहर्षक कथा इमी राजकुमार विजयकी है, जिसने उत्तर भारतमे जन्म लेकर लकाकी विजय की, उसके नामकरण किये—ताम्रपर्णी, सिंहल । आज हम उसीके दिये 'मिहल' नामका व्यवहार लकाके लिए कर रहे है, और सदियोसे हमारे पूर्वज, हमारे साहित्य करते आ रहे है ।

बगालकी दक्षिणी सीमापर, सागरतटके ताम्रलिप्तिके वनोमे विकराल दम्यु दर्पिल रहता था । दर्पिल कठोर और साहसिक था । साहसका कोई कार्य न था, जिसे वह सहज रूपसे अनायास न कर ले । उसके शरीरमे कमानकी लचक थी, शेरका हलकापन था, सुअरकी निर्भीकता थी, सॉडका बल था । भीपणता उसके कार्यमे अधिक थी, कायामे कम । अनेक लोगोको उसकी वह ऊर्जस्वित् शिराव्यंजित काया कमनीय लगती । पर उनकी अपनी-अपनी सीमाएँ थी, अपने-अपने भय थे ।

ऐसे ही लोगोमे बगराजकी कन्या नाटिका थी । नाटिका धूमकी आवर्त-मयी वर्तिका थी, शरच्चन्द्रकी मरीचियो-सी कोमल । और उसे दस्यु बडा रुचता । उसका प्रत्येक भग, प्रत्येक मुद्रा उसे भली लगती । अनेक वार उसने उसे देखा था । पहले जब उसने उसे देखा था तब वह दस्यु न था ।

दूसरी और तीसरी बार भी उसने उस सैनिकके बेटेको पिताके सामने अनुनय करते ही देखा था। पर अगली बार उसकी भगिमा बदल गई थी। सहसा उसकी मुद्रा नितान्त परुष हो उठी थी। फिर उसे किसीने हँसते न देखा था, रोते न देखा था। और एक दिन, वह नगरसे गायब हो गया था। उसके पिताने उसे खोजा था। उसके राजाने उसके लिए ढिढोरा पिटवाया था। उसका पता देनेवालेको पुरस्कार घोषित किया गया था। पर, किसीने उसका पता न पाया था।

पर उसकी लूट जारी थी, सार्थवाहोकी लूट, राजकोषकी लूट, नगरोकी लूट। ससारसे अब उसे कोई नाता न था। अगर उसकी ममताकी कोई डोरी थी, तो बस नाटिका। और एक दिन जब, नगर राजकन्याको ब्याहने आये चम्पाके राजकुमारकी बारातसे भरा था, जब तुर्य और दुन्दुभीकी ध्वनिसे दिशाएँ गूँज रही थी, जब प्रसाधिकाएँ वधूको विवाहके लिए सजा रही थी, तभी सहसा दर्पिल महलोमे घुस आया था, और राजकन्या गायब हो गई थी। फिर किसीने उनका पता न पाया था—न दर्पिलका, न नाटिकाका।

दोनो पूर्व सागरसे उठकर पश्चिम सागर तटपर चले गये थे, लाट देश, दक्षिण गुजरात। वही, पहले मधुके दसवे महीने बाद, राजकन्याको एक पुत्र हुआ और एक पुत्री। कुमारका नाम था सिहबाहु, और कुमारीका सीवली। दोनो, दो देह एक प्राण थे, एक तन, एक छाया। और, तारुण्यके आरम्भमे ही दोनोने परस्पर विवाह कर लिया। सिहबाहुने सिहपुर नामक नगर बसाया, और उसे अपनी राजधानी बना, वहीसे सारे लाटपर राज करने लगा।

अनेक सन्तानोका वह सिहबाहु पिता था। एक-एक कर बत्तीस सन्ततियाँ उसे हुई। इनमे सबसे बडा विजय कुमार था।

विजय कुमारकी प्रकृति नितान्त अदम्य थी, उग्र और कठोर। अपने साथियोको ले वह पिताकी प्रजाको पीडित करने लगा। और जब, उसका

प्रजापर अत्याचार असह्य हो गया, तब सिहबाहुने और उपाय न देख उसे उसके साथियोके साथ राज्यसे निकाल दिया।

सात सौ विक्रान्त मित्र अपनी स्त्रियोके साथ विजयके पीछे चले। दो विशाल पोतोमे वे लद गये। एकमे पुरुष, दूसरेमे अनुचरो और कुछ सैनिकोके साथ स्त्रियाँ। जहाजोने लगर उठा लिये। पश्चिमी सागरमे दक्षिणकी ओर वे चले।

पोत कुछ काल तो अनुकूल वायुके सहारे चलते रहे। प्रसन्न विजय निर्वासित होकर भी मित्रोके बीच सागरकी लहरोपर भी प्रसन्न ही था। पोतोपर जीवनकी सारी आवश्यकताएँ सग्रहीत थी—खाद्य और पेय, वाद्य और गायक, सभी। और कब दिन हुआ, कब रात हुई, किसीने न जाना।

पर एक दिन जब दिशाएँ प्रसन्न थी, पश्चिमका आकाश सहसा मैला हो गया। देखते-ही-देखते वह मेघोसे भर गया। काले घुमडते मेघ, उनये-ठसे मेघ, पहले, न तडपे, न बरसे, बस आकाशको भरते गये और सहसा दिनकी रात हो गई। प्रकाशके सारे द्वार मेघोने बन्द कर दिये। फिर पवन उठे, उनचासों पवन। अब मेघ भी तडपे। जितना ही वेग पवनका था, उतनी ही गरज मेघोकी थी। घने मेघ, कुपित मारुत, अन्धी दिशाएँ, पोत छिन्न-भिन्न हो गये।

कुछ काल तक तो माझियोने आँधी-पानीके होते भी दोनो पोतोको एक साथ रखनेका यत्न किया। पर क्षुब्ध सागरकी गगनचुम्बी लहरोके आगे उनकी एक न चली। दोनो जहाज दो ओर बह गये। स्त्रियो वाला किधर गया, इतिहासने न जाना। मधुयामिनी-सी सुकुमार, जुही-सी उज्ज्वल, स्वप्न-सी मधुर नारियाँ थी उसमे। पर, तूफानने कब भला मृदुताकी साख रखी !

पर, विजयका पोत बच गया। तूफानके सकट झेलता, अन्तमे, वह किनारे जा लगा, और प्रसिद्ध पत्तन सूर्पारकके बन्दरमे उसने आश्रय

लिया । आजका, सोपारा ही उस कालका सूर्पारक था—पश्चिमी समुद्र तटपर भारतका प्रसिद्ध बन्दर ।

सूर्पारकके नर-नारियोने विजयका सहृदय स्वागत किया। उसे अर्घ्य-दान दिया । उसका अभिनन्दन किया। उसे रहनेको प्रासाद दिया । पर, उद्दण्ड विजय अपने व्यवहारसे न चूका, कैसे भी न चूका। उसके सैनिक आपानकोसे निकल राजमार्गपर दगे करते। नागरिकोको सताते। उनका अपमान करते। दम्पतियोको छेडते । अन्तमे, सूर्पारककी जनता क्षुब्ध हो उठी। पहले, उसे देश-निकाले राजकुमारका मोह था। उसने उसे शरण दी। पर, जब विजय और उसके मित्र सूर्पारकके शत्रु बन गये, अपने आश्रयसे ही शत्रुता करने लगे, तब लाचार, जनताने विजय और उसके मित्रोको मार डालनेकी ठानी। भाग्यवश विजयको सूर्पारकके नागरिकोके षड्यन्त्रका पता चल गया, और उसने संकटसे पहले भाग जानेका प्रबन्ध कर लिया । अनेक पोत सज गये, और नागरिकोकी आँख बचा विजय अपने साथियो सहित सूर्पारकसे निकल भागा ।

पश्चिमी समुद्र-तटपर, जहाँ आज भडौच है, वहाँ तब प्रसिद्ध बन्दर भरुकच्छ था। उसी भरुकच्छके विशाल बन्दरमे विजय अपने साहसिक साथियो सहित उतरा । पर भरुकच्छकी भूमि भी उसे न भायी। वस्तुत भूमिके भानेकी कोई बात न थी। सारा दोष उसके और उसके सैनिकोकी उद्दण्डताका था । सूर्पारकमे किये उसके अपराध भरुकच्छमे कबके पहुँच चुके थे । वहाँके नागरिक, रक्षक-सैनिक चुप थे। उन्होने विजयके बन्दरमे प्रवेश करने या भूमिपर उतरनेमे बाधा न डाली । पर वे सन्नद्ध रहे, कि यदि नवागतोने उनके आतिथ्यका दुरुपयोग किया, तो उनका व्यवहार विजयके साथ सूर्पारकके नागरिकोसे सर्वथा भिन्न होगा। दो-चार दिनोमे ही, दो-एक मुठभेडमे ही प्रगट हो गया कि भरुकच्छमे विजयके साथियोके पैर न टिक सकेगे । फिर तो, विजयके जहाजोने लगर उठा लिया ।

अब, विजय दक्षिणकी ओर चला । गन्तव्य उसका जाना न था । पर,

चला वह दक्षिणकी ओर । तटके दृष्टिसे ओझल होते ही तूफान आया । विजयके माँझियोने सब कुछ किया, जो सम्भव था । पर जहाजोको छिन्न-भिन्न होनेसे वे न बचा सके । बेडेके अनेक जहाज डूब ही गये, अनेक टूटकर बिखर गये ।

पर साहसी विजय सहमा नही, तूफानके वेगमे समाता, सागरकी टूटती लहरोसे टकराता, उसे पार कर ही गया । और पार कर जब वह प्रकृतिस्थ हुआ, तब उसके माँझियोने बताया, कि अब वे भारतके पश्चिमी तटसे पूर्वी तटकी ओर पहुँच रहे है, और भारतके दक्षिणतम छोरको छू रहे हैं । पास ही केरलकी छूटती भूमि सागरके भीतर घुसती चली गयी थी । कुमारीकी वह भूमि माँझियोको सर्वथा अनजानी न थी ।

अब विजयके बचे बेडेका मुँह पूर्व-उत्तरकी ओर हो गया था, माँझियोने रामेश्वरम्का नाम सुना था, पर उसे देखा न था । कभी उधरके सुदूर दक्षिणकी यात्रा न की थी । उनका विचार था कि वे ताम्रपर्णी नदीके मुहानेकी ओर बढ चले है । बडे प्रेमसे वे उधर बढते गये । आज कावेरीके दक्षिणमे, जो ताम्बरबनीकी धारा है, वही तब ताम्रपर्णी कहलाती थी, और समुद्रके सयोगसे वह अनन्त मात्रामे मोती उगलती थी । उन मोतियोका प्राचीन ससारमे बडा मूल्य मिलता था । भारतीय माँझी और सौदागर उस कालसे पहले और बहुत पीछे तक पश्चिमके देशो-नगरोमे ताम्रपर्णीके मुहानेके मोती बेचते रहे थे । विजयके माँझियोको भी स्वप्न-देश जैसे अनायास मिल गया । वे प्रसन्न पूरबकी ओर बढ चले ।

पर वह पूरब न था । उन्हे दिशा-भ्रम हो गया था । वे दक्षिण-पूर्वकी ओर बढ रहे थे । अनजाने वे रामेश्वरम्से पश्चिमसे सेतुबन्धसे टकराते दो दिनोमे लका जा पहुँचे । पर जाना नही उन्होने, कि वह लका है । उन्होने बस यही जाना कि वे ताम्रपर्णीके मुहानेपर भारतके ही तटपर जा पहुँचे है । उस भूमिको कहा भी उन्होने, ताम्रपर्णी । और तभीसे लंकाका दूसरा नाम

ताम्रपर्णी पडा। वह नाम भारतमे पीछे इतना प्रसिद्ध हुआ कि उत्तरके अशोकने भी उसका उसी नामसे उल्लेख किया।

विजयने खोजा कुछ था, और कोलम्बसकी भाँति पाया कुछ। पर जो कुछ उसने पाया, उसका सदुपयोग किया। सूर्पारक और भरुकच्छके कटु अनुभवने उसे अब तक समझदार बना दिया था। अब उसने सबसे सद्व्यवहारकी शपथ ली थी, और स्वय भी निश्चय कर लिया था कि राज्यकी स्थापना कर वह विधिवत् प्रजाका पालन करेगा, भूमिको जोतकर देशको सम्पन्न करेगा।

विजयने अपनी बात रखी। उसके साथियोने अपनी शपथ रखी। देशके मूल निवासी वेद्दा उनके अनुचर बने। उनके सहयोगसे विजयके साथियोने देशकी भूमि बनायी, उसे जोता, उससे अन्न उपजाया। अपनी नारियाँ खो चुकी थी, मगध-बगालसे, लाटसे उनका आना सम्भव न था। वेद्दा-नारियोको, दक्षिण भारतसे आने वाली पाण्ड्य देवियोको उन्होने अपनी पत्नी बनाया। नये मानवके योगसे धरती लहलहा उठी। विजयकुमार बादमे विजयसिहके नामसे प्रसिद्ध हुआ और उसके नामसे लकाका एक और नाम पडा—सिहल। सिहलका मुक्ता-सम्पन्न देश पन्नेके रगका हरा-भरा था, बाँसकी कोपलो-सा मणिमय। विजय उसके रागमे बँधा, फिर भारत न लौटा।

त्यागके चार चरण

१

वाण-विद्ध हस कुमारके निकट गिरकर छटपटाने लगा। कोमल अन्तर कभीसे ससारकी कोमलताओसे चिन्ताकुल था। जीवनकी मधुरता दूसरोके करुण कोलाहलसे विषाक्त हो गई थी। 'आर्त सुखी क्योकर हो ?'—की चिन्ता अहर्निश जागरूक बनाये कुमारने उसे उठा लिया पर वाण निकालते ही रक्तकी धारा बह चली। हाथ लाल हो गये। जलसे धोनेके बाद जब चञ्चु-पुटमे जलकी बूँद गई तब सज्ञाहीन हंसने नेत्र खोले।

देवदत्त, सिद्धार्थका चचेरा भाई, आहत पक्षीकी खोजमे आ निकला। घण्टोकी भाग-दौडके बाद उसे यह पक्षी मिला था। उसके अमोघ लक्ष्यका पुरस्कार सिद्धार्थके हाथोमे था। देवदत्तने पक्षी माँगा। कुमारने कुछ उत्तर न दिया। आखेटके श्रमसे देवदत्त वैसे ही थका था। उसकी वन-माला उसकी व्यस्ततासे मुरझा गई थी। अब जो उसने कुमारके हाथोंमे अपना श्रम-फल देखा, जब अपने सदाके ईर्ष्याके केन्द्र सिद्धार्थको उसे सहलाते पाया, तब क्रोधसे वह जल उठा।

सिद्धार्थने उसे गाली दी, सिद्धार्थने शान्तिपूर्वक हँसकर उसे उत्तर दिया—"तू अपना मरा हुआ हस यमसे माँग। यह जिलाया हुआ मेरा है।"

जला हुआ देवदत्त शाक्योके सन्थागारमे पहुँचा। ससद्के सदस्य उठ चुके थे, पर सिद्धार्थके पिता राजा शुद्धोदन व्यवहार (कानून) के पण्डितोके साथ बैठे कथोपकथन कर रहे थे। द्वारपालने निवेदन किया—"कुमार देवदत्त, कुमार सिद्धार्थ।"

शुद्धोदनने सिरके सकेतसे उन्हे आनेकी अनुमति दी । आगे देवदत्त पीछे सिद्धार्थ धीरे-धीरे सभा-भवनमे घुसे । राजाने उन्हे जब आवेशमे प्रवेश करते देखा तब आशङ्कित हो बोल उठे—"कुमार देवदत्त, कुमार सिद्धार्थ, सभा-भवन सघकार्य और अभियोग-विनिश्चयका स्थल है, कहना न होगा ।"

"तभी तो वादीके रूपमे उपस्थित हुआ है, महाभाग ।" देवदत्त चेष्टाको यथासम्भव प्रकृत करता हुआ बोला । सिद्धार्थकी चेष्टा पहले ही प्रकृत हो चुकी थी और अब उसका मुखमण्डल स्मित हास्यसे कमल-सा खिल उठा था । जब राजाकी दृष्टि उधर गई तब सिद्धार्थ बोला—"मै प्रतिवादी हूँ, राजन् ।"

व्यवहार-पण्डित चकित हो सुनने लगे ।

देवदत्त बोला—"कुमारने मेरा शिकार ले लिया है, जो आजके मेरे कठिन श्रमका पुरस्कार था ।" उतरे धनुषका सिरा पीठके तरकशके तीरोके पख छू रहा था ।

राजाने पूछा—"हस मारा किसने ?"

"मैने ।" देवदत्तने सस्वर कहा ।

राजाकी दृष्टि सिद्धार्थपर पडते ही उत्तरमे कुमार तत्काल बोला—"महाशय, मारा कदाचित् देवदत्तने पर जिलाया हसको निश्चय मैने ।"

गम्भीर स्थिर स्वरमे अनूठी शान्ति थी । भुजाएँ वक्षपर बँधी थी, एक हाथमे पक्षी रह-रहकर फडक उठता, मानो न्यायकी व्यवस्था सुन रहा हो। नि सन्देह उस व्यवस्थापर ही उसका जीवन निर्भर था ।

"पर शिकार तो मारनेवालेका होता है, सिद्धार्थ !" राजाने कहा ।

"सही व्याधका और मरा हुआ शिकार, यह जीवित है और जिलाया मैने है," सिद्धार्थ बोला ।

सुननेवाले निस्तब्ध थे, राजा तक ।

सिद्धार्थ फिर बोला—"यदि न्याय हो तो मुझे हस दे देनेमे कोई

आपत्ति नही। पर आज इसका निर्णय हो जाय कि शिकार मारनेवालेका है या जिलानेवालेका।''

राजाने व्यवहार-पण्डितोकी ओर देखा। उनका कण्ठ न फूटा। सभी चकित थे, क्योकि इस प्रश्नका उत्तर न था, न स्मृतियोमे, न पवेनि-पुत्थकोमे।

हमके डैने पुलक उठे। उसका चचु कुमारकी छातीमे गड गया और गहरा।

२

प्रासादमे विभूतियाँ भरी थी। कमनीय कामिनियोका अभाव न था, पार्थिव सुखके सभी साधन सगृहीत थे। केवल भोक्ता उदासीन था, तरुण भोक्ता कुमार सिद्धार्थ।

इन भोगोमे उसकी अनुरक्ति न थी। वह सोचता—अनायास उमगते जीवनके बीच मृत्यु क्यो? इठलाते अल्हड यौवनके बाद घिनौनी जरा क्यो? अनन्त सम्पदाके बीच अभाव क्यो?

ऋषियोसे, पण्डितोसे, यतियोसे उसने बार-बार पूछा। किसीने कुछ कहा, किसीने कुछ। उत्तरसे उसे सन्तोष न हुआ। मृत्यु, जरा, अभावका प्रश्न जहाँ-का-तहाँ रह गया। तब उसने स्वय बोधिफल प्राप्त करनेका सकल्प किया। सकल्पका अर्थ था, गृह-त्याग। गृह-त्यागका अर्थ था उस रूप-राशि गोपा (यशोधरा) का त्याग, जिसका प्यार कण-कणमे बसा था, जिसका उल्लास मर्मको अनन्तरोसे खीचता था।

पर आर्तोकी पुकार कही अधिक करुण थी। संकल्प दृढतर होता गया। एक साँझ उत्तप्त मन दिशाओका राही हो जानेके लिए व्याकुल हो उठा। तभी दासीने आकर पुत्र होनेका शुभ सवाद दिया। बधाई दी। तरुणके मुँहसे सहसा निकल पडा—''राहुल!'' भाव था—'विघ्न', पुत्र-रूप विघ्न, जिसने उसके सकल्पको शिथिल कर दिया। दासीने समझा,

पिताने पुत्रका नामकरण किया। उसने रनिवासमे कह सुनाया। नवजातका नाम पडा—राहुल।

प्रासादका सुहाग लौटा, कुमारकी सकल्प-रज्जु ढीली पड गई। गोपाकी एकाकी प्रणय-शक्तिको पुत्रके आकर्षणने दुगुना कर दिया। सिद्धार्थ सकल्प-विकल्पकी डोलीमे झूलने लगे। जगत्का पाप फला, पुण्य तिरोहित हुआ।

एक दिन राग-तृष्णाका भार फिर हलका हुआ और धीरे-धीरे पहलेके प्रश्न फिर साकार हो उठे। एक रात देर तक नृत्यगान होता रहा। कुमारकी चेष्टा तरलसे अप्रयास कठोर बनी। विलासके जीवित उपकरण मद्य और मदनके सेवनसे थककर सो चले। रातने करवट ली।

विकल मानव उठा। जन-हितकी साधना अविजित प्रेरणा बनी। सिद्धार्थ उठा। देहलीमे उसने पॉव रक्खे। गोपाका मृदुल मानस निद्राके वशीभूत था, पुण्यका अनुपम सचय शिशु-रूपमे मॉके स्तनसे लगा था। अमर मानवने एक पग देहलीके बाहर रख शयनकक्षमे झॉका। मदिर आकर्पण, स्निग्ध स्वच्छ स्मृतियॉ हजार-हजार सूतोसे उसे अवरुद्ध करने लगी। तोड दिये उसने सारे धागे।

कपिलवस्तु सोया पडा था। गौतम रातो-रात कोसलोके राजमे जा पहुॅचा। अभिजात वस्त्र उसने उतार डाले, रेशमी केश खड्गसे काट दिये। अश्वको रक्षकको सौप वह महापथका पथिक बना। अकेला, नवमयक-सा क्षितिजपर उगा वह आकाशकी मूर्धाकी ओर चढ चला। यह उसका महाभिनिष्क्रमण था, महात्याग।

३

मगधराज बिम्बिसार अपने महलोसे नित्य देखता। पीले चॉद-सा तेजस्वी तरुण प्रात. राजगृहके प्रासादोके सामनेसे निकल जाता। तपकी विषण्ण चेष्टा उसके भालपर जैसे तारुण्यका शृगार बन गई थी। काषायकी

आभा उसके शरीरके दमकते हिरण्यरागको द्विगुणित कर देती । राजा उसे नित्य निहारता । पूछता, यह कौन है ? कैसे असाधारणको भी दु ख व्याप सकता है ? क्या ऐसी दिव्य ज्योतिको भी ज्ञान-लौकी आवश्यकता होगी ? क्या इस महाभागको भी किसी वस्तुकी न्यूनता खल सकती है ?

जब एक दिन उसका कुतूहल परिधि पार कर गया तब राजा बिम्बिसार प्रभात वेलामे तरुण परिव्राजककी राह रोक सामने जा खडा हुआ । परिव्राजक राह रुकी देख रुका । भूमिसे उठकर जब दृष्टि सामने पडी तब उसने मुकुटधारी मगधनरेशको अजलिबद्ध खडे पाया ।

गम्भीर चेष्टा सरल हो गई, मुद्रा सहज । प्रसन्न स्निग्ध वाणीमे परिव्राजक बोला—"कल्याण हो राजकल्प गृहस्थ, शान्ति और पुण्यके अविकल भागी बनो !"

"धन्य हुआ, महाभाग, आशीर्वचनसे । पर उत्कण्ठा बनी रही ।" राजा बोला । "क्या परिचय देकर कृतार्थ करेगे ? मै मगधराज बिम्बिसार हूँ ।"

"प्रसन्न हुआ, राजन् । पर बहते पवनका क्या परिचय ? प्रव्रजित यतीका क्या परिचय ?" शीतल वायुके स्पर्शसे चीवरका कोना हिला । शेष मुद्रा निर्वात ज्योतिकी थी । "पर यदि इस वेशके पूर्वका परिचय जानना चाहो तो सरल है—शाक्योके प्रधान शुद्धोदनका तनय सिद्धार्थ गौतम, जो नाम गृहस्थके वेशके साथ ही कबका त्याग चुका हूँ ।"

"किस आशासे सुखी जीवन छोडा, यती ? क्यो शाक्योका वह असह्य प्रताप तुम्हे अग्राह्य हुआ ? यह राह कठिन है, भन्ते, तुम्हारे अङ्गाङ्ग कोमल है, कमलसे । लौटो, लोकको लौटो । और यदि अगीकार करो, पुत्र-कलत्रसे विकल मगध नरेशका यह राज्य लो, भोगो ।" राजाके तृप्त औदार्यके लिए कुछ भी अदेय न था ।

"अनुगृहीत हुआ । पर नही, विमलकीर्ति गृहस्थ, नही चाहिए यह अनुपम दान । यदि भूमिका विस्तार लुभा सकता तो शाक्योकी भू-सम्पदा कुछ कम विस्तृत न थी । फिर शुद्धोदनका वात्सल्य-राज उससे कही

विशद था, और यशोधराका स्वप्न देश तो उससे भी कही विपुल। नही, राजन्, दु.खका घनोभूत वह पुज नही चाहिए, मुझे चाहिए जनहिताय वह सम्यक् सम्बोधि।''

राजाने राह छोड दी।

बोला—''सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करो, यती, शान्तिकी विमल ज्योति वसुधामे बिखेरो। पर देखो, जब वह प्राप्त हो जाय तब मुझे उसके प्रकाशसे वचित न करना। उसकी एक किरण मुझ अकिचनको भी देना।''

परिव्राजक चलता-चलता मुसकराता हुआ बोला—''तुम्हारे पुण्यसे ही, राजन्, सम्यक् सम्बोधिकी उपलब्धि हो, निर्वाणके दर्शन हो। निश्चय प्रकाश पाते ही तुम्हे भेटूँगा।''

परिव्राजक चला गया। बिम्बिसार देर तक खडा दूर पहाडियोमे लुप्त होते उस दीर्घकाय भिक्षुको देखता रहा। भिक्षु फिर न लौटा। सम्यक् सम्बोधिकी ज्योति लिये जब वह लौटा तब बिम्बिसार धरापर न था।

४

बुद्ध कपिलवस्तु आये, पिताके शासनमे। पर सबको निमन्त्रण न मिला। बुद्ध भिक्षापात्र लिये उस महानगरकी सडकोपर निकल पडे। नर-नारी दर्शनको टूटे।

शुद्धोदन भी दौडे, देखा, सतुष्ट हुए। पर एकाएक दु.खी हो उठे। बुद्धसे पूछा—''यह क्या ? यह कैसा अनाचार, सिद्धार्थ ? पिता तुम्हारा शाक्योका प्रधान है, उसीके नगरमे भला यह भिक्षाटन ?''

विश्वका जनक हँसा, बोला—''राजन्, तुम राजाओकी परपरामे जन्मे हो, मै भिक्षुओ, भिखमगोकी परम्परामे। मेरे भिक्षाटनसे तुम्हे ग्लानि क्यो ?''

राजा स्तब्ध रह गया। तथागत अपनी राह चले गये। राजा झट यशोधराके निकट जाकर बोला—''शुभे, तेरा पति सम्यक् सबोधि प्राप्तकर लौटा है, बुद्ध होकर। राजमार्गपर है, दर्शनका लाभ क्यो नही करती ?''

"क्या जानूँ सबोधि, आर्य, क्या जानूँ बुद्धत्व ? मेरे तो आर्यपुत्र, सिद्धार्थ । देहलीके बाहर नही जानेकी । नाथ आयँगे ।" वर्षोकी प्रतीक्षा ने सतीको शक्ति दी थी, विश्वाससे न हिली । देहलीपर जा पहुँची ।

बुद्ध आये । पर भिक्षुके वेशमे, कापाय पहने, भिक्षा-पात्र लिये । यशोधरा खडी थी, राहुलको साथ लिये । तथागतकी दृष्टि पत्नीपर पडी, फिर तनयपर । न वह उसकी पत्नी थी, न वह उसका तनय था । यशोधरा-का हृदय उल्लसित हो गया था । जब उसने पतिको अपरिचितकी भाँति अपनेको देखते पाया, तब उसका दिल बैठ गया । तथागतने अप्रयास भिक्षा-पात्र उसके सामने बढा दिया ।

यशोधराको काठ मार गया । क्षणभर वह स्तभित खडी रही । एकाएक एक विचित्र स्फूर्ति उसकी नस-नसमे लगी । क्षणभर उसने बुद्धको देखा । बुद्धकी चेष्टामे तनिक भी अतर न पडा । पीछे आनद और सारिपुत्र खडे थे । बुद्ध जान-बूझकर उन्हे साथ ले आये थे । जबानवाले जबान चलाते ही है और जबान सदा मुनासिब ही नही चलती । शिष्योके नेत्र भर आये थे, पर पत्नी शान्त थी ।

यशोधरा बोली—"वर्षो बाद आये हो और वह भी भिक्षा-पात्र साथमे लेकर ! स्वागत तुम्हारा ! आशाएँ और थी, पर यदि भीख ही देनी पडी तो अपना अमूल्य रत्न दूँगी, एकमात्र सहारा, मेरे एकाकीपन-का मात्र पूरक, तुम्हारा प्रतिनिधि ।"

उसने राहुलको उठाकर तथागतके बढे हाथोमे दे दिया । तथागतने चुपचाप राहुलको ले लिया । फिर अद्भुत रोष नारीपर छा गया । मातृ-सुलभ गाम्भीर्यके साथ, पत्नी-सुलभ गर्वसे, यशोधरा बेटेसे बोली—"बेटा, पितासे अपनी दाय माग !"

तथागतकी शान्त-गभीर ध्वनि तत्काल उत्तरमे सुन पडी—"आनद, राहुलको प्रव्रज्या दो !"

बुद्धका दाँत

कोहेनूरकी कहानी सबको मालूम है पर कम लोग जानते है कि लका-वाला बुद्धका दाँत भी उसी प्रकार अनेक लोमहर्षक परिस्थितियोमे होकर गुजरा है। दो-सवा दो हजार सालों तक भगवान् बुद्धकी दाहिनी दाढ निरन्तर हाथो हाथ, स्थान-स्थान घूमती रही है। किस प्रकार वह उत्तर प्रदेशकी कसिया (कुसीनारा, कुशीनगर, पहले जिला गोरखपुर, अब जिला देवरिया) से लकाके काण्डी नगरके दन्त-मन्दिरमे पहुँचा, यह बडी दिलचस्प कहानी है।

लकाकी राजधानी कोलम्बोसे कोई ७५ मीलपर समुद्रतलसे प्राय सोलह सौ फुटकी ऊँचाईपर पहाडी उपत्यकामे काण्डीका अभिराम नगर बसा है। प्रकृतिने उसे अपने हरे अंचलसे अनेकधा लपेट दिया है। रबडके वृक्षोकी हरी परम्परा, नारियल और सुपारीके तालवत् छरहरे पेडोकी झुरमुटोकी छायामे 'बोगम्बर' झीलकी फैली हुई निर्मल काया है जिसके उत्तर और पश्चिमके तटोंपर प्राचीन श्रीखण्ड और आजका काण्डी नगर बसा है। सदा वहाँ वसन्त छाया रहता है, शीतल अभिराम वसन्त, जहाँ कभी ग्रीष्म तप नही पाता, जहाँ पावसमे सैकडो-सैकडो मनोरम जल-प्रपात सहसा उसके पहाडोसे फूट पडते है।

वही, उसी काण्डी नगरमे उसी झीलके तीर, बुद्धका जगत्प्रसिद्ध दन्त-मन्दिर खडा है जहाँ सदियो-सहस्राब्दियो घूमकर अन्तमे तथागतके उस दाँतने अपना अन्तिम निवास पाया। इस मन्दिरपर, मन्दिरके इस दन्त-धातुपर, बौद्धोकी बडी अडिग आस्था है। सभी देशोके भिक्षु उसके दर्शनोके लिए निरन्तर आते रहते है।

मन्दिर दोतला है। प्रधान द्वार पश्चिमकी ओर है। द्वारके भीतर द्वार, चन्द्रशिला और सभामण्डपके पीछे मन्दिरका प्रधान भाग है जहाँ बुद्धका वह दाँत स्थापित है।•द्वारपर दो जोडे हाथीदाँत और गज-सिह है। भीतर एक तग जीना है जिससे 'उडमाले' या ऊपरके तलको रास्ता गया है। वही गर्भ-गृह है जिसके द्वारपर नौ हाथीदाँत है, चाँदीके पत्र जडे हुए है। सामने भीतर लोहेकी सलाखे है जिनके पीछे चाँदीकी बडी स्तूपाकार पिटारी है जिसे वहाँ वाले 'करण्डुवा' कहते है। बस उसीमे एकके भीतर एक, सात सोनेकी पिटारियाँ है, रत्न-मोती-जडी। इन सबसे भीतर वाली पिटारीमे रत्नोकी छायासे ढकी स्वर्णकायामे दन्त-धातु सुरक्षित है, पवित्र और दर्शनीय।

ईसासे ४८३ साल पहले कसियामे भगवान्की मृत्यु हुई। देशके रजवाडे और राष्ट्र भगवान्की हड्डियोके लिए जूझ मरनेको उद्यत हुए। ब्राह्मणने उनके नौ हिस्से करके सबको बाँट दिया। यह दाँत किसके हाथ लगा, कोई नही जानता पर जिसके पारसको छूकर बुद्धकी जिह्वा पैतीस वर्षो तक उपदेश करती रही थी वह क्यो कर चुप बैठ सकता था? चला वह पूर्वकी ओर।

पूर्वमे कलिङ्गका राष्ट्र था, पूर्वी समुद्रसे लगा। सागरतीरपर उसकी राजधानी नारिकेलोकी स्निग्ध छायामे सदा जागती थी। भारतके किसी नगरमे तब इतनी हलचल न थी जितनी कलिङ्गके इस विशाल पत्तनमे। सोदोम, तीर और बावेरुके वणिक् अपना कीमती माल लिये आते और अपनी पिटारियाँ खालीकर उन्हे सोनेसे भर लेते। मिस्र और अरबसे, चीन और कोरियासे अपने जहाजोके तल भरे सौदागर आते और इस नगरकी मण्डियाँ भर देते। ग्रीस और रोमकी ओरसे आई यवनियाँ पत्तनके रसिक नागरिकोके विलासका साधन बनती।

असुर देशकी नर्तकियाँ जब अपने विशाल नयनोकी लम्बी अलसायी पलकोकी श्यामल छायामे पत्तनके नागरोके चषक भरती तब नागर अपना

चिरसंचित धन उन्हे सौप देते। इन सरल-साध्य नारियोके प्रकोष्ठ देश-देशके पोतस्वामियोसे कही ऋद्ध थे, उनकी पेटिकाओमे महान् वणिकोके रत्नोसे कही अधिक प्रभा बन्द थी। राजधानीके सागरतटपर, उसके वन-प्रान्तरोमे, नारिकेल-कुंजोमे बहिरुपवनोमे, अट्टोमे विलास पलता था, नग्न विलास, जिसके सम्मोहनकी कोई दवा न थी।

कलिङ्गका साधु राजा अपनी नगरीके इस निरकुश विलासमे दु खी था। नगरके कभीके असख्य श्रमण उसके विहारोकी परम्परासे दृढ गृहस्थो-की अटारियोमे चले आये थे, स्वय गृहस्थ हो गये थे, नर्तकियो-यवनियोकी कमनीय कायाके अकिंचन दास बन गये थे। एकमात्र विहारमे नगर और जनपदके भिक्षु अपनी हास्यास्पद नित्य ह्रास होती सख्यापर आँसू डालते और तथागतके उपदेशोमे रति करते।

महास्थविरने राजासे कहा—"राजन्, सद्धर्म अब, लगता है, धरापर टिकनेका नही, मारकी सेना बलवती हो चुकी है। कुछ प्रयत्न करे, नही तो बची प्रेरणा भी लुप्त हो जायेगी।"

चिन्तित राजाने और भी द्रवित हो पूछा—"सोचा है, भन्ते? सद्धर्म-की रक्षाका कुछ उपाय सोचा है?"

"सोचा है, राजन्", महास्थविरने कहा, "कुसीनारामे भगवान् तथा-गतकी अस्थियाँ सुरक्षित है, उन्हीमे वह दाहिनी दाढ भी है जिसके दर्शनसे सम्भवतः हमारी इस पापविगलित नगरीका पाप नसे। स्वप्न देखा है, राजन्, भेजे दूत कसियाको, मँगाये मल्लोसे वह अनमोल पुण्य रत्न।"

और राजाने कसिया दूत भेजकर मल्लोसे वह दाँत माँग लिया। कलिङ्गके जंगलोसे नये पकडे विशाल गजोके जुलूस द्वारा उस दाँतकी पूजा हुई। नये मन्दिरके गर्भगृहमे उस असाधारण अस्थिरत्नकी प्रतिष्ठा हुई। यह तो पता नही कि सद्धर्मके उखडे पैर पत्तनकी उस धरामे फिर जमे या नही, कि वहाँके विलासियो-विलासिनियोका रस-मान उससे छीजा या

नही, कि मारकी सेनाके उपद्रव कहाँ तक शान्त हुए, किन्तु इसमे सन्देह नही कि आठ सौ साल तक कलिगकी इस राजधानीमे तथागतका वह दाँत बना रहा और अशोकके आक्रमणके समय उस नगरने अपना वह अनमोल रतन बचा लिया ।

ईसाकी चौथी सदीमे कलिङ्गकी स्थिति बिगडी । सारा देश, सागरसे सागर तक, उपद्रवोसे विकल हो उठा था । तथागतके दाँतके भी लाले पड गये और कलिङ्गमे उसकी रक्षा कठिन हो गई । राजाने विहारके महा-स्थविरसे परामर्श किया और ठहरा कि उस दाँतकी रक्षा देशमे न हो सकेगी, उसे विदेश भेजना ही उचित होगा ।

लकाका आकर्षण बडा था । सदियो पहले अशोकके बेटे-बेटी महेन्द्र और सघमित्राने वहाँ सद्धर्मका विस्तार किया था, गयाके बोधिवृक्षकी एक टहनी लगाई थी जो अब विशाल अश्वत्थ हो गया था । राजा और महा-स्थविरने निश्चय किया कि दाँत लका भेज दिया जाय । पर दाँत लका भेजना कुछ आसान न था । कौन ले जाय दाँत लका ? कैसे जाय वह वहाँ ?

राजाकी कन्याको सघमित्राकी याद आई । उसकी काया सद्धर्मके इस रत्नकी रक्षाके लिए तत्पर हुई । वणिकोसे भरे लकागामी पोतके एक तलेमे राजकन्या अपने केशोमे वह महाधन छिपाये पैठी और एक दिन जब लकाकी राजधानीके नर-नारी सो रहे थे, कलिङ्गकी उस राजकन्याने भगवान्के उस दाँतको सागर पार लकाकी भूमिपर उतार दिया । वह साल ३०५ ईसवीका था, उस दाँतके, लकाके, बौद्ध धर्मके इतिहासमे अनोखा ।

पर दाँतका सक्रमण अभी पूरा न हुआ था । उसके पाँव लकासे फिर उठे, हजार वर्ष बाद । १३०० ईसवीमे तामिलोने लकापर आक्रमण किया और तामिल राजा द्वारा तथागतका वह दाँत फिर भारत आया । पर दाँत वह भारतमे रह न सका । दक्षिण भारत और लकामे शक्ति और विजयके लिए तब कशमकश हो रही थी और बार-बार वह दाँत दोनो देशोंकी सन्धियोंकी शर्त बना ।

लकामे चौदहवी सदीके आरम्भमे पराक्रमबाहुका प्रताप चमका और द्रविडराजसे उसने तथागतका वह दाँत छीन लिया। अब वह फिर लका पहुँचा, समुन्दर पार, पुलस्त्यपुर। जिस मन्दिरमे वह दाँत तब पधराया गया वह आज भी पोलन्नासव नगरके एक भागमे भग्नावस्थामे खडा है।

पर उस नगरके उस जीर्ण मन्दिरमे वह दाँत अब नही है। दो सौ वर्ष बाद वह दाँत पुर्तगालियोके हाथ लग गया।

पुर्तगाली पादडी तब आजकेसे अकिचन न थे, अपनी सेनाकी वे हरा-वल थे। स्पेनमे 'इन्क्विजिशन' नामक जिस भयानक धर्म संस्थाने कभी भीषण नरयज्ञ किये थे उसके उत्तराधिकारी यही पुर्तगाली पादडी थे। तलवार और आग इनके सहायक थे, यन्त्रणा और पाश इनके धर्म-प्रतीक! पूर्वी देशोंके सारे तटोकी भूमि इन्होने रक्तसे लाल कर दी, भस्मसे काली। इनके अत्याचारसे सागरतटीय जनता सर्वत्र त्राहि! त्राहि! करने लगी थी। लकाके नर-नारी भी इनकें जुल्मसे तबाह हो उठे।

इन्ही पुर्तगालियोके हाथ एक दिन तथागतका वह दाँत लग गया। पुलस्त्यपुरकी वह स्वर्ण-पिटारी फिर उसकी रक्षा नही कर सकी। लकामे तब वह दाँत फिर गोआ आया, जो तबसे आजतक पुर्तगाली सरकारका प्रधान केन्द्र रहा है।

ब्रह्मामे पेगूके राजाको उस दाँतकी ललक लगी और उसने पुर्तगालियो-के लिए अपना चिरकालसे सचित धन-भण्डार खोल दिया। पर पुर्तगाली पादडी उस धनपर न रीझे। किसी मूल्यपर वे दाँत बेचनेको राजी न हुए। ससारके भिक्षु तड़प उठे। लका, भारत, बर्मा, स्याम तत्पर हो पुर्तगालियो-से दाँत छीन लेनेके उपाय सोचने लगे। दाँतको हस्तगत करनेके लिए षड्यन्त्रोकी धूम मच गयी।

अब जब पुर्तगालियोने देखा कि यद्यपि समुद्रकी लडाईमे उन्हे जीत सकना शत्रुओके लिए सम्भव नही है, कुछ अजब नहीं जो उनका षड्यन्त्र

फल जाय और इसलिए उन्होने दाँतको नष्ट कर देनेका निश्चय किया। बौद्ध ससारमे हाहाकार मच गया।

और एक दिन गोआके पादडियोने पुर्तगाली सरकारकी छायामे उस दाँतको जला डाला। उसका भस्म स्वय पुर्तगाली गवर्नरने गोआके समुद्रमे अपनी आँखोके सामने डलवा दिया। भस्म सागरकी लहरोमे लुप्त हो गया। तथागतके उस दाँतकी इहलीला भी दो हजार साल बाद समाप्त हो गई!

पर नही, षड्यन्त्र फल गये। लकाके भिक्षु सफल हुए। गोआके सरकारी खजानेसे, पुर्तगाली गारदकी रक्षासे, उसकी तोपोके पीछेसे, पादडियोकी सतत जागरूक आँखोके नीचेसे एक दिन वह दाँत गायब हो गया। पुर्तगाल सरकारने, उसके सैनिको-तोपचियोने, पादडियोने न जाना कि वह दाँत उसके हाथसे निकल गया, कि जो बचा है वह असली नही नकली है।

और एक दिन वह दाँत चुपचाप लकाके राजा विक्रमबाहु चतुर्थके दरबारमे जा पहुँचा। वह १५६६ का साल था। राजाने सिर-आँखोपर उसे लिया। काण्डीमे उसके लिए उसने मन्दिर बनवाया जिसके कगूरे पर्वतकी चोटीपर काण्डी नगरमे बोलाम्बर झीलके जलमे झिलमिलाने लगे। उसी मन्दिरमे तथागतका वह दाँत अन्तमे सुरक्षित हुआ जिसने अपने अबतकके इस ढाई हजार सालके जीवनमे भारत और लकाके बीच अनेक यात्राएँ की, अनेक उलट-फेर देखे, युद्ध देखे।

वैशालीकी गणिका

उत्तर बिहारके जिला मुजफ्फरपुरमे, जहाँ आज बसाढ गाँव है, वही कभी सम्राट् अजातशत्रुसे टक्कर लेने वाले वज्जियोके प्रबल सघकी राजधानी वैशाली थी। वैशालीका वैभव मिथिला और पावासे, कुसीनारा और कपिलवस्तुसे कही बडा था। उसके मानधनी, रूपधनी, जनधनी नागरिकोके ऐश्वर्य और विलासकी कहानी जनपदोमे कही जाती थी, गाई जाती थी।

उसी वैशालीके लिच्छवि-कुमार जब अपने अभिराम दुकूलोमे सजे आभरणोसे दमकते रथोपर चढे भगवान् बुद्धके दर्शनोको चले, तब भगवान्ने अपने भिक्षुओको पुकारकर कहा था—"देखो भिक्खुओ, देखो—स्वर्गके तैतीस देवताओको जो तुमने अपनी अन्तर्दृष्टिसे अब तक न देखा हो तो, भिक्खुओ, उन्हे अब देखो। इन लिच्छवियोको देखकर उन्हे जानो, साक्षात् देखो उन्हे, सशरीर देखो।"

उसी वैशालीकी, उसके विलास बोझिल सौरभकी, उसके राग-मदिर लिच्छवियोकी, उसकी भुवन-मोहिनी गणिका आम्रपालीकी कथा है यह, इतिहासमे अनुपम, जीवनमे अभिराम, विरागमे अभिनव।

तब वैशाली केवल लिच्छवियोकी थी, मात्र उनकी। उन्ही लिच्छवियोमे लक्ष्मीका लाड़ला वह महानाम था जिसके धनकी कथाएँ गगा, सदानीरा और बागमतीकी धाराएँ कहती, जिसके विलासके काननमे मदनके पाँचो बाण शिथिल हो गये। उसी महानामकी एक कन्या थी, आम्रपाली।

आम्रपाली बढ चली, शैशवसे कैशोरकी ओर, और कैशोरसे यौवनकी ओर, पोरपर पोर खोलती। और तब मनस्विनी रति वैशालीके प्रमद-

वनोसे विरक्त हो गई जब उसने उनके पारिजातोपर, बकुल और मन्दारोपर, आमोपर उस नवयौवनकी मदिर छाया डोलती देखी ।

आम्रपालीकी लोनी कायामे छबि छलकी तब मानवकी गति बन गई । नागरिकाओकी अलकोके फूल मुरझा गये, उनके स्निग्ध कुन्तल रूखे हो गये, कजरारे उपान्त सूने । उनके सजन खो गये, रनिवासोकी रागिनियाँ मूक हो गई ।

वैशालीका राग अब प्रमदवनोसे, रनिवासोसे महानामके महलोकी ओर बह चला, जहाँ आम्रपालीकी घनी भौहोकी छायामे थके मन्मथके धनुषने अवकाश लिया था, जहाँ उसके अलसाये नयनोमे ममताके डोरे बिछे थे । वही वैशालीके तरुण मँडराने लगे, वही उनके गुरुजन अपने मोहपर आचारका आवरण डाले ललचाये डोलने लगे ।

उस अपनी अलबेली कन्याके लिए महानामने दूर देशोमे ब्राह्मण भेजे, कुशल चर, चतुर चेरियाँ भेजी कि आम्रपालीके अनुकूल वर मिले, कि उसकी मजरीसे कोई सुभाग अपनी अजली, अपनी नासा भर ले ।

पर जब बौराये आमोकी मजरी अपना कोष खोल देती है तब क्या अपनी ही रजको वह अपनी सुरभिकी गाँठोमे बाँध पाती है ? तब क्या उसकी झरती पराग अजलीमे बँध पाती है ? एकाकी नासाकी परिधिमे घिर पाती है ? न घिर पाई वह सुरभि नासापुटोमे, अजलीमे वह न बँध पाई । मजरीके कषायरससे बौराये कोकिल कूक उठे, भौरोकी गूँज गहरा उठी ।

देश-विदेशके विलासी भाव-रागके धनी, मतिमान, गायक, कवि, प्रताप और ऐश्वर्यके दर्पसे झूमते राजा, धनसे विख्यात दानके जसी सेठ आये, उन्होने महानामकी अनुनय की, आम्रपालीका प्रसाद माँगा, पर न तो महानाम पसीजा न आम्रपाली रीझी । वैशाली हँसती रही बाहरसे आये उन चँवरोपर, धवल छत्रोपर, रथो-पालकियोपर ।

क्या करे महानाम अब जब कन्याका यौवन सर्प-सा छत्र उठाये विष-

जिह्वा लपलपाता उसे डँसने लगा था। जा पहुँचा वह लिच्छवि-गणके संथागारमे। सात हजार सात सौ सात लिच्छवि कुलोका, कुलागत राजाओं-का गण था वह। महानामने कन्याको गणके सम्मुख ला खडा किया, बोला—महानामकी कन्या है यह आम्रपाली। गण इसका भावी सोचे, इसका भविष्य विचारे। गण किनारोकी मर्यादासे उचकती नदीकी भाँति इस कन्याका विधान करे, इसके लिए योग्य वर दे। आतुर याचकोसे वैशाली भरी है, गण विचार करे, गण विधान करे, गण कन्याका मंगल करे!

और कन्या संथागारके भद्रासनपर कटिपर दोनो कर टेके खडी थी, छबिकी लौ-सी कनक रुचिर वह काम-काया। वातायनोसे छनकर आती बयार उसके कुन्तलोको, केशपट्टसे बँधे होनेपर भी, छेड-छेड उडा रही थी। पलकोकी कजरारी विपुल छायामे कानोतक फैले उपान्तोकी कोरे बाल-सी महीन हो गई थी। कलाइयोपर वलय कसे थे, भुजाओपर भुज-बन्द, कानोमे बालियाँ डोल रही थी, अंशुकसे आबद्ध कुच उचक रहे थे, जैसे खिझे कपोतपर मारकर उड जायेगे। और उनपर पडी एकावलीका निचला सिरा क्षीण कटिके नीचे लहराती त्रिवलीको छूती थी। और नीचे पीन-जघनोसे सटी धोतीकी छोरे पैरोके बीच त्रिकोणाकार हो भद्रासनको चूम रही थी। आम्रपालीका कोमिल तीखा चिबुक मस्तककी मुद्रासे तनिक आगे ऊँचा उठ आया था, भरे रक्तिम अधरोपर स्मित हासकी रेखा खेल रही थी। महानामकी आँखे मस्तकके साथ झुक गई थी, दण्डधरोके पसीने छूट रहे थे, गणराजाओके मर्मको नाग डँस रहा था।

गणकी गुप्त मन्त्रणा शुरू हुई। गणने विधान किया—आम्रपाली 'स्त्रीरत्न' है, गणकी! एकजाई सम्पत्ति, एकाकी प्रभुत्वसे ऊपर! परम्परा-के अनुसार महानाम उसे गणको सौप दे!

परम्पराके अनुसार महानामने आम्रपालीको गणको सौप दिया। वैशालीकी वह सबसे आकर्षक लावण्यवती सुन्दरी थी। परम्पराके अनुसार

वह गणिका बनी, गणकी भोग्या, जिसपर गणके सभी जनोका समवेत अधिकार हुआ। पतिके एकजनीन अधिकारसे वह वचित रही। हालके खिले कुसुमकी भाँति उसपर तितलियाँ मँडराने लगी, भ्रमर गुंजारने लगे, निर्बन्ध, यथेच्छ, क्रूर।

एकान्त अमराइयोकी सीमापर आम्रपालीका गणिका-प्रासाद बनने लगा। प्रकोष्ठपर प्रकोष्ठ चढे, अलिन्दपर अलिन्द लटके, शिखर बादलोमे खो गया। तब चितेरे तूलिका और लम्बकुर्च लिये भवनकी भित्तियोपर भाव-चित्र लिखने चले। गणिकाने उनसे कहा, देखो, तुम देश-देशसे आये हो, देश-देशमे तुमने चित्र लिखे है, देश-देशमे राजा, सेठ और श्रीमान् देखे है, उन सबकी आकृतियाँ लिखो, आकार चेष्टाएँ लिखो!

चितेरोने चित्र लिख दिये, अभिराम मर्महर चित्र, सजीव और कोमल रुचिर और प्रणय-निष्ठुर! रमणागारकी दीवारें बोलती, झिझकती, रागाकुल आकृतियोसे उमँग उठी। भारी पर्यककी दीवारोसे काम-विकल अलसाई चेष्टाएँ उचकने लगी। सरोवरोके बीच कमलवनको रौदता मदान्ध गजराज हथिनियोके साथ गुंजलक भरती सूँडसे, पार्श्वसे, पैरोसे परसने लगा। हथिनियाँ पद्मसुरभिसे बसे जलको सूँडमे ले, क्षणभर उससे अपना अन्तर भर मर्मस्थ बना गजराजपर उसका फव्वारा छोड-छोड उसे नहलाने लगी। भौरा समान कुसुम-चषकसे पुष्प-मदिरा प्रिया भौरीको पिला स्वय जूठी पीने लगा। चकवा कमलका कोमल बिस पहले स्वय चख-चख चकवीको चखाने लगा। कामवाहन तोते नीवि-बन्धपर निर्मम चचु-प्रहार करने लगे। विलगता मृग दूरसे लौट-लौट विरहिणी प्रियाको देखने लगा, प्रिया अधकुचला दर्भ मुँहसे गिराती कर्णायत पलकोको उठाये चितचोर प्रियको देखती रही, देखती रही। कामुक कपोत गुटर-गूँ करते कपोतियोको छेडते, उनका पीछा करते और रोम-रोम काँपती कपोतियाँ उन्हीसे भाग फिर उन्हीके पखोके नीचे आश्रय लेती। प्रणयी सकेतस्थानकी कुसुमशय्याओं-पर अभिसारिकाओके नीवि-बन्ध आतुर करोसे खोलने लगे।

गणिकाका काम-भवन फैली शाद्वल भूमिमे दीर्घिकाओकी परिखासे खिले पद्म-सा लगता। प्रमदवनकी झुरमुटोसे केकी फटी वाणीसे प्रियाओको पुकारने लगे, पजरस्थ शुक-सारिकाएँ निकुञ्जोमे रमते मानव जोडोकी केलिसे चुराये वाक्योको दुहरा-दुहरा सुनने वालोके मर्म बेधने लगी। मूक चित्रोकी भाव-सम्पदा देखने वालोको बरबस राग बन्धकी ओर खीचने लगी। आम्रपालीका सस्कृत उदार मन वैशालीके उस कामभवनमे देश-विदेशसे पधारे ग्राहकोको अपने राग-कोषके द्वार खोल निहाल कर देता और गणिका उनसे पाई स्वर्णराशि दासियोकी ओर सरका देती। अपने आचार्योकी आशाएं उसने पूरी कर दी। उसका मायावी तन कृत्रिम औदार्यसे, प्रसन्न चेष्टासे, प्रणयियोके सामने पर्यकपर लेट जाता, पर उसका मानस रमणागारसे परे सरक जाता, उसका मन उसकी कायाकी परिधिमे न बँध पाया।

पर एक दिन वही मन मूक चित्रके मोहसे बँध गया। पर्यकके पायतानेकी दीवारपर एक उन्मुख मस्तक चिता था। आम्रपालीने उसे युग भर निहारा था। पहले उसने उसकी ओर विशेष ध्यान न दिया था, उसे भी उसने चित्रधारामे प्रवहमान एक साधारण उद्दीपन माना था, पर बार-बार जब वही मस्तक अपनी कोमल भाव-साधनासे उसे निहारने लगा तब गणिकाने उसे विशेष कौतुकसे देखा।

पर कौतुक मात्र कौतुक न रह सका। शीघ्र वह कुतूहलमे बदल गया और गणिकाका निर्बन्ध मन पहली बार मोहके जालमे जा बँधा। रहस्य जानना चाहा उसने उस भुवनमोहन मस्तकका, उसके कोमल मूक मनका भेद! वह उसे विरामके क्षणोंमे हेरती, पाकर निहारने लगती। थकी काया जैसे उसके स्निग्ध अवलोकनसे सद्य-स्नानकी ताजगी पाती, अभितृप्त हो जाती।

पर उस मस्तकको केवल निहारकर ही कुतूहलकी प्यास अब न मिटती। जिसे जागृतिके दर्शनमे, सुषुप्तिके स्वप्नमे, मनके सूनेमे अविराम देखा था उसका जादू धीरे-धीरे आम्रपालीके अन्तरपर काबू कर चला।

धीरे ही धीरे उसने जाना वह मस्तक न केवल उसके व्यवसायका मात्र मूक साक्षी है वरन् स्वय उसके एकाकी मनका सहचर है, सदाका परिचित आत्मीय है, और उसका साधुमन उसी कमनीय मस्तकके परसनेको ललक उठा।

पर मस्तक वह मात्र राग और रेखाओका था, यद्यपि आम्रपालिकाको लगा कि ऐसा मस्तक निश्चय मात्र राग और रेखाओका नही होता, नि सन्देह चितेरेने अनुकार्यकी नकल की है। और उसने अपने भित्तिचित्रोके चितेरोको बुला भेजा। चितेरे आये पर वह न आया जिसने वह मस्तक लिखा था। वायुकी तरह निर्द्वन्द्व गतिमान चितेरा कामकी खोजमे देशान्तर चला गया था।

गणिकाके चरोने एक दिन उसका पता पा लिया, एक दिन वे उसे गणिकाके पास बुला लाये। गणिकाने जाना कि मस्तक वह मगधराज बिम्बिसारका है। उसने और भी जाना कि नवनिर्मित राजगृहके शयनागारमे सामनेकी दीवारपर उसी चित्रकारने एक नारी मस्तक उसी चेष्टामे लिखा है और उसे भी बिम्बिसार उसी मोहसे निहारा करता है जिस मोहसे आम्रपाली उसके मस्तकको अपने रमणागारमे निहारती है।

दोनोने दोनोको जाना। शत्रु लिच्छवियोकी राजधानीमे आम्रपालीके भवनमे बिम्बिसार एक दिन वेष बदलकर जा पहुँचा और आम्रपालीने उसे अपने तनको मनकी परिधिसे बाँधकर सौप दिया। नौ महीने बाद अभयकुमारकी शिशुवाणी आम्रपालीके काम-भवनकी शुक-सारिकाओने दोहराई, गणिकाका व्यवसाय विरमा।

आम्रपालीने वेलुवनमे सौम्य तथागतके शान्त वचन सुने। उसके भीतरका कोलाहल थम गया। सुगतकी वह उपासिका बनी। उसने सुगतको अपने भवनमे भिक्षा ग्रहणके लिए ससघ आमन्त्रित किया। सुगतने मौनद्वारा उसका आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। लिच्छविकुमारोने आम्रपालीका आमन्त्रण विफल करनेकी हज़ार चेष्टा की पर उनकी अनुनय

सुगतने न सुनी और आम्रपालीने लिच्छविकुमारोंके रथोंके बराबर विजयसे पलकित हो अपना रथ हाँका।

और उसके आम्रकाननमे पचशीलके नियम व्यापक हुए। अबतक आम्रपाली गणकी थी अब उसने अपने मनको कंगलोंकी सेवामे लगाया। एक सार्वजनिक अनुष्ठानसे दूसरे सार्वजनिक अनुष्ठानकी ओर उसकी प्रगति हुई। विलासने अवकाश लिया, लोक-क्षेम उसकी साँसोंमे बसा। लिच्छविकुमार पहले उसके रूपके मारे हो थे अब वे उसके धर्माग्रहकी ईर्ष्यामे भी जल मरे।

जो झुका नहीं

मोरचा झेलमके तटपर था, हिन्दुस्तान और मकदूनियाका पहला मोरचा। गागामेलाके मैदानमे जो ईरानी साम्राज्यके टखने टूटे तो मकदूनियाके मन्सूबोकी कोई हद न रही। सिकन्दर और उसके सरदारोने दाराके खानदानको खत्म कर डाला। दाराके शहजादोने वाख्त्रीमे शरण ली थी, हिन्दूकुशकी तराइयोसे निकलकर सिकन्दरने आमू लाघ उन्हे बरबाद कर दिया।

फिर जो वह लौटा और हिन्दुस्तानको उसने हिन्दूकुशकी ऊचाइयोसे देखा, तो उसके मुँहमे पानी भर आया। पर कन्धारियोने जो उससे लोहा लिया था उससे जाहिर भी हो गया था कि आगेका मैदान गागामेलाका नही है। आगे वढते ही उन अश्वको (अफगानो) ने उसकी राह रोकी जिन्हे आजतक कोई गुलाम नही बना सका।

मस्सगका दुर्ग अगला मोर्चा वना। जमकर जग हुआ। जुझाऊ लडाईमे राजाको तीर लगा और सिकन्दरके पव बारह हुए। दुर्गमे सात हजार हिन्दुस्तानी सिपाही थे जो अफगानियोकी मददको आये थे। सिकन्दरने उन्हे वचन दिया—'निकल जाओ, तुम्हे कोई नही छुयेगा। युद्धजीवी निकले, अपनी सीमाकी ओर चले। तभी सिकन्दरने उनपर हमला किया। उन्होने अपनी वात तोडनेके लिए उसे धिक्कारा।

उसने कहा—'तुम्हे किलेसे निकल जानेकी बात मैने कही थी। सदा दोस्ती निबाहनेके लिए नहीं।' फिर निर्भीकतासे लडता हुआ एक-एक भारतीय वीर मारा गया। मर्दोंके मरते ही औरते सामने आई और ग्रीसकी सेनाने ज़नानी फ़ौजसे मोर्चा लिया। भीषण युद्धमे एक-एक नारी-सैनिकने वीरगति पाई। इतिहासकार दियोदोरसने इन आजादीकी दीवानी औरतोको

लेखनीसे अमर कर दिया ! प्लूतार्चने लिखा—'सिकन्दरके जगी यशपर यह अपयशका गहरा स्याह धब्बा था, जो कभी धुल न सका

पर असली मोर्चा झेलमके तटपर था ! झेलमकी राह भी खुली थी । तक्षशिलानरेश कायर आम्भीने भारतका सिहद्वार विजेताके सामने खोल दिया था । झेलम पार दोआबका स्वामी था राजा पुरु जो अपनी मुट्ठी भर सेना लिये खडा था । तीन हजार घुडसवार, हजार रथ, सवा सौ हाँथी, कुछ हजार पैदल खडे थे । ससारकी चुनी हुई सेनाके सामने—योरप, अफ्रीका, एशियाकी सेनाके। ग्यारह हजार घुडसवारोके साथ खुद सिकन्दरने रातके अधियारे और बरसतेमे राह चुराई थी । क्रातेरस, मिलीगर और अनेक-अनेक ग्रीक सरदार हजारो-हज़ारो चुने सैनिक लिये इस पार चौकन्ने खडे थे कि सिकन्दर हमला करे और यह मौका पाते ही नदी पार कर दुश्मन पर टूट पड़े ।

बिजली जो चमकी तो शत्रुकी दुरभिसन्धि पुरुपर प्रगट हो गई । उसने जाना कि दुश्मन नदी पार कर आया । दो हजार पैदलो और सौ रथोके साथ उसने बेटेको भेजा । अन्जाम उसे मालूम था । कहाँ दो हजार पैदल, कहाँ चुने हुए ग्यारह हज़ार घुडसवार ! जगत् प्रसिद्ध ग्रीक फैलेक्स जिनका सचालन ससारका सबसे बडा जनरल कर रहा था । जूझ गया बेटा, अपने दो हजार शहीदोके साथ ।

बाप आगे बढा, झेलम-तटवर्ती जिलोका स्वामी राजा पुरु आगे सरका । मिस्र और ईरानी सम्राज्यके विजेताके सामने झेलम और चिनावके दोआवके एक टुकडेका जमीदार अपनी वेखौफ फौज लिये खडा था । बेटेकी मौत सुन वह आगे बढा । सिकन्दरकी सेना इस छोटी कुमकको देख तेजीसे आगे सरकी । पर जब आमना-सामना हुआ तब सहसा सिकन्दरने अपने घोडेकी बाग रोक दी । ग्रीक रिसालेकी गति रुक गई और सहसा जो उस विश्वविजेताके मुँहसे उद्गार निकला, उसने पुरुके यशमे चारचाँद

लगा दिये। 'आखिर वह खतरा सामने है', सिकन्दर बोला, 'जो मेरी हिम्मतको ललकारता है। आजका जग बनैले जन्तुओसे है, बांके लडाकोसे; गजबके इन्सानोसे।'

मकदूनियाके रिसालोने अपना भीषण हमला किया। चोट बाजूपर थी, पुरुके वीरोने उसे घूमकर अपने सीनोपर लिया। बाजू चकनाचूर हो गया! एक-एक घुडसवारपर पाँच-पाँच ग्रीक सैनिक थे। भारतीय वीर अपनी जगहसे हिले नही, यद्यपि वही उनकी जान निकल गई। दिनके आठवे पहर तक घमासान युद्ध चलता रहा। शहीद होते भारतीयोकी पेशानीपर बल न पडा। पैदल और सवार, गजसेना और रथ सभी जूझ रहे थे।

पुरुकी शक्ति वस्तुत रथोमे थी। भारतीय रथको चार-चार घोडे खीचते थे, उसपर छह–छह सैनिक सवार होते थे। दो ढाल धारण करते थे, रथके दोनो ओर दो-दो धनुर्धर खडे होते थे और दो सारथी, जो बढते रथका सचालन करते थे। पर जब लडाई जम जाती तब वे रास अकुशमे टिका गजबकी मार करने लगते, शत्रुपर तीर बरसाने लगते। पर आजकी लडाईमे रथ न केवल बेकार हो गये वरन् उन्हीके कारण दुश्मनकी गोटी लाल हो गई। मौसम आडे आया। रात-दिन जो मेह बरसता रहा था, उसने केवल सिकन्दरको नदी पार करनेमे मदद नही की, जमीन भी उससे बडी रपटीली हो गई थी। रथके घोडे फिसल पडते थे, रथके पहिये कीचडमे आधे-आधे धँस जाते थे। उनका वजन भारी था फलत धँस जाना स्वाभाविक था। तीरन्दाज जमीनपर कमानका निचला सिरा टिका लम्बे तीर छोड़ा करते थे, अब जमीन रपटीली हो जानेसे उनके सिरे टिक नही पाते थे।

उधर हाथी भी बुरी तरह भडके। ग्रीक धुनर्धरोने जम कर उन्हे घायल किया। निशाना उनकी आँखोको ही बनाया, फिर उन पर फरसे लेकर पिल पडे। अब जो भेडोकी तरह भभर कर हाथी भागे तो अपने ही सवारोंको उन्होने कुचल दिया, दुश्मनसे ज्यादा अपनी ही सेनाको क्षति

पहुँचाई। पर जीत कर भी सिकन्दरने जाना कि झेलम-तटका यह करींका मैदान गागामेलाका मैदान नही और पुरु भी दारा नही है।

पुरु निश्चय ही दारा नही था। बेटेके जूझ जानेपर आठ पहर तक उसने जमकर लड़ाई की थी। बाणपर बाण बरसाये थे। नौ-नौ सगीन चोटोंके बावजूद वह अपनी जगह खडा रहा था। बदनसे लहू बहुत निकल जानेपर चोटसे जर्जर अपनी जगह खडे रहने तकका ताव जब उसमे न रहा तब कही शत्रु उसे पा सका। और तब, जिस निर्भीकतासे उसने शत्रुके सवालोका जवाब दिया इतिहासमे उसका सानी नही।

खूनसे लथपथ, श्रमसे थका जब वह सिकन्दरके सामने लाया गया तब विजेता उसकी ऊँचाई देख दग रह गया। उसने अपने चारो ओर नजर फेकी तो देखा कि ग्रीकोमे कोई उतना ऊँचा न था, न सैनिक न सरदार। उसकी दिलेरीमे जरा फर्क नही पडा था और सिकन्दरके सामने मस्तक उठाये वह वैसे ही पहुँचा जैसे ताकतकी आजमाइशके बाद एक जवाँमर्द दूसरे जवाँमर्दसे मिलता है।

और सिकन्दरके सवालका जो उसने जवाव दिया, वो तो बेमिसाल है। सिकन्दरने पूछा—"तुम्हारे साथ व्यवहार कैसा किया जाय?"

पुरुने तत्काल उत्तर दिया—"जैसा राजा राजाके साथ करता है!"

सिकन्दरकी बेबसी

व्यास नदीके किनारे यूनानियोने हथियार डाल दिये। सेना अब आगे बढनेको तैयार न थी। कहते है कि पिछले तीन सालोमे मकदूनिया और यूनानकी सेनाओने बहुत-कुछ झेला था। दिन-रातकी लडाई, घरसे रोज़ बढती हुई दूरी, दुश्मनोके बढते हुए आलमकी गहराई। आखिर लडनेकी भी तो कोई हद होती है, महत्त्वाकाक्षाकी भी कोई सीमा।

घर छूटा, परिवार छूटा, हीत मित्र छूटे और राहमे साथी लडाइयोमे खेत रहे। कपडे फट चुके थे, स्वदेशसे उनका आना कठिन था, लूटका जीवन भी अब यूनानी सैनिकोको नही भरमा पाया। व्यासके तटपर उन्होने हथियार डाल दिये, बगावत कर दी। अब आगे न बढनेका फैसला कर लिया।

आगे बढना कुछ खेल था भी नही। आगे मगधका राजा नन्द अपनी विजयवाहिनी लिये खडा था—नन्द, जिसने देशके सारे क्षत्रियोका नाश कर शूद्र-राज्यकी नीव डाली, जिसने भारतका पहला ऐतिहासिक साम्राज्य स्थापित किया था, जिसकी सेना अपार थी। ख़बरे आती रहती थी, कुछ सच्ची, कुछ झूठी पर ऐसी खबरें जिन्होने सिकन्दरकी सेनाके दिल हिला दिये थे। हिन्दुस्तानमे उस सेनाने एक नई मरदानगी देखी थी। देखा कि यह नई मरदानगी हिन्दुस्तानकी अपनी थी, अपनी मरदानगीसे भिन्न, ईरानी-बलखी मरदानगीसे भिन्न, कन्दहारी-खुरासानीसे भिन्न। पुरुने दो-तीन हज़ार घुडसवारोके साथ बीसो हजार यूनानी रिसालोके खिलाफ करीमे मोरचा बनाया था। कठोने सगलमे उन्हे जो चने चबवाये वे लोहेके थे और यदि राजा पुरु अपनी सेना लिये स्वय सिकन्दरकी मददको न आ जाता तो कठोकी मारसे यूनानियोकी जो गति होती वह उनसे छिपी

न थी। चप्पे-चप्पे जमीनके लिए जिस प्रकार भारतीय अपना खून बहा रहे थे, उससे विदेशियोने जाना कि आगे की दुनिया और कठिन है, उसको सर करना कुछ आसान नही। उन्होने जो मगधराजकी भीषणता, उसकी सेनाकी विपुलता और शक्तिकी बात सुनी तो उनके तलवोसे पसीना छूटने लगा। न यशकी तृष्णा, न लूटकी उम्मीद उन्हे अपने इरादेसे हटा सकी। यूनानी सैनिक बेकाबू हो गये।

सिकन्दरने उन्हे लाख समझाया, उनकी विजयोकी याद दिलाई, हार-का खौफ सामने रखा, अपजसका डर दिखाया, पर वे टस-से-मस न हुए। उनका रोना-चीखना और बढ गया। व्यासकी धारामे यूनानी सरदारोके आँसू मिलने लगे, क्योकि अधिकतर सरदारोने सेनाका साथ दिया। सिकन्दरके खबरोके झूठा बतानेपर कोइनासने कहा—"कुछ अजब नही, सिकन्दर, कि यह खबरे कुछ अशमे झूठी हो, पर उनकी झुठाईके बीचसे ही जिस सचाईका आभास मिलता है, वह स्वय उस विपुल विपद्की ओर सकेत करता है जिससे बच पाना असम्भव हो जायगा।" क्रोधके मारे सिकन्दर जलभुन गया। उसने अपनेको शिविरमे बन्द कर रखा, अपनी फौजको, अपने सरदारोको उसने दिनो शक्ल तक न दिखाई, जैसे मातम मना रहा हो। पर दिल किसीका न पसीजा, न सेनाका, न सरदारोका। सिकन्दरकी तलवार, उसका क्रोध, उसका गिडगिडाना कुछ भी सफल न हुआ। शिविरसे जो वह बाहर निकला तो स्थिति उसने वही पाई, मायूसीकी।

पहले तो सिकन्दरने अपने सरदारो और सिपाहियोके मनकी टोह ली, पर जब देखा कि हालत पहली-सी ही डर और सदमेसे भरी है, तब वह भडक उठा। उसने दुश्मनोके बीच अकेले पिल पडनेकी धमकी दी। बोला—"छोड दो फिर मुझे नदियोके खतरोके सामने, हाथियोके क्रोधका निशाना मुझे बन जाने दो और उन जातियोका शिकार मुझको होने दो जिसका नाम मात्र तुम्हे भयसे आक्रात कर रहा है। लौट जाओ तुम, मै ऐसे

जवान ढूँढ लूँगा जो तुम्हारे बावजूद मेरा अनुसरण करेंगे।" पर उसका भी असर न हुआ। मकदूनियाकी फौजोंने उस खतरेको साफ़ देखा, जिसकी ओर सिकन्दरने इशारा किया था, पर अपनी जान सरदारकी जानसे ज्यादा प्यारी थी। अब उन्हें उसकी बाजी लगाना यकीनी मौतके सामने मंजूर न था।

बेबस सिकन्दरके मुँहसे आखिर निकल ही पड़ा—"मेरी आवाज बहरे कानोंपर पड़ती रही है। मैं उन दिलोंको ललकारता रहा हूँ जो बागी हो गये हैं, जो डरसे कुचल गये हैं। जाओ, लौटो वतनको, पर याद रखो कि अपजसकी स्याही अपनी पीठपरसे धो न सकोगे, भूमध्यसागरका सारा जल उसे धो न सकेगा।"

यह सिकन्दरकी आखिरी कोशिश थी, जो बेकार हुई और उसने लाचार हो सेनाको लौटनेका हुक्म दे दिया। उस अगली लड़ाइयोंके डरसे छुटकारा पा जानेपर यूनानी सेनाकी खुशीका ठिकाना न रहा। उस खुशीमें जो जशन किये, खेल-कूदमें, गाने बजानेमें, नाच-रंगमें जो मस्ती दिखाई, उससे जाहिर था कि उसे नई जिन्दगी मिली थी, नये खतरोंसे जान बची थी। व्यासकी लहरें और गम्भीर हो तटपर टूटने-बिखरने लगीं।

चाणक्यका भविष्य दर्शन

१

चाणक्य तब बालक था, छ वर्षका। पिताकी गोदमे बैठा हुआ था। ज्योतिषी सामने चला जा रहा था। पिता कई दिनोसे उससे बालककी ग्रह-दशा देखनेको कह रहा था। नित्य ही वह उस राह निकलता, नित्य बालकका पिता उसे टोकता, बालककी हस्तरेखाएं, उसकी ग्रहदशा देख उसका भविष्य बतलानेका अनुनय करता और नित्य ज्योतिषी बात सरका कर चला जाता।

पिताके पास दक्षिणाके लिए पैसे न थे और सारा फलित, सारा पौरोहित्य पैसोपर ही टिका था। इधर घरकी अवस्था बिगड गयी थी। घरका यह बालक अकेली सन्तान था, समाप्त होती पीढियोका अन्तिम अकुर और पिता उसीको देख ढाढस बाँधता था। कौन जाने, चणकका कुल इसी सन्तानके भाग्यसे समाप्त होता-होता बच जाय। पर उस स्थितिकी गणना तो केवल वह ज्योतिषी ही कर सकता था और वह अर्थहीन व्यापार करनेको राजी न था।

पर आज वह सहसा रुक गया। पिताने जब उसे बालककी हस्तरेखा देखनेको कहा तब ज्योतिषी क्षणभर रुका, उसने अपनी चुन्दी आँखे मिचमिचायी, लम्बी बंधी शिखापर हाथ फेरा और चन्दनभरे ललाटकी रेखाओको सकुचित करता बोला—"यजमान, बालककी हस्तरेखाएँ क्या देखूँ, उसकी तो वैसे ही भावी प्रबल दीखती है। जिसके दाँत ऊबड-खाबड होते है वह बडा भाग्यवान् होता है। देखो, इसका वह सामनेका दाहिनेसे तीसरा

दाँत जो अपने बाँये वालेपर चढ गया है इसके भाग्यको व्यर्थ न जाने देगा । निश्चय इसे महान् वनायेगा ।"

पिता सतुष्ट उस दाँतकी ओर अभी देख ही रहा था कि बालक सहसा हिला । उसने ज्योतिषीकी ओर देखा फिर पूछा—"क्या कहा ? मुझे यह टेढा दाँत महान् बनायेगा ? यह जड चेतनको महत्ता देगा ?" और झट वह पिताकी गोदसे गलीमे कूद पडा । उसने पडी ईट उठा ली और उस टेढे बाहर निकले दाँतपर दे मारी । दूधका दाँत चोट पडते ही टूट गया । पिता और ज्योतिषी 'हाँ ! हाँ !' करते ही रह गये । बालकका मुँह रक्तसे भर गया । पर उसका व्यग्य मुसकरा रहा था । पिता घबडाया हुआ था ज्योतिषी चकित, वालक विजयसे उल्लसित ।

उस जड टेढे दाँतका न होना उस अमनुजकर्मा चाणक्यकी महत्ताको कम न कर सका ।

२

"नही, इसे समेट दूँगा । इस लडकोको पढाने वाली वृत्तिसे देशका उपकार न होगा । तक्षशिलामे स्थानकी कमी नही, न आचार्योकी । शास्त्र-की खोज करनेवाले जिज्ञासु अपना इष्ट वहाँ साधेगे । मै तो शास्त्रकी खोजमे चला ।"

"पर भाई, बडी निष्ठा बडे अध्यवसायसे तुमने इन दूरसे आये विद्यार्थियोको एकत्र किया है । अपनी मेधाके लाभसे इन्हे वचित न करो । और देखो, चाणक्य, तक्षशिला जैसे महान् पीठोके मारे वैयक्तिक चरणोको विद्यार्थी दुर्लभ हो गये है । तुम अपने छात्रसकुल चरणको अकारण मत उठा दो ।"

"वरुण, मै नही समझता इससे देशका कल्याण होगा । और इन विद्यार्थियोकी भीखसे मेरी अकेली काया पली या न पली, कोई अन्तर नही पड़ता । इस युग भरकी मेरी निष्ठाने माना कुछ विद्यार्थी बटोर लिये है

जिन्हे अधिकसे अधिक गणराज्योमे पुस्तपालका स्थान मिल जायेगा। और इन्हे तो तुम भी सम्हाल सकते हो, वरुण, तुम्ही सम्हालो। तुम्हे इस कार्यमे रुचि भी है, इस शास्त्रमे आस्था भी। मै तो इस चर्वितचर्वणसे ऊब उठा। बृहस्पति, उशना और भरद्वाजकी पद्धतिके परे भी जीवन है, जीवन जिसके दाँव-पेच आचार्योके सिद्धान्तोके आधार है। नही, वरुण, अब तुम इस मोहको झेलो, मै तो इससे मुक्त हो चला। तुम चाहो तो इस शब्दजालको जीवित रखो।"

"और जाओगे कहाँ, चाणक्य ?"

"जहाँ पच्छिमकी सारी राहे जाती है, बावेरुकी, परसपुरकी, उद्यानकी, उस प्राचीकी ओर, मगधके हृदय पाटलिपुत्रकी ओर।"

"जानता हूँ, चाणक्य, तुम्हारा लक्ष्य। पर आज फिर पूछता हूँ जिसे बार-बार पूछा है—क्या सचमुच इन गणराज्योका एका कर कुछ वही नही किया जा सकता जिसका तुम स्वप्न देखा करते हो ?"

"सुनो, वरुण। कभी वह आशा मुझे भी थी। मै भी समझता था कि जो अपनी स्वतन्त्रता इतना महिमामय मानते है, जन-जनकी बराबरीका जिनमे इतना दावा है उन कठो-शिबिकोंको, मालव-क्षुद्रकोको, यौधेयो-अम्बष्ठोको एकत्र कर कुछ किया जा सकेगा। पर वह उनके रहते सम्भव नही दीखता। ये अकेले-अकेले वीर है, बलिदानी है, पर ये चौकते तभी है जब इनके कोई हाथ लगाता है, इससे परे ये कुछ नही। ये आक्रातासे लोहा ले सकते है पर अपनी सीमाओके बाहर इनका कोई अध्यवसाय नही। इनको लीप कर ही कुछ किया जा सकेगा। दाराका आक्रमण अभी दो सौ साल ही पुराना हुआ। सारा सप्तसिधु, समूचा पश्चिमी पचनद, सम्पूर्ण सिन्ध देखते ही देखते इन परस्पर लडते अन्तर्मुख गणराज्योकी अकर्मण्यतासे एक-एककर ईरानकी बढती सीमाओमे समा गये। दारा और क्षयार्षाने गणराज्योकी वही दशा की जो उन्होने यवनोके नगर-राज्योकी की थी। वह कहानी, मै चाहता हूँ, फिर दुहरायी न जाय।"

"और तुम्हारा यह इष्ट ईरानी साम्राज्य है

"नहीं, मेरा इष्ट यह ईरानी साम्राज्य नही है। यह दारा नामधारी समाट् अपने महान् पूर्वजका नामधारी मात्र है, और इसका यह जर्जर साम्राज्य तभी तक खडा है, जब तक कोई इसपर चोट नही करता। मेरा इष्ट इसके पूर्व दाराका साम्राज्य है और उसकी एकमात्र सम्भावना पूर्वमे है, मगधमे, पाटलिपुत्रमे। नन्द सारे क्षत्रियोका नाश कर चुका है, उसकी सेना अपार है, माम्राज्यकी पहली बार उमने स्थापना की है। कौन जाने, वही हमारे स्वप्नोका साधक बन जाय। फिर अगर वह आस उससे पूरी न हुई तो पहला मघर्ष उस शूद्रसे ही होगा। पहले वही क्रान्ति करनी होगी, और वरुण, क्रान्तिके लिए, शास्त्रीय-शस्त्रीय दोनो, पूर्वसे बढ कर जनपद नही है। विचारोमे पचालो–विदेहोने कैकेयोको कितना पीछे छोड दिया, बुद्ध जिनने समताकी आँधी बहा दी, शूद्रोने आर्ष व्यवस्थाको उलट दिया। ये तीनो मुझे अप्रिय है, पर ये सिद्ध करते है कि पूर्वमे ज्वाला है जिसका उपयोग किया जा सकेगा। इसीलिए जा रहा हूँ, वरुण, कौन जाने ?"

"जाओ चाणक्य, जाओ न रोकूँगा। भविष्य पढी पोथीकी भाँति तुम्हारे नेत्रपथमे खुल पडा है। जाओ, अपने स्वप्नको मत्य करो। मै तुम्हारे इम चरणको यथामभव नष्ट न होने दूँगा, यद्यपि जानता हूँ, इसका मोह भी तुम्हे नही है। यह निश्चय तुम्हारी आशाओको रूप नही दे सका है और जो तुम्हारी आशाओको रूप नही दे पाता उसका तुम्हारे यहाँ कुछ मूल्य नही। जाओ।"

"और एक बात कहता हूँ। तुमने ईरानी साम्राज्यकी बात उठायी है, सुनो, यवन नगर राज्योको मकदूनियाका फिलिप नष्ट कर चुका है, अभी हाल। वह उन्हे जीत चुप बैठनेवाला नही है। अगर हुआ तो या तो वह कायर होगा या मूर्ख। पर जितना मेरे जाननेमे आया है, वह न तो कायर है न मूर्ख है। और यूनानमे ईरानी दाराके किये विध्वंसकी आग अभी लोगोके दिलोमे सुलग रही है। जिस किसीकी भी उधर शक्ति बढी वह

एथेसके विध्वंसका बदला लेने ईरानकी ओर बढ़ेगा । वैसे भी उधर विजयी हो जानेके बाद महत्त्वाकाक्षाकी पहली चोट पूर्वमे ईरानी साम्राज्यपर ही होगी । और जो हुई तो निमिष मात्रमे यह साम्राज्य चूर-चूर हो जायगा । फिर भारतकी सीमाएँ दूर नही, और हिन्दुकुश लॉघना सेनाओके लिए कभी कठिन नही रहा । और जो कही पच्छिमकी आँधी हिन्दुकुश पार इधर बही तो जानो, इन गणराज्योका वही हाल होगा जो यवन नगर राज्योका हुआ । मगध मात्र आगे आशा है ।''

और चाणक्य सिन्धु तट छोड पूरबकी ओर चला गया ।

जब चाणक्यने सन्तोषसे आँखें बन्द कीं!

१

"भागो, मौर्य, भागो यहाँसे, मगधके क्रोधके तुम अब लक्ष्य हो गये । मैं तुम्हारी महत्त्वाकाक्षाएँ नही जानता, पर यह जानता हूँ कि परिस्थितियोने तुम्हे महत्ताके मार्गपर खडा कर दिया है। यदि तुममे वह चेतना न भी हो तो वह मार्ग पकडो और जानो कि उसके छोर तक पहुँचे विना तुम्हारा कल्याण नही।" चाणक्यने तरुण चन्द्रगुप्तसे स्नेहपूर्वक कहा । उसके साँवले शरीरपर पीत जनेऊ चमक रहा था । केश आधे पक चले थे । स्वभाव गम्भीर, मुखमण्डलकी चिन्ताद्योतक खडी रेखाएँ गहरी हो गयी थी । परुष चेहरा कुछ नरम पड गया था ।

"जाता हूँ आर्य । और यदि वही मार्ग मेरा है तो पीछे नही हटूँगा । आपका वरद हस्त मेरे माथेपर हुआ तो आगे बढता ही जाऊँगा । इस नन्दसे आज भाग रहा हूँ पर आशा है शीघ्र लौटूँगा । आपका आशीर्वाद मेरा कवच होगा । पर अभी इसी नगरीमे रहूँगा । संभव है सुयोग अभी आ जाय ।"

"नही, चन्द्र, मानो मेरी बात । भागो, और उत्तर भागो, पचनदकी ओर । समय अधिक न लगेगा, मैं भी पहुँचता ही हूँ । पाटलिपुत्रसे दूर चले जाओ । शत्रुका सामीप्य विपज्जनक है, तुम्हारे लिए । स्वय मेरे प्रयत्नोकी तुम अन्तिम आशा हो । मुझे निराधार न करो । मेरे प्रयासका अकुर बढ चला है । उसे फूलने दो । वरुणके यहाँ मेरी प्रतीक्षा करना, उस मेरे बाल सुहृद्के पास जहाँ कोई तुम्हे छू न सकेगा ।" चरणोमे झुके चन्द्रगुप्तके मस्तकपर हाथ फेरते हुए चाणक्य बोला ।

चन्द्रगुप्त चला गया। चाणक्य टहलता रहा। कुटी शान्त थी। उसकी भूमिसे तभी नंगे पैरोकी चाप उठती जब चाणक्यका चिन्तित अन्तर और आकुल हो उठता। वह सोच रहा था—नन्द शक्तिमान् है पर मध्य देशके क्षत्रियोके परे उसकी आकाक्षा नहीं। सतलज उसकी सीमा है, स्वप्नकी सीमा। प्रगट है कि उससे मेरी कामना सफल न होगी। चन्द्रगुप्त मात्र मेरा इष्ट सिद्ध कर सकेगा। पर इसके क्रोध और प्रतिशोध स्थायी नही। महत्त्वाकाक्षा है पर एकरस रहनेकी शक्ति इसमे शायद नही। तारुण्य पार करते ही प्रतिज्ञादुर्बल हो जायगा, पर कुछ चिन्ता नही, मगधको केन्द्र बनाकर साम्राज्यका आसमुद्र विस्तार किया जा सकेगा, जिससे हिन्दुकुशकी सीमा लाँघनेका किसीका साहस न हो।

२

पाटलिपुत्र पावसमे भी चमक रहा था। पर उसके बहिरगकी आबादी सुखी न थी। नगरकी सीमाके वनोपर अनेक पर्णकुटियाँ थी, गरीबोकी, जिनमे बरसातकी झडी सदा बनी रहती। सिरपर वृक्षोकी छाया मात्र थी, छत न थी। ऐसी ही कुटीमे वेश बदले चन्द्रगुप्त छिपा था। नन्दके चर उसे खोजकर थक चुके थे, उसे पा न सके थे। चन्द्रगुप्त गडरियेके वेशमे दिनभर बुढियाकी भेडे लिये इधर-उधर आह लेता फिरा करता, रातमे उसकी कुटीमे चुपचाप आकर पड रहता।

एक रात दिन भरका थका वह कुटीमे पडा अपने भविष्यके सपने गुन रहा था कि बुढियाकी पोती सहसा चीख उठी। बुढिया उसे खिला रही थी, एक प्रकारकी फुलकानुमा पूडी। त्यौहारका दिन था, चन्द्रगुप्त अपना भाग पा चुका था। जो बच्चीके रोनेका कारण जानने उठा तो बुढियाको उससे कहते सुना—"मूर्ख लडकी, शिकारपर हमला किनारेसे करना होता है, बीचसे नही, वरना अपने ही पकड जानेका खतरा रहता है। जो तूने पूडी किनारेसे तोडी होती तो बीचका परत टूटता और भाफ बीचसे निकल जाती, तुम्हारी उँगलियोको क्यों जलाती ?"

चन्द्रगुप्तने सुना। आचार्यकी बात याद आई। पाटलिपुत्र छोड वह पञ्चनद भागा।

× × ×

चाणक्यका नन्दने आज अपमान किया है। उसे पिताके श्राद्धमे खाते हुए ब्राह्मणोके बीचसे, उठा दिया है। उसी श्राद्धके बीच चाणक्यने प्रतिज्ञा की है कि उसकी जिस शिखाको खीचकर राजाने खोल दिया है उसे वह नन्दवशका समूल नाश करके ही बाँधेगा। और तभीसे उसकी आँखोसे अगार बरस रहे है। क्रोधकी धधकती ज्वाला आज उसके रोम-रोमसे लपक रही है, नथने फूले हुए है, होठ नि शब्द है, रह-रह कर फडक भर उठते है। दाहिना कर जब-तब अगूठे और तर्जनीके बीच जनेऊ ले उठ जाता है। कुटीमे आवाज है पर क्षुब्ध विकराल यम सदृश मानवके चरण-चापोकी। क्षुद्र दीपकी क्षुद्रतर लौ झिलमिला रही है, पर शायद आँखोके लाल अगारे उससे अधिक दीप्तिमान है।

सहसा उस धूमिल प्रकाशमे किसीकी छाया डोली।

"आओ, चले आओ। जानता हूँ कौन हो, आओ।" चाणक्यने विना देखे ही आहट मात्रमे कहा।

"मै हूँ, महात्मन्, सेवामे उपस्थित हूँ।"

"आओ, आओ, शकटार। जानता था, तुम आओगे। वह तुम्हारी अभिसन्धि थी। दुरभिसन्धि इसलिए नही कहता कि अभिसन्धि वह मेरी भी थी। मै मगध कार्यवश आया था, सिद्धिके लिए। उसमे नन्दका सहार अनिवार्य था। वह होकर ही रहता। पर उसमे अब त्वरा आ गई। और अब मै चला।"

"मेरे लिए क्या आज्ञा है, आचार्य? सेवक सभी प्रकारसे चरणरत है।" शकटारका मस्तक भूमि चूम रहा था।

"आचार्य शकटारोकी सहायताकी अपेक्षा नही करता, मन्त्री। जाओ, तुम्हारी आकाक्षा फले, प्रतिशोध पूरा हो।"

"मै अपने कृत्यसे लज्जित हूँ, आचार्य!"

"शकटार, मै तुम्हे दोषी नही मानता। शत्रुसे बदला लेनेके लिए जितने उपाय प्रयोग्य हो उतने निश्चय प्रयुक्त होने चाहिए। तुम्हारा प्रयत्न साधु था। मै तुम्हे अपने अपमानका दोषी नही ठहराता। बताया न कि होना वही था पर तुमने उसमे त्वरा ला दी, उसे गति दे दी। मुझे एकान्त चाहिए। जाओ।" और शकटार चला गया। आचार्य चुपचाप टहलता रहा।

३

"नही, चन्द्र, यह आँधी रुकनेकी नही। इसे रोकनेकी चेष्टा न करो, विपन्न हो जाओगे, और मेरी एकमात्र आशा नष्ट हो जायेगी। यह फिलिपका लाडला है, दिग्विजयी, ईरानी साम्राज्यकी जडे इसने उखाड फेकी है। नष्ट कर देने दो इसे ये गणराज्य। अपना कार्य हल्का हो जायेगा।" चाणक्यकी मुद्रा सतेज थी।

"पर यह क्या देशद्रोह नही है, आचार्य?"

"नही, यह अवसरपालन है। इसे शक्तिक्षीण हो जाने दो। इसके लौटते ही सारा पचनद, सीमान्त तक तुम्हारा होगा।"

"पर, आचार्य, पग-पगपर वीरोकी आहुति कैसे देख पाते है, आप? मुझसे तो नही देखा जाता।" चन्द्रगुप्त थका-सा बोला।

"उसे देख पाता इसलिए हूँ कि मेरी आशा फल रही है। वीर कौन है? आम्भी, जिसने देशका सिहद्वार शत्रुके लिए खोल दिया? पुरु, जिसने पहले पिप्रमके विरुद्ध शत्रुकी सहायता की, फिर कठोके विरुद्ध? हाँ, कठोकी बात और है पर उन्हे तो हमे भी नष्ट करना ही था, सो अपना काम हल्का हुआ और तुम जो वह देख पाते जो मै देख रहा हूँ, जो

चाहता हूँ, तुम देख पाते, तो मेरे विश्वासको शक्ति मिलती। नही, चन्द्र, अभी और देखो कि जीवनभर तुम्हे दूसरे देखे।" चाणक्यकी आँखें प्रसन्नतासे चमक रही थी।

चन्द्रगुप्त चुपचाप एक ओर चला गया।

× × ×

"कौन हो, तरुण?" सेना निरीक्षण करता सिकन्दर उधर मुड पडा जिधर चन्द्रगुप्त छद्मवेशमे घोडेपर सवार खडा था। सिकन्दरने उसकी ओर बढकर पूछा।

"स्वच्छन्द सामरिक, विजेता, आयुधजीवी।" तरुण बोला।

"सिकन्दर आयुधजीवियोकी अपेक्षा नही करता, मित्र।"

"सुना है, लौट रहे हो, विजेता।" चन्द्रगुप्तने पैरसे तलवार उछाली।

सिकन्दर व्यासके किनारे था जहाँ उसकी सेनाने हथियार डाल नन्दके डरसे आगे बढनेसे इनकार कर दिया था और जब लाचार होकर सिकन्दरने उसे लौटनेकी आज्ञा दे दी थी, ग्रीक पडावमे खेलकूद हो रही थी, खुशीकी हद न थी। चन्द्रगुप्तके उस दुखती रगको छूते ही सिकन्दर चमका।

बोला—"मतलब?"

"मतलब कि आगे मगध है और मगधका स्वामी नन्द कमजोर हाथो तलवार नही पकडता। पुरु और आम्भी उसके सामन्त होनेकी भी क्षमता नही रखते।" चन्द्रगुप्तने घोडेको एड लगा दी।

सिकन्दरका चेहरा तमतमा उठा। उसने आवाज लगाई—"पकडो उस बर्बरको!"

सेल्यूकस, पर्दिकस, मिलीगर, क्रातेरास सभी दौडे, पर एक भी उसे न पा सका। हाथ नही आया चन्द्रगुप्त। क्रातेरसका भाला टूट गया, पर्दिकस और मिलीगर धूल चाटने लगे, सेल्यूकसका टोप चन्द्रगुप्तके भालेकी नोकपर था। और जब उसने प्रात.कालकी हल्की धूपमे अपने भालेपर

चमकते उस टोपको आचार्यके चरणोमे रखा तो आचार्यने उसे छातीसे लगा लिया।

अभी चन्द्रगुप्त कुछ कहने ही वाला था कि आचार्य बोल उठा—"सुन चुका हूँ, तात। सब सुन चुका हूँ। मेरे पाँच चर तुम्हारी रक्षा कर रहे थे। तुम्हारी शक्ति वे जानते थे, इसीसे उन्होंने तुम्हारे शिकारमे हस्तक्षेप नही किया। चिर विजयी हो।"

चन्द्रगुप्त उस अमनुजकर्मा ब्राह्मणको मन्त्रमुग्ध देखता रहा।

४

तीस वर्ष बाद।

अब तक भारतकी राजनीति वदल चुकी थी। नन्दोका सहार हो चुका था। पचनदके गणराज्य जो सिकन्दरसे सर न हो सके थे, चन्द्रगुप्तके शस्त्र और चाणक्यकी मेधाके अन्तरालमे समा गये थे। ससागरा पृथ्वी जीती जा चुकी थी। हिन्दुकुश लाघनेका जो सीरियाके सम्राट् सिकन्दरके सेनापति सेल्यूकसने साहस किया तो चन्द्रगुप्तने उसे कुचल डाला।

चाणक्यके जीवनकी सन्ध्या थी। शय्यापर पडा हुआ था। मन्त्री-सामन्त हाथ बाँधे खडे थे। शय्या पकड़े सब कुछ हारा-सा बिन्दुसार बैठा था।

चाणक्य कह रहा था—"चौबीस वर्ष इस धराका उसने अविकल शासन किया। वीर था, मनस्वी था, पर क्षपणकोकी प्रवंचनाका शिकार हो गया था। अनधिगतके अधिगमनको रक्तपात कहने लगा था और एक दिन जब मैने उस मुण्डित मस्तक जैन भिखमगेको बन्दी कर लिया तब वह रोषमे आकर मुझसे बहस कर बैठा। मैने कहा, वृषल, यह ससागरा पृथ्वी चाणक्यकी जीती हुई है। उसके विजितमे कोई उसकी आज्ञाका उल्लघन नही कर सकता। जो करेगा वह इस साम्राज्यमे नही रह पायेगा। और एक दिन प्रासादसे वह गायब हो गया। चरोने बताया, वह नर्मदा

पार चला गया, महिपमण्डल (मैसूर) की ओर। बस इसीका क्षोभ है।"

"पर आचार्य, आपको आज दुःख किस बातका है ?" ससागरा पृथ्वी आपकी है। आपके शिष्यका तनय शिष्यवत् ही आदेशका परिपालक है।" बिन्दुसार नतमस्तक हो बोला।

"दु ख नही है, अमित्रघात, केवल उस प्रिय पात्रकी स्मृति जब तब मानसको विकल कर देती है, विशेषकर इससे कि प्रतापनष्ट हो वह क्षपणकोका श्वेत चीवर ले बैठा है। पर हाँ, सन्तोष है मुझे कि मेरी इस धराका स्वामी आज तू है जिसने अमित्रोका सहार कर अपना विरुद सार्थक किया है। यह पृथ्वी चिरकाल तक तुम्हारे प्रतापसे राजन्वती हो।" आचार्यने चुपचाप आँखे बन्द कर ली।

और, कुछ मिनटोके बाद वह शक्ति मगधसे उठ गई जिसके नामने मैसूरमे सीरिया तकके राजाओमे आतक भर दिया था।

तिष्यरक्षिता

कलिगका सागरवर्ती देश। फैली बालुकामयी तटवर्ती भूमि। हरित-श्याम ताल-नारिकेल-पुन्नागोका रम्य कान्तार। सामने अनन्त-अनन्त सीपी और शख उगलता उद्दाम रत्नाकर। तटपर टूटती नीलाभ वक्र वेलाओकी बिखरती धवल झाग। कलिंगपत्तनकी सागरवर्ती सागरपारको छूती व्यापक कीर्ति जिसके बन्दरमे मिस्र और तीर, सोदोम और रोमके वणिक्पोत प्रवेश करते और अपना बहुमूल्य पण्य उतार सुवर्णसे अपने तले भर लगर उठाते। और वह स्वप्निल कन्या जो कभी नारिकेलोकी श्यामायित रेखामे बिखरती लहरो द्वारा फेंकी अनन्त रगोवाली सीपियाँ बटोरती, अब उन पोतोको अपलक निहारने लगी थी, जो नीलाम्बरके नीचे उछलती नील-सागरकी लहरियोके शिखरपर नाचते पत्तनकी परिधिमे आ जाते।

राजकन्या थी वह, प्रभात वायु-सी मृदु, खुलते कमलकी पखुडियो-सी टटकी, प्रतिबन्धसे हीन, वेगपूर्वक पवनसे हिलाये आमकी गिरती मजरियो-सी अल्हड—चन्द्रमाकी एकस्थ चौदहो कलाके सघातसे उद्भूत जैसे एक किरण, जैसे उस समूची किरणकी एक बूँद।

एक दिन कलिगपर विपद् व्यापी। मगधका शकु अपनी पैनी नोक किये उसके मर्मको वेध चला। तरुण अशोकने उत्तर भारतके उस अकेले कलिग-के प्रति अभियान किया था जो आज भी अविजित था। नन्दोने कभी उसे जीता था, कालिग विद्रोही हो उठे थे, स्वतत्र। मौर्य चन्द्रगुप्तने उन्हे फिर जीता था और फिर वे स्वतत्र हो गये थे। अशोक अपने परशु-कुठार लिये उनपर जब अन्तक यमकी चोट करने कलिग पहुँचा तब कालिगोंने लाखो सैनिक युद्ध-भूमिपर उतार दिये। सग्राम देवासुरका-सा हुआ पर विजय अशोककी हुई। लाखो मारे गये, लाखो आहत हुए, लाखो समर सभूत

रोगोके आहार हुए। कलिंग विपन्न हो गया। प्रतिक्रियाने अशोकके मर्म-को छुआ, उसने उपगुप्त तिष्यसे दीक्षा ली, बुद्धकी शरणकी शपथ ली।

तब तिष्यरक्षिता अबोध थी, निनान्त अबोध, सागरकी टूटती वेलाओ-से शख-सीपी लूटनेवाली बाला। एक युग तबसे बीत चुकी था, और भी अधिक, प्राय दो दशक बीत चुके थे जब राजकन्या पोतस्वामियोसे अपने अटूट प्रश्न करती और उनके उत्तरकी परिधिसे परे भटक जाती। वस्तुत. राजकन्या अब वह न थी, पिताने युद्धमे पराजित हो कबका काषाय ले लिया था और अब जब उपायनके रूपमे वह पाटलिपुत्रके राजप्रासादमे पहुँचा दी गई तब उसकी सज्ञा तिष्यरक्षिता हुई।

पर तिष्यरक्षिता वह हो न सकी। काषायधारी लोकविरत अशोक-गुरु भिक्षु तिष्यने उस तरुणीके मनोवेगोको रोकनेकी, अपने आकर्षण-केन्द्रोसे फेरनेकी बहुत जुगत की, पर न चली जुगत उस महाभिक्षुकी, और उच्छृङ्खल शक्तिम तुरग जैसे कुशल सारथीकी रज्जुओको तोड अप्रतिहत दौड जाते है, तरुणीके मनोरथ भी वैसे ही अपने प्रतिबन्धोको तोड अनिर्दिष्ट इष्टकी ओर सवेग दौड पडते। तिष्यकी आशा थककर प्रयत्नविरत हो जाती और अशोक अनमना हो उठता। पर नाम तो तरुणीका पड ही गया, पाटलिपुत्रके महलोका दिया, तिष्यरक्षिता।

तिष्यरक्षिता विरत थी, मगधसे, मगधके वैभवसे, अशोकके भावविलास-से। तरुणीके रोम-रोममे मदनका अल्हड उल्लास था जिसे अधेड अशोककी वासना एकाकीकी गहरी निपट एकाकी छायामे उभारती और जिसका परिणाम अत्यन्त कठिन हो उठता, दोनोके लिए, मासल तरुणीके लिए भी, दुर्बल, काम-लोलुप अशोकके लिए भी। नये आमकी मधुमासकी नई मजरियोको जैसे माघातिक पवन झकझोर देता, मजरियाँ धरापर चू पडती। हजार कण्ठसे जैसे नारीकी तपी देह अपने भाग्यको कोसती, अपने यौवनको और अपनी कायाकी उन सन्धियोको जिनमे सौन्दर्यके झूले डाल

मन्मथ झूलता है। राजाको वह कुछ न कहती क्योंकि राजा राजा था, पति था, उसके पातिव्रतका प्रहरी था, चोट खाया हुआ नाग था।

पर केवल कहती न थी वह, गुनती पर्याप्त थी और ध्वनिके अभावमे उसका मानस भावोके अन्तर्द्वन्द्व, उनकी आक्रमण भूमि बन जाता। सकल्प-विकल्पकी आलोडित-प्रत्यालोडित लहरियाँ अपने अनन्त विस्तारसे तरुणीकी फुट भर चौडी छाती घेर लेती। दूर देखती आँखे सहसा मुंद जाती और गगा-सोनकी सम्मिलित जलरेखा भी अपने अभिराम कलकलसे उन्हे फिर खोल न पाती। तरुणी निस्पन्द दैवकी मारी-सी ऊपरसे शान्त, भीतरमे नक्रविकल झीलके जल सी चुप बैठी रहती।

× × ×

एक दिन कुछ हो गया। मन सहसा डोला और कही जा लगा, मन जिसको तिष्यके उपदेश विरत न कर सके थे, जिसको अशोकके शिथिल भावतन्तु अपनी ओर खीच न सके थे। राजकुलका परिचय तिष्यरक्षिता-को प्राप्त था। पाटलिपुत्रके रनिवासमे जो स्वय उसका प्रभुत्व फैला था तो उसे दूसरोका परिचय पानेकी कभी न तो लालसा हुई थी न आवश्य-कता। उसके प्रमादके लोभके लिए रानियाँ और साम्राज्यके कर्णधार कर-बद्ध खडे रहते और जब-तब वह अपने कृपाकटाक्षसे उन्हे उपकृत कर देती। पर बाहरका वह जनसकुल परिवार उसके भीतरसे कितना भिन्न था! कितना रिक्त था उसका अन्तर, कितना सीमाहीन परिधिहीन और किस क्रूर मात्रामे अपने व्यासकी रेखा लिये कन्दर्प उस परिधिपर नित्य दौड जाता! धैर्यके परिकर टूट जाते, रागका स्रोत सूख जाता, पार्श्वधर अशोकका अनुनय नारीको क्षुब्ध कर देता। पर नारीका नर कहाँ था?

आया एक दिन नारीका वह नर जब प्रत्यन्तोसे मगधवाहिनी लौटी और जब पिताके साधुवादके बाद उसने माताके चरण छूए। माता न थी वह। मात्र तिष्यरक्षिता, पर ऐसी जिसपर डाले तिष्यके घेरेके सूत कबके

टूक-टूक हो चुके थे। क्षणभरको आँखे चार हुई। चपला जैसे एक बार हियेमे कौधी और रोम-रोमको उजागर कर गई। मनकी शक्तिने मनोरथो-की आँधी रोकी वरना जैसे लगा कि अबतकके सारे मूक उल्लास, सारी विजनकी सोची साधे, सारी अपूजी आसे उसी मात्र क्षणके लिए रुकी थी, उनका सहसा बाँध तोड उमड़कर बह चलना उसी क्षणके लिए रुका था।

धर्मशास्त्रोके व्याख्यान एक बार मनके ऊहापोहमे घूम गये, आचार्योके उपदेश अन्तरमे चमके और विलीन हो गये और तिष्यके सयमने भीतर झाँका और लजाकर लौट पडा। राजाका पौरुष क्षुब्ध किंचित् न हुआ, घुटने उसने निश्चय टेक दिये।

दो नयन। बडरे, जो नयनोमे समा न पाते थे, पर उनके प्रभावका आयतन बडा था। तिष्यरक्षिताने उनके व्यापक अभियानसे पहले दिनो-सप्ताहो-मासो अपनी भूमि मर्दित न होने दी, बचा रखी। पर मानसकी कुटिल सज्ञाने उसे धोका दिया। स्मृतिका अवलम्ब सुखद और दुखद दोनो होता है, जैसे साक्षात्से परोक्षकी चोट गहरी होती है, अनवरत। पलकबोझिल निद्रागत मानस स्मृतिके कुठारसे पलपल चुटीला होता रहता है और पलपल जागरणकी अवधितक, उसे सजोता है जिसका सजोना पाप है।

नयन वे न मुंदे। नयनोकी राह मानस-पटलपर उतर आये। खण्ड-रिचके-से वे नयन जिनकी चञ्चलता उस पक्षीके लिए भी उपदेश होती, तिष्यरक्षिताके अनन्त रिक्त अन्तरप्रसारमे फैलकर भर गये थे। कुणालके वे नयन जिनको अशोकके तनयकी वह तापसी काया धारण करती थी विलाससे जिसका मोह न था। पर उससे क्या ?

किसने जानकर दिया ? और किसने जानकर लिया ? पर जिसने पाया उसने उसका धन भी जाना, उसकी पीडा भी जानी। तिष्यरक्षिताका नैतिक सबल बडा था। मगधके वैभवकी वह धनी थी, साम्राज्यकी प्राचीरे उसकी मुट्ठीकी रेखाओमे सोती थी। सद्धर्मके काषायधारी स्थविर

उसके अनुचर थे। विलासकी वेलाओको उसने कबका दबा दिया था। उसने मनको क्षुब्ध न होने दिया, मनका मोल भी उसने न माँगा और जब स्वर्णकी शय्यापर वह स्वामीके अकगत होती तब उसे ग्यारहो प्राण समेट कर शरीरकी सारी सौन्दर्य-सन्धियाँ खोल उसे भेट देती। पर मन जैसे पुकारकर कह उठता कि सयमसे निरुद्ध जितना भी प्राणमय अभिराम मोहक कलेवर है उसे ले लो, राजन्, पर नही कर पाती मनके ऊपर अधिकार, नही दे पाती तुम्हे मनका सहकार। तन ठीकरे-सा है, उससे मन तबसे विरत हो गया जबसे उन नयनोने उसका मोल न आँका। अब स्वय उस मनका कोई मोल नही, फिर इस तनसे क्या ? सो ले लो तुम यह तन।

और एक दिन जब प्रासादके प्रमदवनमे आपानककी परिधिमे लोचन वारुणीके मदसे अर्धोन्मीलित हो प्रजाग्रत सज्ञास कुछ कह बैठी, तब दोनोपर दोनोका भेद खुल गया—तिष्यरक्षिताके प्रणयका कुणालपर, कुणालकी लाचारीका तिष्यरक्षितापर।

अग्राह्यका कुणाल तिरस्कार न कर सका यद्यपि मोहको उसने वेदनाके कृपाणसे काट डाला। चला गया वह फिर अन्तोकी ओर, गान्धार-तक्षशिलाकी ओर, गगा और शोणके कोणसे दूर।

और तब एक दिन जब निदाघसे डही धराको पावसकी पहली बयारने शीतल परसा, रिमझिमकी गुद्गुदी धराकी सुरभि दिशाओंकी ओर ले उडी, तब मर्माहत तिष्यरक्षिताने सवाद भेजा, "निसर्ग नाच रहा है, प्रकृतिकी स्त्री पुरुषके स्पर्शसे ऋतुमती हुई है, उसे कुछ भी अदेय नही। नयनोकी राग-रेखा मानसकी मद-रेखा बन गई है। उनके दर्शनकी स्मृति तडित्की चोट करती है। उन नयनोको क्या फिर देख न पाऊँगी, नयनोमे भर न पाऊँगी, पलकोसे परस न पाऊँगी ?"

वाहक सीमान्तसे लौटा, अमूल्य उत्तर लिये। तिष्यरक्षिता देवलके द्वारसे अभी निकली ही थी, घुटने टेक उसने अजलि बना उपायन माँगा।

वाहकने एक कमल उस अजलिमे रख दिया। धीरे-धीरे अपने नयनोके नीचे देवीने उस कमलको खोला। कमल खुलता गया जैसे सम्पुट पद्म पर जब वह खुला तब तिष्यरक्षिताकी सज्ञा क्षणभर उसे देख विलुप्त हो चली, धीरे-धीरे, परन्तु क्षणकी परिधिमे ही, क्योकि क्षण चिरकालिक हो चुका था। तिष्यरक्षिताने देखा, कमलदलमे बन्द दो विशाल नयन थे—कुणालके नयन !

अश्वमेध

युगोका प्रताप तप रहा था। पुरोहित पुष्यमित्रने मौर्योके अन्तिम सम्राट् बृहद्रथको समूची सेनाके सामने खुले आम मारकर मगधका साम्राज्य छीन लिया था। शास्त्रचेता ब्राह्मणने शस्त्र धारण किया और उसका ऋत्विज् दर्शनकार पतञ्जलि बना।

सदियोसे जो ब्राह्मण-क्षत्रिय सघर्ष चला आता था उसीकी यह परिणति थी कि भारतका सुविस्तृत भूखण्ड तीन भागोमे बँट गया था और तीनो ब्राह्मण शासनमे थे—मगधका उत्तरवर्ती साम्राज्यका विधाता सेनापति पुष्यमित्र शुग था, पूर्ववर्ती कलिगका सम्राट् ब्राह्मणवशी जैन सम्राट् खारबेल था, और समुद्रान्त दक्षिणा पथकी प्रशस्त पृथ्वीके भोक्ता परशुरामकर्मा आन्ध्र-सातवाहन थे।

मगधकी सीमाएँ यद्यपि पिछले मौर्योने अपनी कायरतासे सकुचित कर ली थी, पुष्यमित्रने जिस साम्राज्यको सम्हाला उसका विस्तार मालवामे सिन्धु नद तक था, बगालसे पच्छिमी पजाब तक। उसने बाख्त्रीके महान् भारत-विजेता ग्रीक देमित्रियस्को एक ओरसे पाटलिपुत्रमे प्रवेश करते दूसरी ओरसे राजगिरिकी पहाडियोमे मगधराजको भाग जाते देखा था और उस १५ वर्षके किशोरकी नसे रक्तसे तन गई थी, मन कुण्ठासे भर गया था। उसने प्रण किया था कि वह ग्रीकोको देशसे बाहर कर देगा, मौर्योमे शासन-रज्जु छीनकर देशकी ग्रीकोके अत्याचार और मौर्योकी कायरतासे रक्षा करेगा।

रक्षा की उसने देशकी, दोनोसे। और उसने सम्राट्का विरुद भी स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। उसे उसकी जगह 'सेनापति' सज्ञा अधिक रुची। उचित भी था, जीवन पर्यन्त सेनाका स्वामी होनेका ही उसे

गर्व था और जनताने भी उसे म्लेच्छोके विरुद्ध देवसेनाका सचालन करने वाला सेनानी ही माना ।

पुष्यमित्रने दो-दो अश्वमेध किये । पहिला अश्वमेध शक्तिकी परीक्षाके लिए था । ग्रीक मध्यदेशको रौंद रहे थे, बौद्ध विहारोमे उसके विरुद्ध षड्यन्त्र हो रहे थे । बौद्धोने विदेशी ग्रीकों तकको स्वदेशके विरुद्ध चढा लानेमे लाज न मानी । उनके प्रोत्साहनसे समानधर्मा शाकल (स्यालकोट) का ग्रीक राजा मिनान्दर मगधपर चढ आया । शुगराजने गगा-जमुनाके द्वावमे उसे परास्त कर मार डाला और अपने विरोधी षड्यन्त्रकारी बौद्ध विहारोको पाटलिपुत्रसे जालन्धर तक जला डाला । शाकल पहुँच उसने ऐलान किया—"जो मुझे एक श्रमणसिर देगा उसे मै १०० दीनार दूँगा ।" सस्कृत भाषा लौटी, यज्ञ-कर्मकाण्ड लौटे, ब्राह्मणोकी सत्ता लौटी ।

परन्तु बाख्त्री अब भी भारतकी सीमापर ललचाई आँखो देख रहा था । जब तब ग्रीक-वाहिनी भारतीय दुर्ग-शृखलाको भेद देशके अन्तरगपर चोट करती और मगध सहसा जग पडता । कुछ ही काल पहिले ग्रीकोने जब मगधपर प्रहार किया था तब साम्राज्यकी सारी चूले हिल गई थी, दुष्ट विक्रान्त यवनोकी चोटसे प्रान्त बिखर गये थे ।

उससे जब-तब ग्रीकोंके नामसे जनता आतकित हो उठती । पुष्यमित्रने तब उनको देशमे सर्वथा निकाल बाहर करनेका निश्चय किया । दूसरे अश्वमेधके लिए तब उसके गुरु महर्षि पतञ्जलिने यज्ञ-रचना की ।

साम्राज्यका सबसे ताकतवर घोडा चुन लिया गया । जब वह कानोको ऊँचाकर पिछले खुरोसे भूमि खोदने लगता, लगता कि जैसे उच्चैश्रवा पृथ्वीपर उतर आया है । पर समस्या यह थी कि उस निरर्गल तुरगकी रक्षा कौन करे ? उसकी रक्षक सेनाका सचालन कौन करे और यह सैन्य-सचालन उन दुर्मद यवनोके विरुद्ध था युद्धमे जिनका साका चलता था । मगधमे वीरोकी कमी न थी । साम्राज्यमे अराजक राष्ट्रोमे एक-से-एक बढकर बाँके सैनिक थे, एक-से-एक रण-बाँकुरे,

पर पुष्यमित्रको उनसे आश्वासन न हुआ। एकके बाद एक युवक सेनापतिके सामने सिर झुकाये अश्वरक्षाका प्रण करते पर यज्ञ-दीक्षित सेनापति हतप्रभ हो उठता। रात-दिन उसे चिन्ता लगी रहती कि रक्षकके अभावमे अश्वमेधका उसका प्रण कही हास्यास्पद न हो उठे। अश्वका छोडना कुछ आसान न था। बगैर लगामके उसे सालभर आजाद घूमना था, शत्रुकी भूमिपर, और रक्षकको अपनी सेना लिये उसकी रक्षाके लिए पीछे-पीछे फिरना था। राह रोकने वालोकी, शुंगोके प्रचण्ड प्रतापके बावजूद, कमी न थी। ग्रीकोके दल-के-दल जगलो-पहाडोमे छिपे फिर रहे थे। उनके राष्ट्रका विनाश हो चुका था पर भूमिका लालच अभी उनमे मरा न था।

मनुष्य सरबस खो देता है पर आशा नही मरती। उसी आशापर ग्रीक भरोसा किये बैठे थे, जंगल-जगलकी खाक छान रहे थे। साहस उनमे स्वाभाविक था और अब उन्होने साहसिकतापर कमर कसी थी। साम्राज्यकी दुर्बल सीमापर वे भरपूर चोट करते और जनताको छिन्न-भिन्न कर देते। और अब जो उन्होने शत्रुके अश्वमेधकी बात सुनी तो शाकल और सिन्धुनदके बीच उनके पैतरे बढ गये। अन्तिम बार सब कुछ दॉवपर लगा देनेके लिए वे एकत्र होने लगे।

एक दिन महर्षि पतञ्जलिने चिन्तनशील सेनापति पुष्यमित्रके पास पहुँच कर कहा—सेनापति, अश्वका रक्षक लाया हूँ, उसे सैन्य-ध्वज सौपो।

चकित पुष्यमित्रके नेत्र प्रसन्नतासे चमक उठे। उसने जो महर्षिके पीछे अर्धावृत द्वारपर दृष्टि डाली तो अपने पौत्र वसुमित्रको प्रवेश करते देखा। उसकी भृकुटियोमे तनिक बल पड़ गया और द्वारकी ओरसे उसकी ऑखें अर्थकी आशासे पतञ्जलिकी ओर लौट पडी।

"सेनापति, पौरुषके अनुबन्ध, अप्रतिम शस्त्रधर वसुकी तुम्हे कैसे याद न आई? उत्तरापथमे इसकी जोडका लडाका और कौन है, पुष्य?"

"वसु बालक है, गुरुदेव। उसके बलका अटकल मुझे है। उसके रणसे

अविजित लौटनेका प्रण मागध तरुणोकी शपथ है, यह भी जानता हूँ, देवता। फिर भी कहता हूँ, वसु बालक है। बालक आगकी लपटोमे कूद सकता है, शायद बनैले बिगड़े हाथीको बाँध सकता है, अभिमन्युका आचरण कर सकता है, पर अभिमन्युका आचरण अश्वकी रक्षा नही करेगा, महर्षि। वही उसकी रक्षा कर सकता है जो अपने प्राणोंकी रक्षा कर अश्व-को सकुशल लौटा लाये, और उसके सकुशल लौटनेकी राहमे दुष्ट विक्रान्त यवन भल्ल लिये खड़े है।"

"खड़े रहने दो, सेनानी। वसु पुष्यका प्रतिनिधि है। पुष्यका पौरुष वसुमे फिरसे ऊर्ध्व-रक्त हुआ है। शत्रु नही जिसे वसु परास्त न कर सके। शंका न करो। वसुमे पौरुष और मति दोनो है, पौरुष और मति जिनसे मौर्योका राजदण्ड कभी तुमने बृहद्रथके हाथसे छीना था।"

"पर, गुरुदेव, धारिणी ?"

"धारिणीकी चिन्ता न करो पुष्य, वह वीर-प्रसवा है। जानती है कि वसुन्धरा वीर-भोग्या है, और कि उसका वसु धराको धारण करेगा।"

फिर वसुमित्रकी ओर देख महर्षि बोले, "वसु, पितामहका आशीर्वाद ले।"

घुटने टेके पोतेके सिरपर हाथ फेरते हुए पुष्यमित्रने कहा, "उठो, वत्स, पिताके प्रमादका प्रायश्चित्त करो। जानता हूँ अग्निका क्रोध और धारिणीकी चिन्ता दोनोका मै शिकार हूँगा पर राष्ट्रकी आवश्यकता और गुरुकी आज्ञाके हित तुम्हे अश्व सौंप चिन्तासे विरत हो जाऊँगा, भारका दण्ड धारण करो।"

पितामहने पोतेको डबडबाई आखो भेंटा। पोता पितामह और महर्षि-के चरण छू कमरेसे बाहर निकल गया।

६ महीने बाद।

क्षितिजसे उठते अरुणकी तरह वसुका तेज दिगन्तमे अब तक फैल चुका था। बालक समझ ग्रीकोने जो स्थान-स्थानपर उसकी गति रोकनेकी

चेष्टा की तो उन्हे बार-बार मुँहकी खानी पडी। मथुरा और शाकल लाँघता, घोर जगलोकी राह जब वसुमित्र पचनद लाँघ सिधुके तट पहुँचा तब वही ग्रीकोकी सेनाने जमकर उसका सामना किया। सिध और पजाब, गाधार और उद्यानके ग्रीक, घुमक्कड शस्त्रधर, आयुधसेवी सैनिक दूर-दूरसे आकर उनके झण्डेके नीचे खडे हो गये। चोट खाये साँपका क्रोध था उनका। फन फैलाये आसमानमे उन्होने माथा टेका। जूझने या जीतनेके लिए वे रणक्षेत्रमे उतरे। भयानक युद्ध हुआ, पर साँझ लगते-लगते मगध-का तुमुल जयनाद भागते ग्रीकोके कानोमे गूँज उठा। सिधुतटसे जो उनके पैर उखडे तो निरन्तर उखडते ही गये—सिधसे, गाधारसे, उद्यानसे। हिन्दुकुश लाँघ फिर वे बाख्त्रीमे ही जाकर रुके। विजयी वसुमित्र लौटा। दीक्षित पुष्यमित्रका अश्वमेध सपन्न हुआ।

थीबियाका दौत्य

बाईस सौ साल पुरानी बात है। भारतकी सीमापर ग्रीकोंका प्रखर ताप तप रहा था। बाख्त्रीकी उपत्यकामे वक्षु नदीके तटपर केसरकी क्यारियोमे अतिकाय ग्रीक अभिराम नवयौवनाओंको छेडते और केसरके कुसुमोकी धूल उनके कुन्तलोमे भर जाती। बरसी पराग माथेसे उठाये जब वे अपने घरोको जाती तब उनके स्वामी तेजहीन हो मलिन मुद्रासे उन्हे देखते और यह जानकर कि यौवनका नवरस केसरकी क्यारियोमे उनकी ललनाओंके सानिध्यसे बहता है, पुरानी परम्पराका अनिवार्य अंग है, चुप रह जाते थे।

थीबियाका यौवन भी उन्ही क्यारियोमे बरसती परागकी छायामे उठा और दिमितके परसते हाथोसे निखर चला, पर एक दिन जब दिमित भारतकी सीमा पार कर चला, तब, हिमके भारसे जैसे कमल कुम्हला जाता है, थीबियाका यौवन भी मलिन हो चला। उसके विलासको दिमित वैसे ही भूल गया जैसे हिन्दूकुशकी ऊँचाइयाँ हिमपातके समय वसंत-के सौरभको भूल जाती है।

दिमित हिन्दूकुश पार कर चुका था। पत्तन और माध्यमिका होता वह पाटलिपुत्र पहुँचा। पाटलिपुत्र मगधकी राजधानी था। मौर्यवंशके अप्रतिम राजा मगधका शासन कर चुके थे। मौर्योकी शक्तिका अपराह्ण हो चुका था और बस अब सन्ध्या शेष थी और दिमितके आक्रमणने रात ला दी, अमाकी गहरी काली रात। लोहेसे आग बरसने लगी। पाटलिपुत्रके प्रासाद धूलमे मिल गये। नगर ध्वस्त हो गया। नर-नारी जो बचे, नगरसे बाहर निकल गये। नगरपर राहुका पंजा पडा।

× × ×

नीरव रजनी चन्द्रके आलोकसे कुछ चमक चली थी। नगर स्तब्ध था। ग्रीक गॉवमे जाते, बाजके-से पजे मारते और गृहस्थोकी नारियॉ हर लाते। एक रात जब पाटलिपुत्रके राजभवनमे हल्की रागिनी अपने स्वरसे धीरे-धीरे पहरुओके मनको डॉवाडोल कर रही थी, दिमित अपनी कमजोर भावशृखलाको तोड उठ खडा हुआ और चला उस दिशाकी ओर जिधरसे उस मदिर रागिनीका स्वर धीरे-धीरे उसकी ओर बहा आता था। दूर जाना न पडा। भवनके पश्चिम द्वारके कलश-कँगूरोके पीछे अमिताभ प्रस्रविणीके तटपर उसने एक छाया देखी, निष्प्रभ सुकुमार छाया जिससे स्वरकी मदिर वेला वैसे ही हवामे हल्की उठ रही थी जैसे प्रस्रविणीके जलकी उन्मद वीचियॉ। दिमितका मन हल्के लहराया। दूरकी सुधि आई, वक्षुके तटकी, केसरकी क्यारियोकी, थीबियाके मदिराभ नयनोकी और उस भूले विलासकी, जिसने कभी बाख्त्रीके नर-नारियोको मोह लिया था। थीबियाके स्वरमे भी तब वह शक्ति थी। पर वह कभीकी बात थी और कभीकी बात तो सदा रहती नही। थीबिया भी दीमितके स्मृति-पटलसे जैसे मिट चली थी, पर याद आई उसकी। मधुर वाद्यके लहराते स्वर जब अन्तरमे पैठते है और कभीके आग्रहपर अबके सोये उल्लासको सहसा चौकाकर उगा देते है तब सुननेवालेको कुछ हो जाया करता है। हो गया दिमितको भी कुछ। दिनको सूरजकी किरणोमे दमकती तलवारे, मेघ-से गरजते रणमे वीरोको हुकार, ग्रीक शक्ति और पौरुषके गर्व और गौरव सब खो गये। निरुपम आर्द्र मानव जैसे नग्न खडा हुआ, उस मदालस रागिनीके स्पर्शसे मदहोश।

दिमितने बरबस यादकी भूली हुई वह स्वर-लहरी जो अक्सर थीबियाकी ग्रीक वीणासे निकल-निकल वक्षुके आकाशमे पसरा करती थी। पर गायिका थीबिया न थी। उसके कुञ्चित लहराते कुन्तल हवासे उलझ रहे थे, जल वीचियोकी अग्रभूमिमे, और गायिका घुटने टेके वीणा गोदमे धरे, तारोको हल्के-हल्के छेड रही थी। उसकी कोमल रागिनीसे कही

अधिक सुकोमल उसकी भावमुद्रा थी, आर्द्र कोमलतर। और अधखुली आँखोकी श्वेत आभाके नीचे, रतनारे निचले डोरोके ऊपर बीचकी श्यामता-पलकोके बोझिल भारसे कही रम गई थी। श्याम पुतलियाँ निश्चय उन्ही नयनोकी थी, पर नि सन्देह उनका दृष्टि-पथ ही दूर चला गया था, सामने खडे दिमितसे दूर, दूर परे।

दिमितने अनजाने दोनो हाथ बढा दिये। बोला—"इतना दर्द कहाँ पाया, देवि ?"

स्वर बहता रहा। वीणा न रुकी। वेदनाका निर्झर अब भी प्रवह-मान था।

"सुना नही, देवि ?"

लहरियाँ न रुकी, वेदनाकी धार बहती गई। वेदनाकी धार, थी वह जो उल्लासके स्वरसे कही अधिक तीव्र होती है। लयका विन्यास चाहे जितना भी कोमल क्यो न हो, पर घाव उसका उन तारोसे कही नुकीला होता है, जिनसे वे सहसा निकल पडती है। दिमितका आहत मन उस नीरव रागिनीसे और भी द्रवित हो गया।

"भारतका विजेता दिमित सामने खडा है, देवि, अनुनय-विनय लिये, अभियानका तिरस्कार करता। बोझिल मनको शान्त करो, बोलो—कौन हो तुम ?" रागिनी सहसा बन्द हो गई। दहकती चाँदनीमे चाँद-सा ही कान्तिमान मुख ऊपर उठा, आडे चिबुककी लुनाई जैसे दिमितको मथ चली। अरुणाभ अधर हिले, उनके परस्पर भिन्न होनेसे दाँतोकी विद्युत् रेखा तनिक चमकी, फिर होठोके सम्पुट हो जानेसे वह आभा विलीन हो गई। सन्नाटा फिर छा गया। पर चिबुक वैसे ही अधरमे उठा था, जैसे किसीकी हथेलीकी उँगलियोकी कामना करता। और दिमित वैसे ही दोनो हाथ बढाये फिर बोला—

"तीन राते चाँदनीका परिकर बाँधे प्रकोष्ठपर उतरी है, देवि, तीन राते जैसे बिताई है वैसे गगा और वक्षुके बीच रहनेवाले किसी प्राणीने न

बिताई होगी और यह तुम्हारा स्वरपुञ्ज जिम प्रकार अन्तरको मथता रहा है उसकी कथा मेरे कहनेकी नही, सुननेकी है। फिर बता दो न आज—कौन हो तुम, स्वरसाधिके, कौन हो भला तुम ?"

"कौन हूँ मै ?—" चिबुक तनिक हिला, अरुणाभ अधर कपोलोकी रक्तिम आभासे अरुणतर हो खुले और जैसे पुष्करिणीकी दो वीचियाँ एक दूसरेसे टकराती-लहराती-विलग हुई। बोली—"कौन हूँ मै ?—अपने ही अन्तरसे पूछो न, गहरे देखो। जब गगाकी गहराइयाँ वक्षुकी छिछली धारासे जीत गई तब भला थीबियाकी याद, तुम्हे कैसे आये ?"

प्रतिहत दिमित अनायास बोला—"थीबिया!" "हाँ थीबिया।" पुष्करिणीकी हल्की लहरोने कुछ सुना जो दिमितने न सुन पडनेवाले शब्दो-मे कहा। नारी कुछ बकिम हुई और दिमितकी ओर अपनी शिलासे देखती बोली—"तुम्हारे अनुरागकी शपथ दिमित, हिमालय और हिन्दुकुशके परे चन्द्रभागा और सिन्धुके पार पामीरोकी छायामे ग्रीकोका जीवित अनुराग वह थीबिया आज भी डोलती है, बाख्त्रीके पौरुषकी एक मात्र कामना—थीबिया। पर अनुरागकी वह प्रतिमा मात्र रह गई है, चित्रित आकृतिकी रेखा मात्र। रग और रस आकृति और प्राणोकी कायासे उठ गये है पर काया अभी बची है, डोलती है वह काया, यद्यपि निष्प्राण आशाकी एक लीक सँभाले, हिन्दुकुशके पार जाने वाली राहपर पलके बिछाये। हिन्दुकुश-की राह दिमित सर्दियोमे बर्फानी तूफानके हिमसे ढँक जाती है पर पलके गडी ही रहती है, और वह हिमके नीचेकी राहकी लीक जानती है कि एक दिन उसी राह कोई गया था जिसके चरण वक्षुकी रेतमे उतने ही गहरे गडते थे जितने गहरे उनकी स्मृतिके चिह्न थीबियाके भाव-पटलमे गडे है। दिमित, पामीरोमे अब वसन्त नही आता। पराग फूलोकी पखडियोसे लाल-पीले होकर अब उपत्यकाके आँचलमे नही झरता, न वहाँकी क्यारियो-मे अब केसर ही फूलती है। ऋतुराज पामीरो पार हिन्दुकुश लाँघ आया है, दिमित, इधर—गगाके इस आँचलमे—क्या लौटेगी नही ?"

"तो तुम थीबिया नही हो !" पिघलता अन्तर जैसे और पिघल चला !

"थीबियाको पहिचाननेकी भी अब इस हाहाकारके बीच ऑखे न रही॰ दिमित ? अब क्या वक्षुके तीरकी वसन्त-परम्परा वेदनावर्ती परम्परामे बदल गई ? नेत्र अपनी पलकोको जिसकी राहमे उठाये रहते थे वे क्या तब उसे पहचान भी न पायेगे ? मै उसकी पार्श्ववर्तिनी क्रीता हूँ, राजन्, अभिराम, सुवासित मदिराके चषक भरनेवाली विलासकी प्राणदायिनी। पर वह विलास जिसमे उसका अपना कोई स्थान नही। महीनो रहते आये हो, दिमित, इस नगरमे, शायद तुमने भी सुना होगा वह जो इस देशके रहने वाले अपनी पुरानी परम्परामे कहा करते है—कि हमारे देवताओके राजा जो उसकी तरह ही इनके देवताओका भी एक राजा है, इन्द्र और उसकी एक प्रेयसी है सनातन किशोरी उर्वशी और उसका एक अपने हिये-का कभीका चुना प्रिय है जिसका नाम है चित्ररथ। बडा अभागा है वह चित्ररथ, दिमित, क्योकि मात्र वह उसका सखा है, पार्श्ववर्ती, उसके प्रणय-उल्लासके निमित्त अपनी उस उर्वशीको सभी प्रकारसे प्रसाधित कर चुपचाप उसके भोगके निमित्त प्रस्तुत कर देनेवाला, स्वय उस सखाका मात्र पार्श्ववर्ती, उसकी प्रियाका मात्र प्रसाधक—और मै उसी चित्र-रथकी नारी-कल्पना हूँ, क्रीता, थीबियाको प्रसाधितकर तुम्हारे निकट प्रस्तुत कर देने वाली, तुम्हारे निरालस मदिर विलाससे दूर भी पार्श्व-वर्तिनी। कितनी बार उस अपने प्रस्तुत प्रसाधित विलासके इष्टको देख वेदनाकी लहर अन्तरमे उठी है और बहकर रोम-रोमपर छा गई है, पर प्रसाधक तो भाव-वस्तुसे भिन्न है न, दिमित ? वह मरीचिकासे अतिरिक्त पदार्थकी आशा कैसे करे ?"

क्रीता जैसे साँस लेनेके लिए रुकी। दिमितपर भी जैसे सुनते-सुनते मोह छा गया था। वह तनिक चौका, बोला—"जाना, क्रीता, जाना—पर यह बात किसकी कह रही हो, भला ?"

"अपनी, दिमित, और यह बडी गलती है। सवाद लेकर आई हूँ,

दूरसे वेदनाका सवाद लिये आई और अपनी बात कहनेका अधिकार नही, पर वह तो आँचलके पीछे छिपाये ज्योति-लौकी बात थी, दिमित अब सवाद सुनो—"थीबियाकी करुण पुकार आज वक्षुके कान्तारोको भर रही है, उसका तरुण विन्यस्त जीवन लताकी टहनीसे बँध डोल रहा है। युक्रेतिदके विलासका तूफान आग-पानी लिये उसको घेर चला है और अगर तुम न लौटे तो तुम्हारा वह चिर-सचित, चिर-कल्पित, चिर-क्रीडित विलास स्वप्न हो जायगा। चली मै अब, तुम्हारी राहके काँटे फूल हो। विदा !" और क्रीता भारतीय वेशके अपने अधोवस्त्र सम्हालती, चाँदनीका परिकर बाँधे, हवामे उछलते कुचित केशोको सँभालती, वीणापर स्तनोका भार डाले चली गई। दिमित मन्त्रमुग्ध-सा चीख कुछ काल पेडोकी छायामे क्रीताकी छायाको विलीन होते देखता रहा, देखता रहा।

दूसरे दिन पाटलिपुत्रसे ग्रीक सेनाकी कूचका डका बजा और दिमित उसे लिये नगरकी प्राचीरोसे बाहर निकल गया। पर बाख्त्रीकी राह लम्बी थी और उस राहके काँटे फूल न बन सके। युक्रेतिद-सा भयकर दस्यु पामीरोसे उतर हिन्दुकुशकी आडमे खडा था, एक ओर दूर दिमित था, दूसरी ओर पीछे, परे, दूर वक्षुके तीर वसन्तकी बिसारी केसरकी सूनी क्यारियोमे पतझडके बीच सूखी लता-सी प्रत्यग बिखेरे थीबिया।

मगधके महलोंमें

एक दिन था जब सम्राटोने महल बनाये, महलोने सम्राट् । बात अनोखी है, पर है सच्ची । चेतन मानव जब जडको आत्मसमर्पण कर बैठता है तब जड भी चेतनपर हावी हो उसे बनाता-बिगाडता है, बनाता कम है बिगाडता अधिक है । मदिरा और पॉसेकी शक्ति जीवन और इतिहास दोनोकी जानी है, दोनोकी परखी । महलोकी प्रेरणा और शक्ति उनसे घटकर न रही ।

महलोने राजसत्ता दी और छीन ली, सम्राट् बनाये और बिगाडे । राजा जब-जब प्रमाद और प्रमदाके वशी हुए तब-तब उन्होने महलोकी ओर देखा, रनिवासो, हरमोकी ओर, तब महल सज्ञाहीन राजाको षड्-यन्त्रोके झूलेमे झुलाने लगे । रोमन सम्राटोका यही हाल हुआ चीनी सम्राटोका भी, तुर्क-सुल्तानोका भी । हरमोके प्रति आत्मसमर्पण कर देने-पर, सुरा और सुन्दरीको माथा टेकनेपर, महलोमे षड्यन्त्रोका ताँता लगा और सर्वत्र कठपुतली राजाओकी परम्परा खडी हो गई ।

इसी प्रकार मौर्योका अन्त हुआ, इसी प्रकार शुगोका हुआ । चन्द्रगुप्त मौर्यने चाणक्यकी छायामे जिस साम्राज्यका विस्तार किया, उसे अशोकने स्नेहसे पाला, उसे ही बृहद्रथने अपने अन्त पुरके विलास-यज्ञमे होम कर दिया । शुङ्गोका प्रताप फिर तपा । पुष्यमित्र और उसके पोते वसुमित्रने ग्रीक-यवनोको सिन्धुनदके पार भगा दिया, पर उन्हीके वशधर देवभूतिने सकटसे पाई, शक्ति और सघर्षसे रक्षित धराको असयत कामकी लोलुपतासे खो दिया । कहानी यह उसी सर्वनाशकी है ।

कहानी आजसे दो हजार साल पहलेकी है, जब शुङ्गोका सूर्य मगधमे तपकर अस्ताचलगामी हो चला था । पजाब-उद्यानमे यवन-पह्लव प्रबल

थे, हिन्दुकुशके शिखरोसे कबकी भारतीय छाया हट चुकी थी। अब उनके स्वामी बाख्त्रीके यवन थे, ईरानके पह्लव।

और शुङ्ग सिन्धु-पंजाबसे हट आये थे। मगध और मध्यदेश ही अब उनके शासनमे बच रहे थे। सम्भवतः वंग और मध्यभारतके कुछ भाग भी। शुंग-वंश अपने शासनकी अन्तिम घडियाँ गिन रहा था। टिमटिमाती लौपर देवभूतिने कामके उन्चासो मरुत् फूंक दिये।

देवभूति था, जाह्नवी थी, वसुदेव था, मदनिका थी। देवभूति मगधका सम्राट् था, वसुदेव उसका मन्त्री। जाह्नवी उसकी रानी थी, मदनिका उसकी दासी, दासीकी पुत्री। जाह्नवी रानियोमे सबसे छोटी थी, मदनकी रति-सी पत्नी, माया-सी मोहिनी, मदिरा-सी मदिर। जाह्नवी देवभूतिके जीवनमे तब आई जब उसका पौरुष जागकर सो चला था, जब कायासे अधिक उसकी छायाकी कामना थी, जब कुसुमसे अधिक उसकी सुरभिकी माँग थी, मद्यसे अधिक उसकी मादकताकी। जाह्नवीने देवभूतिको सो सब दिया।

मदनिका देवभूतिकी काम-परिधिमे कभी समा चुकी थी, जब राजा अभी कर्मठ था। तब मदनिका अभी आयुकी कच्ची थी, आमकी मंजरी जिसमे मकरन्द अभी बँध न पाया था, सुकुमार प्रवाल, कोमल किसलय, कनैलकी कोरक जो वृन्तसे अभी फूट भी न पायी थी। देवभूतिकी शत्रु थी मदनिका, कारण-शत्रु।

वसुदेव देवभूतिका मंत्री था, नीतिका पण्डित, रनिवासका, उपेक्षित रानियोका सखा, मगधकी लक्ष्मीका उपासक। महत्त्वाकांक्षा उसका परिकर बाँध चुकी थी, बक-सा ध्यान लगाये वह देवभूतिको ताक रहा था, काग-सी चेष्टा उसकी सजग थी। मदनिकाको उसने साधा। उसका सर्पिल पाश लिये देवभूतिके कण्ठमे उसे यमवत् फेकनेको वह आतुर हो उठा। चोट

खाई नागिन-सी, मदनिका महारक उछालके लिए कुण्डली छोड, फन उठा, वसुदेवके करमे काल-सी नाचने लगी ।

देवभूति आपानक करता, जाह्नवीके रागको सभी प्रकारसे गहरा करनेके साधन जुटाता, पर उससे रानी उसकी ओर खिच न पाती । राग तन्द्रा लाता है, तन्द्रा बाहुओकी दोला ढूँढती है । राजाके पास जाह्नवीके लिए राग था, तन्द्रा थी, पर बाहुओकी दोला न थी । उसके बदले वह रागको और गाढा करता, तन्द्रा उससे और अँगडाइयाँ लेती, पर उसका आलोडन न हो पाता । राजा लाचार था, रानी उस लाचारीकी शिकार थी ।

राजा अनुनय करता, रानी खीझती । राजा साम्राज्यकी समस्याएँ, उसके वैभव, उसकी शक्ति रानीके सामने रखता, रानी तीनोसे परे थी, उदासीन । पर राजाकी मर्यादाका उसे ध्यान था, उसने उसकी मर्यादामे, उसकी शानमे किसी प्रकारका बट्टा नही आने दिया । पतिव्रताओकी भाँति वह राजाकी बाट जोहती और जब-जब राजा आता तब-तब वह अपने सौजन्यसे अपनी घनी सवेदना उसे देती, पर स्वय अपनी वेदना वह छिपा न पाती । राजा वह वेदना जानता था । उसके लिए उसका विशेष आदर भी करता पर आदरसे वेदनाकी दवा तो न हो पाती, अनेक बार और उभर जाती ।

पर चारा ही क्या था । रनिवासका रवैया ही यही रहा था सदासे । सदासे अन्त पुरमे एक राजा साधका उद्यान लगाता आया था । लावण्यकी एकसे एक पौध वह उद्यानमे लगाता, फूलोको एक-एक कर वह लोढता, पर समर्थसे समर्थ, कुशलसे कुशल माली भी भला समूचे उद्यानको अकेला कैसे देख सकता है ? पौधोसे अकुर होते है, कलियाँ फूटती है, लताएँ रेगती है, वृक्षोपर पोर-पोर पत्ती-पत्ती छा जाती है । उद्यान जगलका रूप धारण करता है, जीवन लहराकर हजार धाराओसे वह चलता है । क्या करे माली ?

क्या करता राजा ? उसे जो पता होता कि रनिवासको भरना आसान है पर उसका पालन कठिन है तो शायद वह चयनसे ही विमुख हो गया होता । पर अब तो वह लाचार था । जाह्नवी उसकी लाचारी समझती थी और अपने मनको जतनसे मना रखती थी । रानियोके राग-रजनके अनेक साधन थे, उन साधनोकी सम्हाल दासियाँ करती, क्लीब करते, कंचुकी करते । कुछ भी ऐसा न था जो उन्हे उपलब्ध न हो सके, पर जाह्नवी उस रनिवासके रवैयेमे अपवाद थी । उसने किसी दासीको अपनी आवश्यकताके लिए मुँह न लगाया, किसी क्लीबसे मनकी व्यथा न कही किसी कचुकीकी सहायता न चाही ।

पर वसुदेव उसकी पीडा जानता था, मदनिका भी जानती थी उसकी वह पीडा । पर दोनो उससे उदासीन थे । स्वार्थ और इष्टके समर्थ साधक-को भवकी बाधाएँ नही खलती । दोनो अपने-अपने इष्टके सम्पादनमे लगे । वसुदेवको मगधका साम्राज्य चाहिए था, मदनिकाको अपने नारीत्वके अपमानका बदला । दोनोका साध्य समान था—देवभूतिका निधन । दोनो समानधर्मा हुए ।

दोनो एक दूसरेका इष्ट जानते थे, दोनो समान इष्टके सम्पादनके लिए कटिवद्ध हुए । पर जब पुरुष और स्त्री किसी कारण मित्र बनते है तव उनमे मात्र मैत्रीका सम्बन्ध नही होता, उनमे परस्पर पिण्डका भी प्रवेश होता है, मन और शरीर दोनो तब एक-दूसरेसे अपना भाग माँगते है । वसुदेव और मदनिकाकी मासल सत्ता भी तब मात्र मैत्रीकी परिधि लाँघ गई । दोनोने परस्पर मानसका परिवर्तन कर लिया । दोनोके तन व्यव-हारत एक होकर भी उस समयकी प्रतीक्षा करने लगे जब वसुदेव राजा हो और मदनिका रानी । उसके लिए देवभूतिका मार्गसे हट जाना आवश्यक था ।

वसुदेवने मत्र दिया, मदनिकाने उसे साधा । शिशिरका जब अवसान

हुआ, वसन्त जब जागा, आमकी मजरियाँ जब अपने कोशमे मकरन्द बाँधने लगी, कोकिल तब उसके स्वादसे अफर रवने लगा। और तभी वसन्तोत्सव-के अवसरपर जाह्नवीने काम-पूँजाका आयोजन किया।

नये किसलयो, अर्धस्फुट कोरकोसे उसने अपने प्रासादके अलिन्द सजाये, द्वारके मकर-तोरण। शयनागारकी दीवारे चित्रोसे लिख गयी। शय्या समूचे फूलोसे, कोमल गजरो-मालाओसे सज गयी, कक्ष परागकी सुरभिसे गमक उठा। कुसुमोके बाससे बसी मदिरा नासिकाके रन्ध्रोको छेडने लगी। धूप-अगुरु-केसरसे वायु बोझिल हो उठा। जाह्नवीका शयना-गार इस प्रकार सज जानेपर वह स्वय भी सज चली।

सोन्दयके धनीको प्रसाधनकी आवश्यकता नही होती, पर प्रसाधन सौन्दर्यको उमगा देता है। जाह्नवीकी रूपराशि अप्रतिम थी, शृगारने मणिका मस्कार कर दिया, मणि चमक उठी।

आधी रात दमकती ज्योत्स्नामे शयनागारमे प्रवेश होता था। राजा एक ओरसे आता था, रानी दूसरी ओरसे। वसन्तका वह उत्सव अभिसारका रूप धारण करता था। रतिका अभिसार था वह, मदनके प्रति। शुक्ला-भिसारिका रानी श्वेत वसनोमे सजती, धवल मुक्ताओके अलकार धारण करती। समूचा उद्यान रिक्त होता। कचुकी और क्लीब, दास और दासी दूर हट जाते। फिर एकान्तके छोरसे रानी निकलती और राजाकी शय्याकी ओर बढती।

जाह्नवी अपने प्रासादसे निकली, कुसुम शय्याकी ओर अभिसारिका बन चली। पर जैसे ही वह माधवी कुञ्जकी ओरसे निकली सहसा उसकी साँस बन्द हो गई। उसे लगा कुछ हो गया, पर क्या हो गया, उसने न जाना, न किसीने जाना। धरा उसे जैसे निगल गई।

क्षण भर बाद अभिसारिकाके परिधान पहने जाह्नवीका रूप बनाये मदनिका स्वामीके शयनागारमे पहुँची। शय्याके समीप राजा खड़ा उत्सुक

राह देख रहा था। जाह्नवीको प्रवेश करते देख वह ससम्भ्रम उसकी ओर बढा, उसे छातीसे लगा लिया। क्षण भर बाद ही उसका निर्जीव शरीर शय्यापर लुढक गया। मदनिकाने हाथका शंख फूँक दिया।

सहसा अनेको शख बज उठे। सेना स्कन्धावारोसे निकल आयी। सभागृहमे सिहासनपर वसुदेव विराजमान था। मन्त्री-सभासद् यथास्थान खडे थे, पुरोहित राजतिलक कर रहा था। यह शुगोकी राजलक्ष्मीका निशीथकी वेला, कण्व वसुदेवके प्रति अभिसार था।

बिहिश्तका महल

हिन्दू-पार्थव राजाओंने पहली सदी शुरू होते-होते पश्चिमी पजाबपर अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। पार्थव और पह्लव एक ही थे—ईरानी, और यदि पूरे ईरानी न थे तो कम-से-कम ईरानी सम्राटोकी प्रभुता वे मानते थे।

महात्मा ईसा हाल ही मे मरे थे और उनकी सूलीकी खबर धीरे-धीरे उनके सन्देशके साथ देश-विदेशमे फैल चली थी। वैसे ईसाका महत्व इजराइलसे बाहर लोगोको कम मालूम था। जो जानते भी थे वे बस इतना कि नजरथका ईसा नामका एक बढई पुराने देवताओसे बगावत कर नये साम्राज्यका ऐलान करने लगा था और उस साम्राज्यका सम्राट् शायद वह खुद अपनेको समझता था। सम्राट् तो उन दिनो बस एक ओगुस्तस रोमका था और रोमनोने समझा कि यह अस्तबलमे जन्मा नाचीज खुद सम्राट् होना चाहता है। जब ईसा सूली पानेके लिए जुरुसलमकी गोल्गोथा पहाडीपर ले जाया जाने लगा तब रोमन सैनिकोने उसे लाल चोगा पहनाया, उसके सिरपर काँटोका ताज रखा और 'इम्परेतर! इम्परेतर!' (सम्राट्) कहकर उसकी मखौल उडाई। वह क्रूर मखौल कालान्तरमे सही साबित हुई। वर्जिल और होरेसकी काव्य-सम्पदाके धनी रोमन महलोके सम्राट् और 'अस्तबलके जन्मे' बढईमे समर छिड गया। रोमका महल हार गया, बेथलहमका अस्तबल जीता।

पर यह जीत अनायास न हुई। उसके लिए बडी कुरबानियाँ करनी पडी। ईसाके अनुयायी साधु उसका पैगाम ले सीरिया और अन्तियोक, एशिया माइनर और मकदूनिया, यूनान और मिस्र, साइप्रस और रोम चल

पडे। पर उनका पग-पग लहूसे लथ-पथ था फिर भी सिर हथेलीपर ले वे खतरे झेलते बढ चले, और वे पण्डित न थे, अधिकतर निरक्षर थे।

इन्हीमे एक सन्त थामस था, ईसाके वारह चेलोमे एक। उसे पूरवकी विरासत मिली, खासी खूखार विरासत, क्योकि उस पूरवमे वडी बेरहम खूनी जातियाँ बसती थी। बद्दुओके घेरेसे निकलते ही ईरानी कबीलाइयो-का साया मिला फिर शकोका, फिर यूनानियोका। पर वढ चला साधु थामस पूर्वकी ओर, अकेला निरस्त्र, महारेके लिए हाथका सोटा लिये, गुरुका सवाद पूर्वी दुनियाको सुनाने—नये साम्राज्यके आगमनका, प्रेमका, गरीबोके साम्राज्यका प्रसार करने और यह साबित करने कि विहिश्तका राज कगालो-मजलूमोका है जिसमे धनियोका प्रवेश पाना उतना ही कठिन है जितना सुईके छेदसे ऊँटका निकल जाना।

ईसाके सूलीपर चढे अभी १९ साल हुए थे जब विन्दफर्ण (गुदफर, गोन्दोफर्निस) पार्थव गद्दीपर बैठा। जब दो-तीन साल बाद सन्त थामस हिन्दुकुश लॉघ भारत पहुँचा तब विन्दफर्णका प्रताप तप रहा था। पूर्वी ईरानसे पश्चिमी पजाब तक सारा भूखण्ड उसीके अधिकारमे था। उत्तर-पश्चिमके यूनानियो और शकोका वह पूरे रूपसे वारिस था।

एक दिन पश्चिमी पजावकी उसकी राजधानीमे इस नये साधुकी चर्चा छिडी। तबकी दुनियामे हिन्दुकुशके इस पार तपस्वी बहुत थे, जिनके लिए देखते-ही-देखते आगमे कूद जाना और जलकर मर जाना कुछ कठिन न था। ऐसे भी थे जिनके मुँहसे जब दार्शनिक वाग्धारा निकलने लगती तब देखते ही वनता। ऐसे भी तपस्वी थे, जिनका यश वडा था, विद्या बडी थी। पर यह जो नया साधु आया कुछ और ही किस्मका था। था तो वह औरों-जैसा ही, साधारण लोगों ही जैसा, पर क्रोधका जवाब वह प्रेमसे देता था, गालीका हँसीसे, और किसी हालके मरे और जी उठे खुदाके बेटेकी बात कहता था, उसके राजकी, बिहिश्तके राजकी, कगालोके राजकी।

तभी, जब अपने देशमे सुपार्श्व और वसुमित्र, अश्वघोष और नागार्जुन दर्शनकी गुत्थियोमे गाँठ-पर-गाँठ देते जा रहे थे, जब चरक अपनी प्रयोग-शालामे चर्मरोगकी ओपधियाँ खोज रहा था, उत्तरमे हल्ला मचा कि लम्बी दाढी और लम्बे केशोवाला जो वह सन्त आया है उसके स्पर्श मात्रसे रोग भागता है, कब्रे दरक जाती है, मृतक जी उठते है। वह गजबका निर्भीक है, उसमे गजबका विश्वास है।

विन्दफर्णकी सभामे भी नये साधुके करतबोके बयान हुए। उसके अनेक दरबारियोने साधुको बाजारमे प्रेम और कगालोके राजका ऐलान करते सुना था, कोढियोके घाव धोते देखा था। राजाका मन भी साधुको देखनेको ललचा। तभी किसीने बताया कि साधु असुरोके देशका है, बाबुल-की ओरका, मयका हमवतन। राजा तब महल बनवा रहा था, एक-से-एक वडा, एक-से-एक ऊँचा, एक-से-एक अभिराम। उसे लगा, वास्तुके आचार्य, पाण्डवोका महल बनाकर प्रतिबिम्ब द्वारा दुर्योधनको द्रौपदीका हास्यास्पद बना देनेवाले मयके देशका यह असाधारण साधु, शिल्पमे भी निश्चय गति रखता होगा। उसने साधुको बडे आदरसे बुला भेजा।

थामसके आनेपर राजाने उससे पूछा—"तुम्हारा उपदेश क्या है, साधु ?"

साधुने ईसाका सन्देश सुना दिया, स्नेहका, बिहिश्तके राजका, कगालोके आनेवाले ऐश्वर्यका। विन्दफर्ण उसके तेजोमय परन्तु नरम, मधुर, निराडम्बर वाक्पद्धतिपर मुग्ध हो गया। उसके दरबारी साधुकी सादगी और दृढ विश्वाससे चकित हो गये।

विन्दफर्णने अन्तमे अपने मतलबकी बात पूछी—"सन्त, जिस देशके तुम रहनेवाले हो वहाँके शिल्पकी तो बडी श्लाघ्य कथा है।"

"सही, उसकी जो नई शैली है उसका मुकाबला तो मयके सुन्दर-से-सुन्दर महल भी नहीं कर सकते, राजा।"

राजाने उसका निश्छल उत्तर सुन पूछा—"क्या तुम्हे भी उस शैलीका ज्ञान है, सन्त ?"

"अपने बारेमे कहना नामुनासिब है, पर सुनो—वहाँका सबसे बडा राजा मर गया। उसने अपना सारा हुनर अपने ग्यारहो शिष्योमे बाँट दिया। उन ग्यारहोमे-से भी कई मर गये। जो कुछ बच रहे है उनमे इमारती हुनरकी उस शैलीमे मेरी जगह पीछे न होगी।" साधुने सकुचाते-सकुचाते जवाब दिया।

"फिर मेरे इस प्रासाद-निर्माणके कार्यमे हाथ बॅटाओ, साधु, आभार मानूँगा।" राजा बोला।

"सही, राजन्, वह मै करूँगा। अपना कर्तव्य समझकर करूँगा। पर उसमे व्यय होगा, प्रचुर धन व्यय होगा।"

द्रव्यकी क्या कमी है, सन्त ! जितना चाहो ले लो। साम्राज्यके कोष सुवर्ण और रत्नोसे भरे है। सब तुम्हारे इशारे मात्रमे खुल जायँगे। हुक्म दो और हमारे खजाची सब कुछ हाजिर कर देगे।"

राजाने अपने कौलके मुताबिक खजाञ्चियोको हुक्म भी दे दिया। साम्राज्यके कोष-कपाट खुल गये, धन जाने लगा, तिजोरियाँ खाली हो गई पर कमी किस बातकी थी ! राज-कर दूर-दूरसे आता था, सौदागर-व्यवसायी अपने लाभका राजभाग धारासार राजकोषमे बरसाते थे। तिजोरियाँ फिर भर गई, फिर खाली हो गई, फिर भरी। इस प्रकार राजकोषसे सन्तने अनन्त धन लिया।

सालभर बीत गया। तब राजा एक दिन साधुसे मिला। साधुने उसे बताया—"काम हो रहा है, इमारतके लिए सामान इकट्ठा हो रहा है। दूर-नजदीकसे अचरजके रतन मुहैया किये जा रहे है। चिन्ता न करो, राजन्, महल जल्दी ही तैयार हो जायगा।"

"चिन्ता क्या हो सकती है भला, तुम्हारे रहते, साधु !" कहकर राजा चला गया।

मालभर बाद राजा फिर साधुसे मिला। तब साधुने कहा—"सामग्री सारी प्रस्तुत है। नीव खुद चुकी है। राजमिस्त्री कार्यमे व्यस्त है। चिन्ता न करो राजन्।"

"चिन्ता कैसी, सन्त, भला तुम्हारे रहते !" राजाने कहा और पूर्ववत् चुपचाप चला गया।

तीसरे साल जब राजा अपना महल देखने गया तब सन्तने कहा—काम जोरोसे लगा है। अगले साल जब तुम इसे देखने आओगे तब देखोगे कि इसके कलस-कगूरे बिहिश्त चूम रहे है, कि उसपर खुदाका साया है। चिन्ता न करो।"

"चिन्ता किस बात की, साधु, तुम्हारे रहते !" कहता सन्तुष्ट राजा विन्दफर्ण फिर चला गया।

अगले वर्ष महीने-महीने सन्त राजाको महलके बननेकी कैफियत देने लगा। आधारके ऊपर दीवारे शिलापर किलेकी तरह मजबूत खडी है, दीवारोपर अचरजकी छत टिकी है, उसपर दूसरी मजिल है मजिलपर मंजिल, सात मजिल। चारो कोनोपर दूर चमकते कलश आँखोको चका-चौध करनेकी जगह शीतलता प्रदान करते है। आओ, राजन् काल और देशकी सीमाओसे रहित इस अक्षय अट्टालिकामे निवास करो। इसकी खिडकियाँ खुली है, द्वार खुले है, पर चोर तो क्या इसमे जमकी साँसका भी प्रवेश नही हो सकता। आओ, अपना सर्वस्व छोडकर, लुटाकर आओ। यहाँ उन लुटाई चीजोका अनन्तगुना सचय है।"—उसने राजाको कहलाया।

"पर अकेले मत आना। अपनी रानियो, बेटों, सम्बन्धियोके साथ आओ, दरबारियो-परिजनोके साथ, सेनाओं-अधिकारियोके साथ, रियाया-

सामन्तोके साथ, जिससे वे सब तुम्हारा नये महलमे प्रवेश देख सके, और अपने उन शिल्पियोके साथ आओ जो अब तक तुम्हारे महल बनाते रहे है, जिससे वे देख ले कि शिल्पके इस नये अनुशासनसे प्रस्तुत तुम्हारा यह नया महल कैसा है—इसकी आधारशिला, दीवारे, छते, कलस-कगूरे, वज्रलेप, अजेय परकोटे।" उसने फिर कहलाया।

राजा आया। वह अकेला न था। साधुकी इच्छाके अनुसार उसने अपने साथ रानियो-बेटो-सम्बन्धियों-दरबारियो-परिजनो-सेनाओको ले लिया, रियाया, सामन्तो और शिल्पियोको। राजकोपकी सारी सम्पदा खुशीमे कगालोको बॉट वह सबके साथ साधुके सामने जा खडा हुआ।

साधु प्रसन्नमन उसका इन्तजार कर रहा था। सबके आ जानेपर उसने राजासे पूछा—"देखा, राजा, तुमने अपना वह महल ?"

"नही, साधु," राजा बोला।

"तुम्हारे पुराने कृत्य तुम्हे उसे देख सकनेमे आडे आ जाते है। यह राजसी लिबास उतार डालो, इसे पहनो, तब वह महल तुम्हे दिख जायगा।"

उसने राजाको एक चोगा दिया और एक सोटा। राजाने राजसी लिबास उतार चोगा पहन लिया, सोटा हाथमे ले लिया। उसने पूछा—"कहॉ है मेरा वह महल, साधु ? मै तो उसे अब भी नही देख पाता।"

"मूर्ख हो राजा, जो अब भी तुम उसे न देख पाये। सुनो, तुम्हारा सारा धन कगालोको बॉटकर मैने अक्षय महल आनेवाले बिहिश्तमे बना दिया है। उसका द्वार सामने है। प्रवेश करो।" और उसने सामनेकी अपनी कुटीकी ओर हाथ उठा दिया।

राजाने पहले तो उसे पागल समझा, पर जब साधुने ईसाके उपदेश उसे सुनाने शुरू किये, तब वह चेता। अपने नये कपडोको देख उसके क्रोधकी सीमा न रही। उसने साधुको कैद कर लेनेका हुक्म दिया। साधु

जेलमे बन्द कर दिया गया। पर जनतापर उसका अब तक काफी असर पड चुका था।

जैसे-जैसे कगाल उसके उपदेश सुनते वैसे-वैसे उन्हे शक्ति मिलती और एक दिन उन्होने कारा तोड माधुको छुडा लिया। तब तक मध्य एशियाके कुपाणोकी लहर पास आ पहुँची थी। त्रिन्दफर्णका साम्राज्य उसमे डूब चुका था। माधु उन नई वर्बर सेनाओको भी वही प्रेमका सन्देश सुना रहा था, जो उसने विन्दफर्णको सुनाया था, कगालो-मजलूमोके नये साम्राज्यका सन्देश।

जब रोमन महिलाओंने भारतीय व्यापारकी रक्षा की

ईसा पूर्व पहली सदीका रोम रोमन इतिहासमे अपना सानी नही रखता। उस नगरने तब भूमण्डलपर अद्वितीय साम्राज्य स्थापित किया था। पाम्पे, ग्राचस, जूलियस, अन्तोनीने गजबके सिपाहियाना तेवर दिखाये थे। इग्लैडसे पार्थिया तक, उत्तरी जर्मनीसे नील नदके उद्गम तक सारी पृथ्वी रोमके अधिकारमे थी, सिनेटका बोलबाला था, उसमे जगत् प्रसिद्ध सिसेरो दहाडता था, विजेताओको यथास्थान रख देता था।

रोमन जेनरल लौटते, एक-एक प्रान्तका स्वामी बन अलभ्य ऐश्वर्य भोगते। सैनिक लौटकर गाँवोमे अमित मात्रामे भूमिके स्वामी बनते, जीवनका मान बढ जाता। कुछ दिन और बीते, रोम अपनी शक्ति और वैभवकी मूर्धापर जा चढा। गणतत्रका रहा सहा रूप भी खत्म कर दिया गया, साम्राज्यका स्वामी जूलियसकी बहनका पोता ओगुस्तस सीजर बना। शीघ्र उसने अपने प्रतापका साका चलाया। जैसे पिछले दिनोमे भारतीय इतिहासमे गुप्तकाल स्वर्णयुग माना गया, एलिजाबेथका युग इग्लैडके इतिहासमे स्तुत्य हुआ, रोमका वह युग भी ओगुस्तस-युगके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जब पार्थिव समृद्धिके साथ ही कला-साहित्यकी भी अभूतपूर्व उन्नति हुई, जब होरेस और वर्जिलने काव्य-कलाको अभिराम सजाया।

तभीकी बात है। भारत तब पच्छिमी व्यापारसे जितना ऋद्ध हुआ उतना कभी न हुआ, न पहले न पीछे। उत्तरापथ तो निश्चय लहूलुहान हो रहा था, शकोकी चोटसे क्षतविक्षत, पर दक्षिणापथ व्यापारकी नीद जागता था। चीनसे अतलातिक सागर तक सारे देश उसके करतलमे थे।

व्यापारसे धारासार धन देशके बन्दरोमे बरसता था। मोती, गरम मसाले और कपड़ोके व्यापारने रोमका सोना अमित मात्रामे बटोरा।

रोमन सैनिक दक्षिणापथके राजाओंकी शरीर-रक्षक सेनामे भरती होने लगे, ग्रीक गुलाम सेठोकी पालकी ढोने लगे, यवनियाँ रनिवासोको अपने सौन्दर्यसे प्रदीप्त करने लगी। धीरे-धीरे कुछ काल और बीता। अभिजात सैनिक साम्राज्यके दूरस्थ स्कन्धावारोसे धनवान हो लौटे, रोमके नगरमे विलासमयी लक्ष्मी नाच उठी। रोमने अमरपुरी अलकाका रूप धारण किया। उसके राजमार्गकी अट्टालिकाएँ सगमरमरकी आभासे दमक उठी, स्वय राजमार्ग छैलोके अट्टहाससे गूँजने लगे। अवकाशप्राप्त जेनरल कामुकोका आचरण करने लगे। सडकोपर उनके रक्षकोके दलके दल उनकी प्रेयसियोके लिए, कमनीय तरुणोके लिए एक दूसरेका खून बहाने लगे। अवकाशका ऋद्ध जीवन व्यापारके लिए स्वर्ण अवसर प्रदान करता है, भारतीय व्यापारियोके भाग्यद्वार खुल गये।

उनकी आढते पहलेसे ही खुली थी। उनमे अधिकसे अधिक भावके गरम मसाले, महार्ह मोती और रतन, 'मकडीके जाले' से महीन वस्त्र भरे थे। प्लिनीने रोममे भारतीय वस्तुओके विरोधमे देशप्रेमके नामपर आन्दोलनपर आन्दोलन चलाये, पर उनमे रति न तो रोमके छैलोकी कम हुई, न महिलाओकी। मकडीके जालो-से वस्त्र पहिने भी नगी रहने-वाली महिलाओकी बेशर्मीका उल्लेख हुआ, उनके सीमन्तकी मुक्तावलियो, जूतियो, दामनोपर टँकी मोतियोकी लडियोपर स्वदेशी आन्दोलनके नेताओने सकारण रोष किया, गरम मसालोकी कीमतकी ओर सकेतकर लोगोकी तृष्णापर लानत भेजी। पर उनकी खरीदारी बन्द न हुई। न छैलोने अपने मोती और फिरोज़े छोडे, न महिलाओने अपने झीने वसन और मुक्ता त्यागे, न रसोईके मादक मसालोकी गमक रुकी।

सिनेटने कीमतें बढा दी, दुगुनी-चौगुनी कर दी, भारतीय वस्तुओपर दो-दो सौ फ़ीसदी कर लगा दिये, पर उनकी माँग न रुकी, न रुकी।

रोमके छैलोने, रूपनिधान मडनप्रिय महिलाओने, स्वादु भोजनके शौकीनो-ने रुचिमे व्यभिचार न होने दिया, भारतका व्यापार बचा लिया। सिसेरो कबका खूनका शिकार हो चुका था, प्लिनीका इतिहास रोकर मूक हो चुका था, पर भारतीय मोतीका आब रोमके बाजारोमे लोगोकी आँखोपर चढा रहा, महीन वस्त्र सुडौल अगोपर वायुकी भाँति लहराते रहे, मसालो-की गमक नथनोके मार्ग प्राणोको अभितृप्त करती रही। लोग चोरी-डाके-से, जुए-ऋणसे प्रेयसियोकी माँगे पूरी करते ही रहे, श्रीमानोके लाडले भारतीय व्यापारियोके नाम अपने प्रासाद, गुलाम और नगर रहन करते ही रहे। सिलाकी चितामे गरम मसालोकी दो सौ दस गाँठे झोक दी गई, सम्राट् नीरोने पोपियाको दग्ध करते समय दालचीनी और तेजपातकी साल भरकी समूची उपज आगकी लपटोको भेट कर दी। मालावारके बन्दरोसे सामान भरा जहाज एक नित्य रोमके लिए छूटने लगा।

कल्लाके सगमरमरके प्रासादमे सभ्य-बर्बर ससारकी सभी अनोखी वस्तुएँ सजी थी। रात सहस्रो प्रदीपोके प्रकाशमे दिनकी आभा धारण कर रही थी। महिलाओका मनोरम अन्तरग महीन मलमलके पारदर्शक तन्तुओसे साफ झलक रहा था, अभिरूप तरुण प्रेयसियोके प्रसादन और आपानमे व्यस्त थे, सुरुचिमण्डित दास-दासियाँ गमकते भोजनके विविध पात्र लिये भोजन परस रही थी, धूप-अगुरुका धुआँ वातावरणपर छा रहा था, मदिर वायु मह मह कर रहा था।

तभी प्रधान दासने आवाज लगाई—"भारतीय पोतस्वामी धनसेठ पधार रहे है!"

धनसेठकी प्रतीक्षा महीनोसे की जा रही थी। तबके ससारका सबसे बडा, सबसे मूल्यवान मोती 'शुभ्रज्योति' कुछ ही काल पूर्व ताम्रपर्णीके मुहानेसे पनडुब्बोने जानकी बाजी लगाकर निकाला था। उसी मोतीको लेकर धनसेठ रोम आ रहा था। तूफानमे पड जानेसे पहले तो जहाजके

डूब जानेका डर हुआ था, रोममे एक तहलका मच गया था, फिर हाल ही उसके बच निकलने और दो-एक दिनमे ही रोम पहुँचनेकी भी खबर मिली थी। रोमके कामुकोकी तृष्णा जग उठी थी, उसी मात्रामे जिस मात्रामे विलासिनियोकी अलकार-लिप्सा। लोग उसे खरीदनेके लिए धन बटोरने लगे थे, प्रासाद गिरवी रखने लगे थे।

वही शुभ्रज्योति मोती लिये धनसेठ कल्लाके प्रासादमे आ पहुँचा। एक सिरेसे दूसरे सिरे तक लोगोमे बिजली दौड गई। सभी सजग हो उठे। प्रेयसियोने अपने प्रणयियोपर और सार्थक दृष्टि डाली, प्रणयियोने अपने बटुए सम्हाले।

खरीदारोने धनसेठको घेर लिया। धनसेठने व्यापारीकी स्वाभाविक चपलतासे अत्वरित शिथिलतासे धीरे-धीरे नीलमकी डिबिया निकाली। उसमे मोतीका समूचा शरीर दीखता था। आँख उसपर टिकी रह गई। अलक्षित खरीदारोने रोडे उछालने शुरू कर दिये। धीरे-धीरे जब बोली ऊँची हुई, मूल्य चढ चला, खरीदारोकी सख्या भी छँट चली पर कल्ला और तीतस जमे रहे। कल्लाने तीतसकी अनुपम लावण्यवती पत्नी पात्रीशियाको मोती उपहारमे देनेका वचन दिया था, तीतसने कल्लाकी ग्रीक दासी क्रोताकी। बोली चल रही थी, बाजी धन-वैभवकी थी, प्रणयकी।

"दस हजार दीनार!" कल्लाने कहा!

"बीस हजार!" तीतस बोला।

"चालीस!"

"अस्सी!"

"एक लाख!" कल्ला खीझकर बोला।

"कार्थेज!" तीतसने उत्तरमे नगर अर्पण कर दिया।

"जेनोआ!" कल्लाकी आवाज ऊँची उठी।

"त्यूनिस, मीलान!" जेनरल तीतस गरजा।

"आतेलियर !" कल्लाने अपना सर्वस्व दाँवपर लगा दिया। चारो ओर-से विस्मयकी लहर उठी। 'आतेलियर' कल्लाके प्रासादका नाम था। उसमे साम्राज्योंकी कीमत सिमटकर आ गई थी। संसारके दर्शनीय कलादर्श, महार्हतम रत्न, अनन्त धन, जिसकी समता इटलीके सारे नगरोंकी एकत्र सम्पदा भी नही कर सकती थी। 'शुभ्रज्योति' कल्लाका हुआ, 'आतेलियर' धनसेठका।

उसी रात जब कल्ला पात्रीशियाके साथ सोया हुआ था तोतमने उसकी पीठमे छुरा मारा। कल्लाके प्राणपखेरू उड गये। अन्धकारमे भी भूमिपर पडा शुभ्रज्योति चमकता रहा।

जब रोम भारतीय काली मिर्चके मोल बिका

बात इतिहासकी है, सन् ४१० ईसवीकी। अब रोमकी वह हस्ती तो न थी पर सूरज उसका अब भी तप रहा था, यद्यपि सूरज वह मध्याह्नका न था, तीसरे पहरका था, ढलता सूरज। फिर भी ज्योतिष्मान् था वह और पृथ्वी और आकाशकी कोई अग्नि अभी उसके तेजकी बराबरी नहीं कर सकती थी।

एक दिन था जब रोमका सम्राट् भारतीय महासागरमे अपने जहाजी बेडे भेजता था, जब भारत और चीनके दूत-मडल उसके दरबारमे उपस्थित होते थे, जब उसके साम्राज्यकी सीमाएँ अरब और चीनसे स्पेन और इग्लैण्ड तक, कास्पियन सागर और जर्मनीसे नील नदके उद्गम तक फैली थी, जब ससारकी सारी सडके अमरपुरी रोमको जाती थी।

अब बात निश्चय वह न थी। सम्राट् थियोदोसियास महान् पन्द्रह साल पहले ही अन्तिम निद्रामे सो चुका था, साम्राज्यकी चूले आभिजात्योके आन्तरिक सघर्ष, इन्द्रिय लोलुपता और लूटकी तृष्णासे हिल चुकी थी। चार सौ वर्ष पूर्व जिस विपद्की ओर गुलामोके विद्रोहने सकेत किया था उसकी परिणति आँखोके सामने घट चली थी। पूरबकी तातार जातियोने चीनके उत्तर-पच्छिमसे रेला बोला था, हूणोकी तलवार और आगके सामने मध्य एशियाके राज्य उखडे जा रहे थे। उनकी चोटसे दक्खिनी रूससे पूर्वी गाथ भभरकर भागे, उनके सामने पच्छिमी गाथोकी लश्करे चली। गाथोकी चोटसे बण्डल उखड गये, हगरीसे उठकर वे दक्खिन बढे, समृद्ध रोमन साम्राज्यपर वेगसे टूटे।

वण्डल, गाथ और हूण। वण्डल अपनी महार नीतिसे यूरोपीय साहित्य और भाषाओमे अपने नामका पर्याय छोड गये है, गाथोकी शक्ति अनवरुद्ध थी, और हूणोके सक्रमणकी क्रूर कथा उनकी राहके उजडे गॉव और जले नगर कहते थे। तीनोकी चोट प्राय एक साथ रोम-पर पडी।

रोमसे कभी वण्डलोने शरण मॉगी थी और रोमने उन्हे शरण दी थी। उन्हे उसने अपनी सरहदमे बसा लिया था, हगरीमे, गाथोने भी उससे शरण माँगी थी, उन्हे भी दी थी उसने पनाह और डैन्यूबके तटपर रूमै-नियाँ बलगेरियामे उन्हे भी बसा लिया था। साम्राज्य दो भागोमे-बॅट चला था लातीनीभाषी पच्छिम और ग्रीकभाषी पूरबमे। पच्छिमी साम्रा-ज्यका केन्द्र रोम था, पूरबीका बीजेन्तियम् जो ईसाई महान् रोमन सम्राट् कान्स्तोन्तीनके नामपर कुस्तुन्तुनियाकी नयी सज्ञा धारण कर चला था। जब पच्छिमकी चोट अनिवार्य हो उठती साम्राज्य कुस्तुन्तुनियाकी ओर सरक जाता, जब पूरबका खतरा आकार धारण करता साम्राज्य रोमका आसरा करता। और उस विशाल साम्राज्यकी सन्धियॉ इस पूरब-पच्छिमके आवा-गमनसे ढीली हो गईं। कुछ अजब न था कि एक दिन सहसा चक्केकी धुरी टूट जाय।

इटली और पानोनियाकी रोमन सेनाओका सेनानी इस समय स्तिलिचो नामक वण्डल था, बालकन प्रायद्वीपकी रोमन सेनाओका अलारिक नामका गाथ। थियोदोसियसके दो बेटे थे, आर्कीदियस और ओनोरियस, दोनो एक-से एक अगियाबैताल। दोनो साम्राज्यके लिए जूझ चले। अलारिकने पहलेका पक्ष कुस्तुन्तुनियामे सँभाला, स्तिलिचोने दूसरेका रोममे। आभिजात्य दोनो ओर स्वार्थ और सुविधावश बॅट गये।

अलारिक और स्तिलिचो स्वय साम्राज्यके लिए लड रहे थे। सघर्षकी भीषणता दिन-दिन बढती जा रही थी। अलारिककी क्रूरता दूर-दूरके

रोमन प्रान्तोमे आतकका मंचार कर रही थी । रोमके नागरिक भयविह्वल कातर हृदयोसे सघर्षके परिणामकी ओर देख रहे थे । जानते थे कि बर्बर दोनो है, अलारिक भी, स्तिलिचो भी । किसीकी विजयसे रोमका कल्याण नही । पर चारा ही क्या था ? पोम्पे और जूलियसका शौर्य कबका सो चुका था । रोमके प्रान्त वण्डलो और गाथोकी चापो चले कबके रौदे जा चुके थे । स्वय वह अमरपुरी अपने भाग्यकी रक्त भरी धुँधली रेखा पहचान रही थी । युद्ध दिन-दिन उत्तरसे दक्खिनकी ओर पूरब-पश्चिमसे रोमकी ओर बढता आ रहा था । रोमकी समृद्धिके लिए वण्डल और गाथ जूझ रहे थे ।

अलारिक जानता था, स्तिलिचो भी, रोमके वैभवका वैपुल्य । कितना सोना उसके आभिजात्योकी तिजोरियोमे भरा था, कितना अतुल धन उसके नागरिकोके कोठोमे ठसा था । रोमन जेनरलोका विक्रम दिशाओसे सिमटकर नगर बाहरके उनके विलास-भवनोमे रम गया था । पर आज उस विलास-की वस्तु-वस्तुपर उसकी एक-एक शरमायी रौनकपर भावी विपद्‌की छाया डोल रही थी । अलारिक और स्तिलिचोका भय व्याप रहा था ।

सहसा वण्डलोके भाग्यकी धुरी टूट गई । स्तिलिचोकी सेनाएँ तितर-बितर हो भागी । गाथ लम्बार्दीके मैदानमे फैल गये । पो नदीकी प्रशस्त धारा भी उनके जलाये गॉवोकी आग न बुझा सकी । रोमकी अट्टालिकाएँ लपटोकी कल्पनाकर अपनी घोर जडताके बावजूद कॉप उठी ।

रोमके श्रीमान्, उसके सेनेटर और जेनरल, उसके सेठ-साहूकार मथ गये । आज सभ्य नागरिकोसे पाला न था, आज बर्बरता अलारिक-सा वज्र उछालती रोमपर चढी आ रही थी, और उसके सामनेकी भागती रोमन गॉवोकी भीड रोमकी प्राचीरोके सातो द्वार तोड चुकी थी । रोमके आकुल व्यसनी दक्खिनकी ओर भागे, सिसिली, कोर्सिका, सार्दीनियाकी ओर, समुन्दर पार कार्थेजकी ओर । कार्थेज अपनी झुलसी मीनारोसे रोम-का भावी सकट मन ही मन ऑक पुलक रहा था । रोमका वैभव कभी

उसका भी रहा था। उसके लाडले हैनिबलने कभी सागर लाँघ स्पेन जीता था, रोमपर कब्जा कर उसके मैदानोंमे लोहेसे लोहा बजाया था। पर उसके हारते ही रोमके जेनरलोने, स्कीपियोकी सेनाओने कार्थेजका वैभव धूलमे मिला दिया था, उसकी अपार सपत्ति लूट ली थी, उसके प्रासादोमे आग लगा दी थी, नहरोके अनुपम शिल्प कुचल डाले थे। नि सन्देह कार्थेजकी आँखे रोमपर लगी थी।

× × ×

रोमपर चील मँडरा रहे थे। मरे हुओ और घायलोकी सख्या सडको-पर बेइन्तहा थी। पर अभी तीन दिनोके लिए अलारिककी आज्ञासे सहार-कार्य रुका हुआ था। रोम अपने जीवनके लमहे गिन रहा था।

दूरसे आये गाथ लूटकी आशा दबाये शहरके बाहर खेमोमे पडे थे। रोमके अतुल वैभव, उसका अमित स्वर्ण, अभिराम वसन, अनुपम मोती उन्हे बरबस अपनी ओर खीच रहे थे। उसकी विलासिनियोका सौन्दर्य जगत् प्रसिद्ध था, गाथ-युवकोके चित्त उनमे लगे थे। सालोकी तृष्णा दबाये अमरपुरीके द्वार वे प्रतीक्षामे खडे थे कि कब अलारिकका प्रतिबन्ध हटे, कब वे अपनी चिर-सचित साधे, निर्मम अरमान पूरे करे।

साम्राज्यके दूत अलारिककी सेवामे आ उपस्थित हुए। कहा—हमे कुछ भी अदेय नही, स्वर्ण, धन, अन्न, जो चाहो माँग लो, हम दे देगे, पर रोमकी जिन्दगी बख्श दो। उसका सहार न करो।

अलारिकने सहारका हाथ रोक दिया। उसके मनमे कुछ उचक रहा था। किसीने न जाना, क्या? पर सुलहकी बातचीत उसने करनी स्वीकार कर ली। उसने कुछ माँगा भी रोमकी अमित सपदाके बदले, अमरपुरी के सख्यातीत नागरिकोके प्राणोके बदले। और उस माँगने सुननेवालोको चकित कर दिया।

बीस साल पहले अलारिक एक बार डैन्यूबके तटपर रोमनोका बन्दी हो गया था। जेनरलकी रसोईके पास ही वह बँधा पडा था। रसोईसे गरम मसालोकी गमक उसके भूखे नथनोको भर रही थी। रसोइयेने उस-पर तरस खाकर, उसके जीवनपर काल मँडराता जान, उसे राजाओका वह अलभ्य आहार दे दिया था। और तभीसे वह भारतीय मसाला अला-रिकके अरमानोका इष्ट बन गया था।

रोमके श्रीमानोसे उसने माँगा—नगरकी रक्षाका मूल्य है १५०० सेर गोल मिर्च।

गोल मिर्चकी कीमत सुवर्णसे कही अधिक थी। सोनेके दीनार तिजो-रियोमे भरे पडे थे, साम्राज्यके प्रान्तोसे आये रत्नोकी बेशुमार दौलत खजानोमे गँजी थी, पर भारतीय काली मिर्चकी कीमत असाधारण थी। फिर इतनी मात्रा उस अलभ्य पदार्थकी कहाँसे आये ?

पर जीवनका मोल सबसे ऊँचा होता है। श्रीमानोने जन-जनकी रसोई छानी, सिनेटने नई घोषणाओसे मिर्च रखना प्राणदण्ड द्वारा दण्ड-नीय घोषित किया। नागरिकोकी रसोइयोसे, दुकानोसे, रोमके बन्दरमे खडे जहाजोसे वह भारतीय अलभ्य वस्तु इकट्ठी कर ली गई। १५०० सेर गोलमिर्च तुरन्त प्रस्तुत हो गई।

अलारिक और उसके सामन्त उस काली राशिको आँखे फाड फाड निहारते रहे। वह साथ सैनिकोकी बलवती लूटकी तृष्णाका मूल्य थी, रोमके प्राणोकी कीमत। अमरपुरीका सकट टल गया।

परमारका बन्धन और मोक्ष

बात करीब हजार साल पुरानी है। तब मालवामे, परमारोका सूरज तपता था। परमार भी, प्रतीहारो चौहानोकी ही भाँति अग्निकुलीन क्षत्रिय थे, जिन्होने अन्यत्रसे आकर, हमारी धराको अपना पौरुष भेट किया था। मालवाकी वसुन्धरा परमारोकी कीरतिसे उमँगी। सीयक-हर्ष, मुज, सिन्धुल, भोज, एक-एक कर उसके स्वामी हुए, एक-एकका वैभव मालवाके आकाशमे छाया, उसके यशका आलोक बना।

मालवाकी भूमि शस्य-श्यामला है, अन्नराशिप्रभवा, जिससे उसने प्राचीन कालसे ही जातियोको अपनी ओर खीचा है। रावीके मालव, सुह्मके शक, गोरके पठान, सभी बारी-बारी उसे भोगते रहे है, सभीने उसके वनो-मैदानोका सुख जाना है। उसकी-सी साँझ कही नही होती, उसकी-सी स्निग्ध कही रजनी नही होती।

उसी मालवाके लिए, दक्षिणके राष्ट्रकूट और उत्तरके प्रतीहार, सदियो एक-दूसरेसे टकराते रहे थे—उसकी प्राचीना उज्जयिनीके लिए, उसकी मण्डपिका, धाराके लिए, और पश्चिमी जगत्से सागरकी राह आनेवाले उसके सौदागरी मालके लिए। इन्ही रजवाडोकी टकराती तलवारोसे एक दिन एक चमक निकली, जिसने बादमे दिशाओको अपनी चकाचौधसे भर दिया। वह चमक परमारोकी थी—सीयक-हर्षकी, मुजकी, सिन्धुल और भोजकी।

कहानी मुज की है और यह बस कहानी ही नही है, इतिहास है, बेतवा-सिप्राकी धारा-सा निर्मल, विन्ध्यकी पर्वत-मेखला-सा व्यापक, अचल। दसवी सदीके बीच सीयक-हर्ष, अपने प्रभुओकी सत्ता मालवासे

उखाड, देशका नायक बना और राष्ट्रकूटो-हूणोसे मालव लक्ष्मी छीन, उसने उज्जयिनी, माडू, धाराको एक कर लिया। मुज उसीका पुत्र था, पितासे कही महान्, कही मतिमान्, कही सूरमा।

मुज जब पिताकी गद्दीपर बैठा, तब मालवाके वन-प्रान्तर, उसके गिरि-गुहा, खेत-खलिहान, नये धनसे अघा रहे थे। प्राचीना उज्जयिनीकी छाया-मे माडूके पर्वतोके अचल महलोसे भर गये, धाराकी धरा सरोवरोसे सँवर उठी। मुजसागर आज भी धाराका विशद सरोवर है, जिसकी शीतल वायुने राजा भोजके महलोको भरा था। मुज स्वय कवि था, अभिराम गायक, और दूर-दूरसे कवि और पण्डित सरक्षाके लिए उसके दरबारमे पधारे। भट्ट-हलायुध और पद्मगुप्त, धनिक और धनञ्जय अपने ज्ञानका सौरभ उज्जयिनी और धारामे लुटाने लगे।

उसी मुजकी कहानी है, उसके अन्तकी कहानी। चालुक्योको परमारो-का मालवाकी स्वर्णभूमिपर यह उठता ऐश्वर्य सह्य न हुआ। उन्होने उनकी उभरती शक्तिका परिचय न पाया था। वे मालवापर चढ आये। उसके खलिहानोको अबतक वे लालसासे, दूरसे देखते रहे थे। अब वे उसके सीमान्तपर उन्हे लूटने लगे। मुजका इन्द्रासन डोला, उसकी तलवार म्यानसे निकल पडी। और एक बार जो वह म्यानसे बाहर निकली तो फिर उसमे लौटी नही, शत्रुओपर आग बरसाती रही। चालुक्योके धावे फिर तो अतीतकी कहानी बन गये। पर मुजकी खड्ग-धारा फिर न रुकी, चालुक्योकी ओर सालो-साल बहती ही रही। उनके राजा तैलप द्वितीयको उसने बार-बार हराया, बार-बार बन्दी किया। बन्दी कर-करके छोड दिया।

पर एक दिन, वह स्वय तैलपके जालमे जा फँसा। रानियोने मना किया, मन्त्रियोने मना किया, मुज नही माना। उसने कहा—'नित्य युद्ध ठाननेसे अच्छा है एक बार ही चालुक्योके आधारको नष्ट कर देना।' फिर तो चालुक्योकी राजधानी वातापी उसकी आँखोमे खटकने लगी और

श्रीवल्लभ मुज तैलपके राज्यमे धँसता चला गया। इस बार उसका तैलपपर इतना क्रोध था कि उसे अपनी सेनाके पीछे छूट जानेकी भी सुधि न रही और वह वेगसे अपना घोडा बढाये अकेला आगे निकल गया। गोदावरीकी चौडी धारा सामने थी, सेना ठिठकी, मुजने स्रोतमे घोडा डाल दिया और तैरकर गोदावरी पार हो गया।

गाँव-नगर लाँघता, मजिल-पर-मजिल लाँघता, मुज जब वातापीसे कुछ ही दूर रह गया तब उसने जाना कि उसकी रसदकी राह कट गई, कि गाँव, जो अबतक निरीह जान पडते थे, सहसा सचल हो उठे है, कि राहके गाँवोसे अन्नराशि गायब कर दी गई है। मुजने सेनापतिकी ओर देखा सेनापतिने सचारककी ओर। दोनो निरुत्तर थे। मुजने अब अपनी गलती समझी।

तभी तैलपकी सेना उमडती सामनेकी ओरसे आ पहुँची। मुजने अपनी हरावल तैलपकी सेनापर झोक दी। तैलपकी सेना पीछे हटी, हटती गई, मुज उसके पीछे चला। तभी सहसा दाहिने बाजूपर हमला हुआ, मुज दाहिने घुमा। उधर सामने भागनेका नाट्य करती, शत्रु-सेना लौटी और उसने मुजके बाये बाजूपर चोट की। तभी मुजके पीछे, सामने, दाये, बाये, चारो ओरसे हमला हुआ। न जाने कहाँसे, जमीन सेनाएँ उगलने लगी। मुजकी हरावल टूट गई, उसकी सेना चूर-चूर हो गई। अब जो उसने अपनी बची टुकडी लिये तैलपकी सेनाके बीचसे निकल जानेका उपक्रम किया तो चालुक्य सेना यन्त्रकी भाँति सहसा फट गई, और मुजके अन्तरालमे प्रवेश करते ही वह सिमट आई—जैसे पृथ्वी फटी और उसे अपने उदरमे ले पूर्ववत् बराबर हो गई। वाक्पति मुज बँध गया। पौरुष असहाय, मूढ हो गया। शौर्य ताकता रह गया, कौशलके नागने, अपने हजार पाशोमे उसके अग-अग निस्पन्द कर दिये।

वातापीके महलोके पीछे, वेणुवनकी सीमापर, वह कारा थी, जिसमे

अमोघवर्ष वाक्पति मुज श्रीवल्लभ बन्दी था। बन्दी कभी वाक्पतिके विरुद गाते थे, दक्षिणापथके राजा कभी उसके प्रसादके लिए अपनी मुकुट मालाओकी मकरन्द उसके चरणोपर बखेरते थे, आज वही मुज दूसरोका बन्दी था, किरीटहीन, अनुचरहीन।

जब चालुक्यराज तैलप उसपर अपने व्यग-वाण छोडने आता, तभी कारा एकान्त पदोकी चापसे, वैतालिकोके आलोक-शब्दोसे मुखरित होती। वह अकिचन शत्रुकी मर्मको छेद देनेवाली बाते चुपचाप सुनता और चुप रह जाता। पिजरेका व्याघ्र जैसे पूँछसे मूँछ तक क्रोधसे हिल जाता, पर अचल चुप खडा रहता, बेसुध-सा।

उसके भाग्यहीन एकान्तमे बस आशाकी एक ही क्षीण रेखा बची थी। वह रेखा भी कुछ अपने उद्योगका आलोक न थी, विधिकी आँकस्मिक विडम्बना, जिसे अन्धकारगत राजाने अपना आलोक माना। आशाकी वह रेखा थी तैलपकी कन्या 'रेखा'।

रेखा आपादमस्तक सौरभकी एक घूँट थी, रागकी मोदमयी श्रृखला। जब वह मण्डन करती तब उसके रूपका जादू प्रसाधिकाओको चकित कर देता। हाथोमे तूलिका लिये, वे खडी रह जाती। उनकी काँपती उँगलियाँ तूलिकाको अपदस्थ कर देती। स्थितिकी जानकार रेखा स्मित हाससे चमक उठती, ठमकी-ठगी प्रसाधिकाओको अमृतवाणीसे आश्वस्त कर देती। और मण्डनके अन्तमे, जब वह दीर्घकाय अनिन्द्य दर्पणके सामने खडी होती तब जैसे दर्पण पर झाई दौड जाती। ऐसी थी वह रेखा।

और वही रेखा मुजके मानसकी एकान्त स्वप्न थी। राज छूटा, रनिवास छूटा, वैभव और विलास छूटे, पर रागकी एक रेखा रेखाकी ज्योतिसे चमक उठी। पहली सन्ध्या गोधूलिके धुँधलकेमे जब रेखा चुपचाप काराके द्वार खडी हुई थी तब मुजका अन्तर-बाहर प्रभापुजसे भर उठा था। असत्यमे सत्यकी कल्पना साकार करने वाला कविराज मुज तब जैसे यथार्थ

को भी स्वप्न मान बैठा था और उसके मोहका बन्धन तभी टूटा था जब रेखाने विकल वाणीसे कहा था—'अवसादमे एकाकी नही हो, राजन्, मौनके नीरदको मुखर मानो'।

और तब चकित निस्पन्द राजाकी मोहविजडित काया यह जाननेके लिए झकझोर उठी कि सावधि सत्य है या भाव-जगत्का स्वप्न, और तभी वाणी फिर सुन पडी थी—

'चालुक्यराजकी रेखा हूँ, राजन्, तैलपकी नन्दिनी, कन्या। स्वप्नको सत्य करने आई हूँ, देखो !'

और मुजने मस्तक उठा दिया था, कहा था—'अभिराम कल्पने, स्वागत ! हाँ, आई याद। देखा था, देखा था तुम्हे, देवि, महलके उस जनसकुल द्वारके अलिन्दपर, जब सारा महल मुझ पकडे-जकडे जन्तुको देखने दौड पडा था। देखा था, कोमल वर्तिकाकी स्निग्ध लौ-सी तुम सबसे अलग खडी थी, सबसे निराली, भिन्न। पर, देवि, अब राजन् कह कर मेरा उपहास तो न करो !'

'राजा अमित सज्ञा है, देव। मोक्ष और बन्धनसे उसका कोई सम्बन्ध नही। सूर्यके शालीन घामकी भाँति उसका स्पर्श सब पा सकते है पर उसे कोई पकड नही पाता, बाँध नही पाता। फिर भी निराश न हो, राजन्, जीवनकी घडियाँ अनन्त शेप है और अभी उज्जयिनी-यात्राका प्रबन्ध करके आई हूँ।' रेखाने वेगसे कहा था।

फिर राजाकी सालस वाणी धीमी फूट पडी थी—'नही, देवि, नही। वह लालसा अब तज चुका हूँ। उज्जयिनीकी राह अब विस्मृत हो चुकी है। जानता हूँ, मालवा भी अब अपने मुजको भुला चुका है। अब इस कारासे कही जानेकी इच्छा नही, कुमारी !'

'उज्जयिनी आज भी वातापीकी राहपर पलक बिछाये पडी है, राजन् ! मुजका रनिवास विकल अपने आराध्यकी प्रतीक्षा कर रहा है।

आज भी मालवाके कवि और गायक पदके लालित्यको कठमे रोके निस्पन्द खडे है। जाओ, वाक्पतिराज, जाओ, अपने महलोकी ओर! अपनी मूक भारतीकी सरक्षित सम्पदाकी ओर जाओ! द्वारकी ओर, उन घनी झाडियोके पीछे, वेणुवनकी झुरमुटसे लगा तुम्हारा अश्व खडा है। देर होनेसे सकटकी सम्भावना है।'

'ना, देवि,' तब मुजने कह दिया था, 'अब मोक्षकी कामना नही। सिन्धुलका पुत्र भोज भारतीका अनन्य उपासक है, काव्यासक्त तरुण, अक्षय नादका विज्ञाता। 'भारतीकी सरक्षित सम्पदा'की ललित साधना अब वही करेगा। मेरे रेखाकित मर्मको अब कही अपनी परसकी परिधिसे दूर न भेजो, भगवति!'

और चुपचाप अपने स्निग्ध करको बोझिल मनसे रेखाने, मुजके मस्तकपर फेर दिया था। फिर सन्ध्याके गहराते झुटपुटेमे वह अपनी गतिहीन काया लिये चली गई थी। पुलक उसकी फिर लुप्त हो गई थी। रोमराजि प्रकृत सो गई थी।

पजरपर अब अपना बस न रहा था। चन्द्रमाको देख जैसे सागर अन्तरसे आन्दोलित हो उठता है, जैसे उसकी वेलाएँ शशिकी कोमल मरीचियाँ चूमने उचक पडती है वैसे ही रेखाका क्रन्दित अन्तर मुजकी ओर रह-रहकर लपक जाता, वाणी बोलती-बोलती सहमा निस्पन्द हो रहती।

× × ×

ऋतु-चक्र समाप्त हुआ। मुजको सुधि तैलपको आई, जब उसने जाना कि कन्याकी ममता शत्रुके मर्मसे बँध गई है। अपने ही अन्तरगको इस प्रकार विद्रोह करते देख वह खिझ गया। उसने सोचा था कि एक बार मालवराजको बन्दीकर फिर वह उसे न छोडेगा। उसने यहाँ तक सोचा था कि अगले वसन्तोत्सवसे वह मुंजको एक महल दे वहाँ कवियोका दरबार किया करेगा। पर कन्याके इस आचरणने, मुजके इस व्यापक

आकर्पणने, उसे क्षुब्ध कर दिया, और उमने उसके विनागका निश्चय कर लिया।

और एक दिन जब मदमाते गजोके मस्तकसे मद चू रहा था, अपने हथिसारसे तैलपने सहारक दिग्गज चुन लिया, कज्जलकूट पर्वत-सा विगाल गजराज। वातापीके महलोके विस्तृत प्रागणमे, प्रजाकी दर्शन-भूमिके आगे, जहाँ बनैले जन्तुओके युद्ध राजपरिवार देखा करता था, वही तैलपके इशारेसे उसके महावतोने उस गजराजको विच्छृङ्खल कर दिया।

मुंज आँगनके छोरपर चुपचाप अप्रभावित निरावेग खडा था। महावतके अकुशसे बिधा गजराज आगे बढा। बढता चला गया। उसका सूँड वायुसे तरङ्गित गुजलक भरता जा रहा था। मुज निश्चेष्ट निरवलिप्त खडा था, विमन, भावहीन।

गजराज सहसा मुजके सामने ठमक गया। अपनी छोटी आँखोसे उमे निहारता जैसे गुनने-सा लगा। महावतने उसे अकुश मारा, उसने मुजको सूडमे लपेट, उठा लिया। जैसे अहिपुच्छ वृत्रकी गुंजलकमे कभी इन्द्र बँध गया था, जैसे कालियकी कुडलीमे कृष्णकी काया कभी कस गई थी, वैसे ही गजराजकी सूडकी सर्पिल गुजलकमे भरा मुज अधरमे लटका था। सहसा गजने मुजको धरापर उतार दिया और गुजलक भरता एक ओरको मुंजसे विरत-सा मुड गया। मुज पूर्ववत् खडा था, मूक विरक्त।

महावतने क्रोधमे भर राजाके कोपसे सत्रस्त गजको अकुशकी चोटसे बेदम कर दिया। गजको उसने घुमाकर फिर मुजके सामने कर दिया। गज चोटसे व्याकुल बढा और बढता चला गया। मुजकी काया सहसा भूलुण्ठित हो गई। दर्शक जनतासे एक अमानवी चीख़ निकली। तैलपकी विकृत मुद्रा और भी विकृत हो उठी। तभी उसके पासके आसनसे कन्याकी काया नीचे लुढक पडी ''नि शब्दा। रेखा फिर न उठी।

दिद्दा

दहकते अगारमे शबनमकी शीतल बूँद। लपकते शोलेमे बरफकी रवानी। सो ही थी दिद्दा, कश्मीरकी रानी।

शालीनताका वैभव और रूपका सौरभ यदि किसीको एकत्र देखना हो तो वह कश्मीरकी घाटीमे ललितादित्य मुक्तापीडकी विजयोको अपने कृत्योसे विस्मृत करा देनेवाली दिद्दाका चरित पढे। पूरबकी तीन प्रसिद्ध रानियोमे उसकी गणना है। मिस्रकी शुजरुद्दरने क्रुसेडोकी लडाईमे इग्लैण्डके सिह-हृदय रिचर्डको बन्दी कर लिया था, रजियाने पहली बार दिल्लीके तख्तपर नारी होकर अधिकार किया। और यह दिद्दा थी, दोनोसे शक्ति और मेधामे महत्तर, दोनोसे प्राय दो सौ वर्ष पहलेकी। आधी सदी तक उसने दसवी सदीमे, कश्मीरकी खुशनुमा घाटीपर अधिकारका शासन किया—पुछसे जम्मू तक, दरदोके देशसे लद्दाख तक—पहले पतिकी स्वामिनीके रूपमे, फिर पुत्रोकी अभिभाविकाके रूपमे, और अन्तमे स्वय अपने अधिकारसे। कराकोरमसे पीर पजाल तककी चोटियोपर आज भी रानीकी सख्ती और तेजका साया है, आज भी सिन्धु और झेलमकी ऊर्मियोमे उसकी भवोके बल है।

शाहिय राजा भीमकी वह धेवती थी, बेटीकी बेटी, पुछके लोहर-राजकी दुहिता। ब्याही गई वह कश्मीरके राजा क्षेमगुप्तसे, जब डामरों और ब्राह्मणोके कोलाहलसे घाटी गूँज रही थी, जब उनके रक्तपातसे वितस्ताकी धारा लाल हो उठती थी। पर उसके अधिकार सँभालते ही डामर बरामुलाकी ढालोमे उतर गये और ब्राह्मणोने शस्त्र रख स्रुवा सँभाली।

शाहिय कभी काबुलके राजा थे। हिन्दुकुशकी चोटियोंसे उनके सन्तरी प्राचीन सप्तसिन्धुके हरे-भरे खेतोंकी रखवाली करते और ईरानके शाहों तथा आमूपारके बलखके तुर्कोंकी गतिविधि देखते। शाहियोंका इतिहास भारतीय संस्कृतिके भेदका इतिहास है। विदेशी किस प्रकार देशके सवर्ण नेता, क्षत्रिय-ब्राह्मण, बनते हैं, यह उस कुलके चरितसे प्रगट है। कभी उनके पूर्वजोंने शकोंके रूपसे दजला-फरातकी घाटीपर राज किया था, बाख्त्रीपर भी, सीस्तान और भारतपर भी। राष्ट्रीय जागरणकी लहरमें गुप्तोंने शकोंको देशसे निकाल बाहर किया। शक-मुरुण्ड तब काबुलकी घाटीमें, हिन्दुकुशकी ढालपर बस गये और सदियों भारतके सिंहद्वारकी उन्होंने रक्षा की, देशभरमें कृतघ्न देशी राजाओंकी शत्रुताका बदला उन्होंने देशकी द्वार-भूमिको अपने रक्तसे सींचकर दिया। एक बार वे ब्राह्मण हुए, दूसरी बार क्षत्रिय कहलाये, पर अपने कुलनाम 'शाहिय' में उन्होंने प्राचीन कुषाणोंकी उपाधि 'शाहिशाहानुशाही' जीवित रखी।

अभी भारतके आक्रान्ता गजनीके महमूदके पिता और अलप्तगिनके गुलाम तुर्क सुबुक्तगिनका पता भी न था, स्वयं अलप्तगिनका भी पता न था जब शाहियोंका साका सिंधु और काबुलकी घाटियोंमें चलता था। चित्राल और यूसुफजई, काफिरिस्तान और लमगान तब उन्हीं शाहियोंकी तलवारके साये थे।

और तभी पुंछकी बेटी, शाहियोंकी नतिनी, दिद्दा एक दिन नाना भीमके काबुली कोटमें पहुँची। कितने ही निदाघ, कितने ही पावस उसने उस कोटमें बिताये थे पर अबकी सर्दियाँ थीं, काबुलकी सर्दियाँ, जहाँकी बरफानी चोटियाँ सुमेरुके देवताओंकी पताका-सी लगतीं, जहाँसे लगता शाहियोंने अपनी कीर्तिकी नसेनी स्वर्गपर टिका दी है।

दिद्दा किशोर और यौवनकी सन्धिपर थी। तन भर चला था। जवानीने पहली छलांग ली थी और भवोंमें कामने अपनी कमान खींच ली थी। मोहराग बोझिल पलकोंके नीचे कोयोंके श्वेत-श्यामकी सन्धिमें जा

बसा था। शाहिय तरुण शौर्यके धनी थे। प्रभातीकी लालीमे जब वे अपने पहाडी घोडोपर चढ, हाथोमे भाले तौलते, कटिकी तलवार रिकाबमे लटकते पैरके पजेसे उछालते, पीठपर तरकश बाँधे, कन्धेसे धनुष लटकाये सीस्तानके बियाबामे, बलखकी हरियाई क्यारियोसे, पामीरोकी आडसे, आते शत्रुके रिसालोपर टूटते तब दिद्दा अपने घोडेपर सवार, पेशानीपर बल डाले बागडोर बाये कन्धेमे टिकाये, सीनेपर बाजू बाँधे चुपचाप देखा करती और जब तक मुठभेडका वारा-न्यारा न हो जाता, दमकी बाढसे उसके नथने फूलते रहते।

शौर्यके धनी शाहिय तरुणोकी आन फिर भी उसे अपनी ओर खीच न पाई। उनके दल-के-दल उसके नेत्र-पथमे, उसकी दृष्टिकी परिधिमे बार-बार मँडराये, पर दिद्दाको वे एक आँख न भाये, उसके मनकी थाह न पाये। उनके स्वाभिमानी मस्तक झुके और फिर गये, उनके मन दिद्दाकी मेखलाका वृत्त परस-परस लौट गये, पर वह पुछकी बेटी न रीझी।

पर एक दिन स्वय दिद्दाका हृदय अनजाने तीरसे बिध गया। जाडोके दिन थे, नाना और शाहिय सरदार कोटके गरम कमरोमे जा बसे थे। सेनाओने बर्फकी वर्षासे भाग कर पथरीले स्कन्धावारोमे पनाह ली, तरुणोके परिकर खुले। चारो ओर शान्ति थी, नीरव शान्ति, जब हाथ-हाथ भर ऊँची गिरती बर्फ भी आवाज नही करती और जब हवाकी सर्दी भी निर्घोष जम जाती थी। दिद्दाने तभी कोटके बाहर जानेकी ठानी। पाँच सवार उसके दाहिने थे, पाँच बाँये, पाँच पीछे और दाये-बायेके सैनिकोसे कुछ आगे निकले भालेकी नोक-सी, अकेले ही हरावल बनाये स्वय दिद्दा चली।

सहसा दूर मध्य एशियाके मैदानोसे बह कर हड्डियोको हिला देने वाली सर्द हवा चली। दाँत बजने लगे। घोडोकी गति पहाडोपर वैसे ही हल्की होती है अब और भी थम चली। सैनिकोके कलेवरपर बँधे कम्बल

बर्फकी सफेदीसे धवल हो गये, उनके मस्तकके कुल्ह हिममे मण्डित हुए और सहजवीर हृदय कुछ थमे। दिद्दाकी कटि महीन कीमती शालमे बँधी थी, गरम शलवारके ऊपर सुनहरी वास्कट कसी थी और दोनो बाजू-कन्धोमे उतरती ऊनी पटकी छोरे काठीकी दिशामे दब गई थी। सुनहरे कुलहके नीचेसे अलके निकल हवामे डोलती कानोपर बिखर जाती।

आजका दिन शिकारका था, रीछोके शिकारका। पर दिन भयावना था, हिमकी मारसे पीडित सूरज भी जब भयसे कही बादलोमे छुप गया था। रीछके शिकार होते थे गजनीकी पहाडियोमे, गोरके जगलोमे, काबुलकी ऊँचाइयोपर। पर ऐसे दिनमे नही जब इन्सान जो बाहर निकले तो फना हो जाय। पर शिकार तो यह दिद्दाका था, अमरनाथ और गुलमर्गकी ऊँचाइयाँ लाँघने वाली पुछकी बेटी शाहिय भीमकी धेवती, कश्मीरकी भावी रानीका।

रीछ कन्दराओमे दुबके पडे थे। उनकी माँदे स्वय बर्फसे मुँद गई थी। वे बाहर निकले तो कैसे? और जो निकले भी तो शिकारीकी खैर नही।

बर्फकी बौछारे रुकी, जब आँधीका वेग रुका, और सहसा दिद्दाके घोडेको एड लगी और वह आगे सरका। साथके सैनिक पीछे छूट गये थे, यह दिद्दाने तब जाना जब रीछ पाससे तिरछे होकर निकल गया और कुमारीकी नजर उधर फिरी। दिद्दाने लौटकर भालेका भरपूर हाथ रीछपर मारा, पर, अचानक कावा काट कर, रीछ वार बचा गया, जख्मी होनेसे बाल-बाल बच गया। अब वह लौटा। घोडा भडका और उसने अल्फ ली। दिद्दाने तलवार दाहिने हाथमे ले ली थी और बायेसे वह घोडेका अयाल पकडे हुए उसकी गर्दनसे चिमट गई थी, पर रीछका धक्का जो अल्फ लेते हुए घोडेपर पडा तो वह अपनेको सँभाल न सका, गिरा, और सामनेकी उतारपर लुढकता खड्डमे जा पहुँचा।

दिद्दा गिरते घोड़ेसे कूद पडी थी पर वह अभी साँस भी न ले पाई

थी कि रीछ उसपर झपटा। तलवार उसके हाथमे थी, पर रीछकी चपेटमे वह अकस्मात् आ गई। उसकी तलवार टन्नसे टूट गई। दिद्दाकी जान पल भरमे लुट जाती, अगर रीछ एकाएक उलट न जाता। दिद्दाने जो नजर फेरी तो पास जगली खसको खडे पाया। खस खडा मुसकरा रहा था। उसकी पीठके ऊपर, कन्धोके सहारे पीछे एक भारी रीछ मुरदा पडा हुआ था, जिसके घावोसे लहू टपक रहा था। थके खसकी तरकश उसी बायी बॉहमे लटक रही थी जिसके कन्धेमे धनुप फँसा था और दाहिने हाथके भालेके—जो दिद्दाके रीछको बगलमे लगा था—न रहनेसे हाथ अब कटि पर आ गया था।

घायल रीछ भालेके साथ जिस्मको सँभालता लडखडाता उठा, पर दिद्दा उसकी पहुँचके अब बाहर थी, दोनोके बीचमे खस आ गया था। इन्सान और रीछ जूझ चले। युद्ध मरणान्तक था। एककी मृत्युसे ही दूसरेकी रक्षा सम्भव थी। द्वन्द्व घना हो गया, दिद्दा चुपचाप देखती रही वैसे ही जैसे बादलोका पट खोल सूरज भी वह युद्ध देख रहा था। दिद्दाने जो खसकी सहायताके लिए कटार निकाली तो खसने हाथ उठाकर उसे आघात करनेसे रोक दिया। फिर रीछको किनारे लगा वह दिद्दाके सामने घुटने टेक बैठा।

× × ×

युग बीत गये। खसको दिद्दा न भूल सकी। भीमकी वह धेवती लोहर पिताके पास पुछ लौटी। पुछसे कश्मीरराज क्षेमगुप्तकी प्रिया बन कर, श्रीनगरके रनिवासमे प्रधान महिषी बन कर, उसने प्रवेश किया, उसके पुत्र हुए पर भूल न सकी वह खसको। जब कराकोरमकी चोटियाँ बर्फसे ढक जाती, झेलमके तटवर्ती खेतोमे जब बर्फ बिछ जाती, डल-ऊलरकी झीलोके कमल-वन जब हिमपातसे झुलस जाते, तब कन्धोपर रीछ लादे स्वय घायल खस उसकी रीछसे रक्षाके उपक्रम करता दिद्दाके मानस पटल-

पर उतर आता ओर दिद्दा बेमुध-सी उस तरुण खसके शक्तिमीव तनको अपनी भावदृष्टिमे भरे घटो निहारा करती। उसे पता तक न था कि खस पुंछकी रियासतका नागरिक था, कश्मीरका, या शाहियोके राज्यका। उसने केवल हिन्दुकुशकी पोली बर्फपर खडे होकर बरसती बर्फके नीचे उसका नाम पूछा था और तरुण खसने उत्तरमे कह दिया था—'तुग'।

सो वह तुग था, तुंग खस। पर उसने न जाना कि वह दिद्दा थी, शाहियोकी नतिनी, लोहरोकी बेटी और वह मनमे दिद्दाकी मूरत बिठाये चुपचाप जगलोको चला गया था, किरातोके बीच, वह तुग खस।

एक दिन जब दिद्दा स्वामीके साथ श्रीनगरसे गिलगित जानेवाली राह-पर सेनाका निरीक्षण कर रही थी, अपना गुल्म (सेनाकी टुकडी) लिये तुग खस सामनेसे निकला। आज पहले मिलनके बाद पहली बार उसने दिद्दाको देखा था। पर उसे गुमान भी न था कि दिद्दा उसकी रानी होगी और वह उसका नाम तक जबानपर न ला सकेगा। चुपचाप अभिवादन कर वह सेनाके साथ मैदानसे निकल गया। उसने भी इन सालोमे किस्मत और लडाइयोके कितने ही मोर्चे देखे थे और अब वह दिद्दाकी सेनाके स्कन्धावारोमे रहने लगा था।

स्वय दिद्दाका पुराना घाव तुगको देखकर उभर आया। निर्वात दीप-शिखा-सी तुगकी मूरत उसके अन्तरमे बलती रही थी, अब सहसा पवनके सहारे जैसे वह भडक उठी।

दिद्दाने एक बार सोचा, शक्ति लगाकर उस धागेको तोड दे जिसने उसकी उन्नत भावभूमिको अकिंचन और हेयके साथ जकड रखा है, पर क्या कभी ऐसे धागेको कोई तोड पाया ? दिद्दा भी न तोड पाई उसे। दरदोकी पीठपर उसकी सेनाओकी चोट बनी थी, पजाबके उत्तरी किले उसकी चपेटोसे त्राहि-त्राहि करते थे, तिब्बतियोकी अगणित टोलियाँ उसके सामनेसे सिर झुकाये उपायन सौंपती चली जाती थी, कश्मीरके डामर-ब्राह्मण उसके कोपसे थर-थर काँपते थे, पर तुग खसका अस्पृश्य आकार

नित्य उसके हृदयाकाशमे उत्तुग होता जा रहा था। न तोड सकी वह अपना बन्धन। तुगकी मूरत उसके हियेमे जमकर बैठी।

एक रात जब प्रासादके पहरुओकी आँख बचा दिद्दाकी दासी तुगको रानीके पास ले गई तब रानीकी चिर सचित कामना पूरी हुई। तुग उपपति बना।

दिद्दाके पति क्षेमगुप्तका सहसा निधन हो गया। एकके बाद एक दो बेटे कश्मीरकी गद्दीपर बैठे और रानी उनकी बारी-बारीसे अभिभाविका बनी। शासनमे तुगका साहचर्य बना रहा। डामर अपनी तलवारे चट्टानोपर तेज करते रहे, ब्राह्मण पुरश्चरणका मत्रोच्चार करते रहे पर तुंगकी शक्ति सेनापर बनी रही, जैसे उसका राज भी दिद्दाके हृदयपर बना रहा। और दिद्दा, जो स्वय भी मनस्विनी और निरकुश थी, तुगकी अकशायिनी बनी रही।

× × ×

फिर युग बीते। पुत्रकी मृत्युके बाद दिद्दा अपने अधिकारसे रानी हुई, कश्मीरके राजसिहासनपर बैठी। काव्यकारोने अपनी रचनाओमे उसके उल्लासका सौरभ उँडेला, रसाचार्योने उसकी प्रेरणासे अपनी वाणी सरस की। दिद्दाका रस-कोष निरावृत था, रसिकोके अन्तर उससे आप्लावित थे, चारणोके कण्ठ सहजसिक्त। परन्तु रानीके उन्मुक्त विलासका धनी तुग था, सेनापति खस तुग।

एक रात जब रजनी चन्द्रविहीन थी, अमाका निशीथ सॉय-सॉय कर रहा था, दिद्दाने अपनी रोगशय्यापर करवट ली। पास ही बैठा तुग झपटकर और पास आ गया, शय्यासे लग बैठा।

दिद्दाने आँखे खोली, बडी, सरस आँखे, जो बुढापेमे भी सरस थी, मदरागसे रजित और अब आसन्न मृत्युके भारसे बोझिल।

'तुंग!', रानी बोली।

'देवि', तुग बोला।

'कहाँ हो, तुग ?'

"यही हूँ, देवि, चरणोमे ।"

"जा रही हूँ, तुग, तनको लीला समाप्त हो रही है। तुग जियो तुम्हारी ऊर्जस्वित् शिराएँ कभी शिथिल न हो ।"

"देवीके प्रयाणके बाद धरापर तुगके लिए फिर कुछ शेप न रह जायगा।" आँसू भरी आँखोसे दिद्दाको देखते हुए घुटने टेके तुगने भर्राये स्वरमे कहा—"आज्ञा करे, देवि, तुग चितारोहण करे या जल-समाधि ले ?"

"नही, तुग, देह धारण करो। मनमे विषाद न लाओ। मनकी गतिमे परे कोई धर्म नही, शास्त्रका कोई अनुबन्ध नही, मनको हल्का करो। देखो मेरे मनको जो फूलसे भी हल्का है, जो निर्विवाद, नि शक भवकी सीमाओ-को पार कर जायगा।"

और धीरे-धीरे रानीकी आँखे मुँद गई।

मैथिल कोकिल

उत्तर बिहारमे गगापार दरभगाका राज है। दिल्लीके सुलतानोकी कृपामे वह रियासत ब्राह्मणोको मिली थी। उसीसे लगी ब्राह्मणोकी बस्तियाँ है, मैथिल ब्राह्मणोकी। मिथिला उनका प्रधान केन्द्र थी और उसीसे उनका मैथिल नाम पडा। मिथिलाका जनपद अत्यन्त प्राचीन कालमे भारतके सास्कृतिक इतिहासमे प्रसिद्ध रहा है। पहले विदेह राजाओने फिर विदेहोके गणने वहाँ अपने यशका विस्तार किया, और पिछले कालमे मैथिल ब्राह्मणोने उस जनपदमे साहित्य और दर्शनकी भारती मुखरित की। मैथिल दार्शनिकोकी चर्चा दूर दक्षिण तक हुई और कहते है कि यदि वाचस्पति मिश्रने स्वामी शकराचार्यकी रचनापर अपनी 'भामती' टीका न लिखी होती तो शकरकी ख्यातिपर खासा परदा पडा रहता।

इन्ही मैथिलोमे कालान्तरमे एक बालक उत्पन्न हुआ जिसको उसके प्रेमियोने अभिनव जयदेव, कवि-कोकिल, मैथिल कोकिल आदि नामोसे पुकारा और जिसकी मधु-भारती इतनी अभिराम सजी कि पासके विविध प्रान्तोने उसे अपनी-अपनी भाषाका कविगुरु माना। वह बालक विद्यापति था।

विद्यापति था भी वह निस्सन्देह। क्योकि जहाँ उसके मडनसे कवि-भारती मडित हुई वहाँ 'पुरुष-परीक्षा', आदि ग्रन्थोकी रचनासे उसने ज्ञानके अन्य क्षेत्र भी भरे पुरे। उसके पद तो इतने मधुर है कि अनेक प्रान्तोके कवियोके आदर्श बन गये है और अनेक बार इतनी साधनासे लोगोने उसका अनुकरण किया है कि विद्यापतिके पदोको उनसे अलग करना कठिन हो गया है। जयदेवसे प्राय: डेढ सौ ही साल बाद होनेवाले इस अभिनव गुरुदेवने गेयतामे, पदलालित्य और कलाकारितामे, प्रान्तीय

भाषाओमे अपना सानी न रखा। हिन्दीका वह मधुरतम कवि है, मति-रामसे भी मधुर, रससे असाधारण आप्लावित। उसके पद और गीत विविध त्योहारोपर, विवाहादिके अवसरोपर पूर्वी उत्तर प्रदेश और समूचे बिहारमे गाये जाते है। उसी कवि-कोकिलकी कथा है यह, अभिनव जयदेवकी।

बागमतीके तीर बिसपी गाँवमे उसका घर था। पर जैसे खुली हवाको दिशाएँ नही बाँध पाती, वैसे ही उस बालकको उसके घरकी दीवारे नही बाँध पायी। लूके दिनोको छोडकर शेष सारे मौसम अधिकतर वह बागमतीके किनारे बिताता। उसकी लहरोमे बालकका मन बसा था, उसकी चचल लहरियोको देरतक वह निहारा करता और अनेक बार गर्मियोमे शरद्की आकर्षक सुषमामे तीर ही तीर चलकर हिमालयकी उस श्रृखलाके पास जा पहुँचता, जहाँ बागमतीकी धारा नेपालके पहाडोसे नि शब्द उतर पडती है।

बालककी नाद-माधुरी भी प्राय नि.शब्द ही थी। हाँ, उसकी भावभूमि निश्चय तरगोसे उद्वेलित होती और सुननेवालोके निस्पद प्राण सहसा व्यग्र हो उठते। विद्यापतिके पदोमे इतनी कोमलता है कि लगता है कि जैसे शब्दायमान होते ही परुष तार टूट जायेगे। अत्यन्त कोमल स्वरमे वे गाये जाते है, ऐसे कोमल कण्ठसे कि तारपर पहुँचते भी नाद विकृत न हो जाय। ऐसे कोमल पद रचनेवाला कवि स्वय मन और शरीरसे कितना कोमल रहा होगा, इसका अटकल सहज ही लगाया जा सकता है।

एक दिन जब वनप्रान्तर मधुमासके फूलोसे उमँग रहे थे, नदीका अचल वन्यकुसुमोसे चित्रित हो रहा था, आमोकी मजरियाँ भौरोमे उन्माद भर रही थी, उन्हे खा-खाकर कषायकण्ठ हो कोकिल प्रियाओको बरबस छेड रहे थे, इस बालकविने भी टेरा—

नव वृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव विकसित फल

नवल वसत नवल मलयानिल
मातल नव अलिकूल ।

वालक अब इतना बालक न था जितना कवि था। उसके मासल होठ-के ऊपर तारुण्यकी रेखा श्यामल हो चली थी। पौरुण, मधुर मदिर पौरुप, अभी अँगडाया ही था कि कविने शारदाको लजा देनेवाली वाणी गुनी और पञ्चमके आधार (कोकिल) को लज्जित करता उसने ऋतु-राजके नवागमनका अभिनन्दन किया।

पदके शब्द दिशाओमे भर चले, वायुकी अँगडाती पलकोपर उनकी अक्षय निधि बन चढ चले, उस ओर जहाँ अभिराम मतिमती शिवसिहकी रानी लखिमा देवी बजरेपर बैठी पतिके आपानकसे ऊब स्वच्छ वायु ले रही थी। वायुके पखपर चढी जब विद्यापतिकी पक्तियोने कानोका स्पर्श किया तब जैसे मदिरासे विरक्त मन भी इस नव-वारुणीके स्पर्शसे मद चला। तनमे हल्की सिहरन हुई, गात पुलक उठा, रोये खडे हो गये। राजाकी ओर रानीने सार्थक देखा।

"सुना, रानी, सुना।" राजा बोला।

"कितना मधुर था वह नाद, राजा!" लखिमा बोली।

कविने गीत दोहराया। कान जैसे सफल हो गये। अल्हड नादकी रागतरग जैसे रसकी रिमझिम करती सुनने वालोको सराबोर कर देती। रानीने बजरा उधरको बढानेकी आज्ञा दी जिधर रसका धनी कवि ध्वनिकी लहरियाँ उठा रहा था। बजरा जा पहुँचा निस्पद, नयनपथकी परिधिमे। दोनोने दोनोको देखा, देखते रहे। राजा दोनोको देखता रहा।

एक दिन बिसपीमे दरबारके दूत आ पहुँचे, राजा-रानीका सवाद लिये, हाट-नगरकी ब्राह्मणोत्तर सम्पत्ति लिये। कवि दरबारमे गया, अन्त पुरके महलोमे जहाँ उसकी नयी कविताओ, नये पदोके स्वर बहे। अब तक कवि

अपने काव्य-वैभवसे जनपदको निहाल कर चुका था, अब वह अपने स्वामी-स्वामिनीको निहाल करने वहाँ पहुंचा।

महीनो-सालो विद्यापतिकी रसधारा वहाँ बहती रही, राजा-रानीके अन्तरको प्रतिध्वनित करती रही। 'राजा शिवसिंह' और 'लखिमा रानी' के अनवरत स्पर्शसे पद चमक उठते। जानकारोने कहा कि पद इतने ललित न होते, जो उनको लखिमाके नामका स्पर्श न मिलता। विद्यापतिकी तरल रागिनी निस्सदेह लखिमाके कोमल भावतन्तुओको छूती थी, निस्सदेह टकराकर लौटी रागिनीसे कविका अन्तर प्रतिध्वनित होता था। धीरे-धीरे यह राग-कला जनपदकी कहानी बन गयी, धीरे ही धीरे राजाके भीतर सदेहका अकुर जन्मा। और एक दिन छलछन्दसे रहित राजाने जब छलछन्दसे रहित रानीसे पूछा, "प्रिये, मानस क्या स्वाधीन न रहा?" तब रानी बोली—"नही स्वजन, लगता है जैसे अन्तर कुछ आकुल है, सर्वतः सर्वस्व दे नही पाता। अपराधिनी हूँ, देव।" और राजा उसके उस मयत अपराधको भुला प्रियतर उपचारोसे प्रियाको भेटता जिससे उसके कोमल हृदयको स्वजनसे यह दूसरी ठेस न पहुँचे। एक उदार हृदय अनीतिके अपचारका मार्जन माँगता, दूसरा उदार हृदय अपराधको अपराध न माननेका आग्रह करता।

× × ×

दिल्लीका शासन सुल्तान गयासुद्दीनके हाथमे था। गाजी तुगलकने खिल्जियोके पतनके बाद हिन्दुस्तानकी हुकूमतकी बागडोर सँभाली थी और मगोलोसे देशकी रक्षाके लिए सीमापर किलोकी जजीर बाँध उत्तर भारतमे विशेष लोकप्रिय हो गया था। पूरबमे बगालकी सरहद तक उसके बेटे जौनाकी हुकूमत थी जिसने जौनपुर बनाया और जो बादमे मुहम्मद तुगलकके नामसे विख्यात हुआ। मिथिला भी तब जौनपुरके सूबेमे आई और दिल्लीके बादशाहको कर देना उसके लिए अनिवार्य हो गया। दिल्लीके

सुल्तानोको वह कर पहलेसे हो देती आई थी और दोनोके बीच शान्तिका यह कर ही एक मात्र प्रतिबन्ध था।

जनपदमे एक बार जो अकाल फैला तो कर दिल्ली न जा सका और शाही फौजे मिथिलामे उतर आई। शिवसिह कैद होकर दिल्लीके महलोमे पडे।

रानी पतिके अभावमे घुल चली। दिल्ली अनेक दूत भेजे, करकी सम्पत्ति निजी रत्नोसे पूरी की, परन्तु राजा न लौटा। सुल्तानकी सख्ती नरम न पडी। राजाके बन्धन ढीले न हो पाये।

रानीने विद्यापतिको स्मरण किया। विद्यापति आये। कविका हृदय मित्र राजा शिवसिहके बन्धनसे स्वाभाविक ही दुखी था। अब जो रानी-का बुलावा आया तो उसने करणीय निश्चित कर लिया। रानीके सामने जब कवि खडा हुआ तब स्थितिका उल्लेखकर रानी बोली—"कवि, विधाताने वैर किया, स्वामी बन्धनगत हुए। अब जो कवि कौशल करे तब कही वह बन्धन टूटे। दिल्ली जाओ—सुल्तानका कोप बडा है पर अनुरागका अचल भी उससे कुछ छोटा नही, और तुम्हारे रागवैभवकी परिधि तो उससे कही व्यापक है। जाओ, कुछ आश्चर्य नही जो सुल्तान रीझ जाय और लखिमाका राजा अपने महलोको लौटे।"

शान्त गम्भीर कविकी द्रवित वाणी धीरे-धीरे शब्दायमान हुई—"जाऊँगा, देवि, दिल्ली जाता हूँ। सम्भव है तुम्हारी आशा फले, सुल्तान द्रवित हो जाय। राग-ध्वनिपर तुम्हारा अनुचित विश्वास है, रानी, पर जायेगा, कवि, अकिचन कवि दिल्ली जायगा।"

"जाओ, कवि, वासवदत्ताके यौगधरायण बनो, मिथिलाका उदयन लौटे।" रानी आकुल हिया थामे बोली।

कवि नतमस्तक हो लौटा और चुपचाप चला गया। रानी हियेपर हाथ रखे जैसी की तैसी खडी रही। कवि उसका अन्तिम सबल था।

पृथ्वीराजके टूटे महलोसे कुछ ही दूरपर कुतुबमीनारकी छायासे कुछ पश्चिम हटकर तुगलकके बनवाये नये महल खडे थे। उन्ही महलोमे मिथिलाके राजा शिवसिह कैद थे। दरबार लगा था। सुल्तानसे कवि विद्यापतिके काव्यकी कथा कबकी कही जा चुकी थी और उसने कविको दरबारमे बुला लिया था। किसीने सहसा कह दिया कि मैथिल कवि आँखोसे परेके अनदेखे सौदर्यका अपूर्व वर्णन करता है। सुल्तानके मुँहसे सहसा निकल पडा—"सद्य स्नाता सुन्दरीका वर्णन करो।" कविने तत्काल गाया—

कामिनि करए सनाने।
हेरितहि हृदय हनए पँचबाने॥
चिकुर गरए जल धारा।
जनि मुख-ससि डर रोग्रए अँधारा॥
कुच-जुग चारु चकेवा।
निग्र कुल मिलिग्र ग्रानि कोन देवा॥
ते संका भुज-पासे—
बाँधि धएल उड़ि जाएत ग्रकासे॥
तितल वसन तनु लागू।
मुनिहु क मानस मनमथ जागू॥
भनइ विद्यापति गावे।
गुनमति धनि पुनमत जन पावे॥

(कामिनी स्नान कर रही है,। देखते ही कामदेव वाणोसे हृदय वेध देता है। केशोसे जलकी धारा चू रही है, मानो मुखरूपी चन्द्रमाके डरसे अन्धकार रो रहा है। उसके कुच-युगल सुन्दर चकवे है जिन्हे किसी देवताने उसे ला दिया है और इस शकासे कि पक्षी आकाशमे उड न जायँ कामिनीने अपनी भुजाओसे उन्हे बाँध रखा है। भीगे वस्त्रके शरीरसे सट जानेसे उसके अगागोकी सुन्दरता नग्न हो उठी है जिससे मुनिके मानसमे

भी कामदेव जाग उठे। विद्यापतिकी कामना है कि यह गुणवती रमणी पुण्यवान जनको प्राप्त हो !)

दरबारमे वाह ! वाह ! की ध्वनि तो निश्चय ही मुखर हुई परन्तु सुल्तानका मन भरा नही। उसने विद्यापतिको, कहते है, लकडीके सन्दूकमे बन्द कर कुएँमे लटका दिया। ऊपर एक सुन्दरी आग फूँकती खडी कर दी गई। कविको उसका वर्णन करनेको आदेश मिला। कविने गाया—

सजनी निहुरि फुकु आगि।
तोहर कमल भमर मोर देखल ॥
मदन ऊठल जागि।
जो तोहे भामिनि भवन जएबह ॥
ऐबह कोनह बेला।
जो ए संकट सौ जी बाँचत ॥
होयत लोचन मेला ॥

(सजनी तू झुककर आग फूँक रही है। तुम्हारे कमलरूपी मुखको मुझ भ्रमरने अब देख लिया है और मेरे अन्तरमे मदन जग उठा है। जो तू अपने घर गई तो, हे भामिनि, बता दे किस वेला लौटकर आयगी ? और मैं जो इस सकटसे बचा तब कही तुझसे आँखे चार होगी।)

राजा बन्धनमुक्त हो गया। कवि उसे लेकर मिथिला पहुँचा। दरभगाके सुखपर कविका ऋण वह न चुका सकी। दिन-दिन रात-रात उसने सोचा, क्या देकर वह अपना वह ऋण मोचन करे जिससे उसका गया हुआ एहवात लौटा। और एक दिन जब कवि दरबारके रसिकोका मन अपने गायनसे रससिक्त कर रहा था तब रानीको उसके प्रति विशेष अभिरुचि हुई। उसका आकर्षण जागा और बडी जुगतसे दबाया मन सहसा सात्त्विक स्वेदसे पिघल चला। दरबारके बाद फूलोसे लदी वासन्तीके नीचे सहसा रानी कविसे पूछ बैठी—"कवि, उपकृत अन्तर ऋण बोझिल है।

क्या करूं कवि, कि वह ऋण कटे ? फिर भी क्या तुम्हारे कियेका मोल चुका सकूँगी ?"

कविने शान्त मुद्रामे माँगी—मात्र एक सध्या, कौमुदी वितरित गगन-वितानके नीचे राजाके साथ नये पदका श्रवण। बस, इसके अतिरिक्त कवि-की कोई कामना नहीं, इससे परे उसकी कोई साध नही।

और एक रात जब सध्या पूनोकी चन्द्रिकामे दहक उठी थी, वायु माधवीके कुसुम परागसे मन्द महक रही थी, तभी वासन्ती कुञ्जके आगे कदली बाढोके बीच कवि अपनी वीणा लिये बैठा। सामने राजा और रानी बैठे। कविकी कटि मिरजईके निम्न भागसे दबी रेशमी उत्तरीयसे बँधी थी, मुक्ताहार सामने हिल रहा था, कानोके कुण्डल सचल थे, कन्धो तक कटे कुन्तल कुञ्चित हो बयारके हल्के स्पर्शसे हलके हिल रहे थे। कविने भाव-गद्‌गद हो मानव कण्ठमे विद्याधरकी ध्वनि भर गाया—

जनम अवधि हम रूप नेहारल
नयन न तिरपित भेल—

हियेका जुग-जुगका सजोया तरल ताप रागके सयोगसे अकल्पित बढ चला। और बह चली साथ ही लोचनोसे आँसुओकी धारा। और उस कविकी कहानीमे रानीकी कहानी भी जा मिली। उसके नयनोसे भी नीर बह चला था। उसी प्रकार दोनोके भावके धनी राजाके नेत्र भी भीग चले थे। कवि और रानीका भेद जनपदके रसिकोका उल्लास बना।

कनवाहेका मोर्चा

कनवाहेका मोर्चा । तुर्क और राजपूत । बाबर और साँगा ।

बाबर—जालिम तैमूर और खूख्वार चगेजकी औलाद । लासानी लडाका, कलमका बादशाह, सखी कलन्दर । बर्फ-सा रग, ऊँचा कद, फौलादी जिस्म । कॉखमे दो-दो जवान दबाये किलेके कोटोपर दौड जाये, राहकी नदियाँ तैर कर पार कर ले । रानके नीचे घोडा कुचल दे । नित्य अस्सी मील लाँघ जाय । बलख-बदख्शाँकी केसर-उमगती जमीनपर जमाने तक लगी आँखे, सीर-आमूकी तलहटीके खुशनुमा बागो, फरगना समरकन्द-के तख्तके लिए ग्यारहकी कच्ची उम्रसे पाँच-पाँच खूनी चोटे । फिर काबुल और हिन्दुस्तान ।

साँगा—गुहिलकुम्भाकी सन्तान । दिलेरीकी आखिरी टेक, साहसकी शपथ । तपाये ताँबेका रग, वज्र-सी कठोर छाती, साँचेमे ढला ऊँचा जिस्म । बदनपर अस्सी घाव गिनता था, एक भुजा नही, एक आँख नही । लडाईकी जिन्दगी, घोडेकी पीठपर आरामकी नीद । कौलका लामिसाल पक्का । धावे गढ माडूसे बहावलपुर तक, कालपीसे काठियावाड तक । चोट जो की तो दिल्लीका तख्त हिल गया, इब्राहिमको दो-दो बार पकडकर छोड दिया । मेवाड और दिल्लीकी हद जमुनाकी धारामे खीची ।

बाँकेसे बाँकेका मोर्चा था । फौलादने फौलादपर चोट की । भीर, लाहौर, पानीपत, दिल्ली और अब आगरेकी राहमे बाबर । साँगा अजमेर, जैपुर लाँघता उसकी ताकमे । बाबरने सीकरीके पास अपना डेरा डाला, राणा बियानेकी ओर बढा । बाबरके इशारेसे बाँका खुरासानी अमीर

राजपूती सेनाके पीछे पडा। राणाने जो फिरकर चोट की तो खुरासानी सीकरीके पडावपर ही जाकर गिरा। तुर्की फौजपर मातम छा गया।

राजपूती आनकी कहानी बाबरने सुनी थी, बाबरकी फौजोने सुनी थी। पानीपतके मोर्चेसे विजयी हो जब मुगल दिल्लीकी ओर बढा तभी भेदियोने कहा था, आगेका मोर्चा विकट है, साँगाका मोर्चा है, उन कबीलाई राजपूतोका जग जिनका गिजा, मौत जिनका सिरपेच है। तुर्की फौज सहम गई थी। अब जो खुरासानीने मीलो भाग सीकरीमे ही पनाह ली तब तो काटो तो लहू नही।

जगह-जगह मुगलिया फौजी पडावमे रम्माल रमल फेकने लगे, लडाई-का अजाम गुनने लगे। सितारे उलटे पडे, किस्मत बेरौनक। घबडाई फौजोने हथियार डाल दिये।

बाबरने देखा, मैदान बगैर लडे हाथसे निकला जाता है। पुरखा चंगेज जलालुद्दीनको खदेडता सिन्ध तक अनायास चला आया था। पुरखा तैमूर उत्तरी हिन्दुस्तान लहूलुहान कर गया था। कैसे उन्हीकी औलाद जगपरस्त बाबर बगैर लडे लौट जाये? ना, वह नही लौटेगा। उसकी रूमी तोपे, फिरगी तोपे, मार करेगी, आखिर नेजोकी उनके सामने क्या औकात! फिर आखिरी वक्तपर भला उसके 'तुलुगमे'को आज तक कौन रोक सका है? काफिर क्या रोक सकेगे?

पर चेहरा बेरौनक था। अपने ही लडे मोर्चे बच्चोके खेल-से लगने लगे। उजबकोके हमले उसके जाने थे, मगोलोके तुलुगमे उसके जाने थे, अफ़ग़ानोके जुझाऊ धावे भी, अपने तुर्कोंके जमे मोर्चे भी, पर यह तो कौम ही दिगर थी, इसका तो रवैया ही दूसरा था। घोडेकी पीठ इसका डेरा था, तलवार इसकी दौलत थी, मौतकी खोज इसकी आखिरी मजिल। बाबरने मीना और जाम फेक दिये, सोने और सुनहरे काँचकी शराब-भरी सुराहियाँ टूक-टूक कर दी। घुटने टेक दिये—"या खुदा, अबकी सम्हाल, फिर शराब नापाकके हाथ नही लगाऊँगा।"

जेहादके नारे बुलन्द हुए। इस्लामकी जीतोकी सौगन्ध खाई जाने लगी, शहीदोकी कुर्बानियोकी, गाजियोके हौसलोकी। फौजके सीनेमे नई जान आ गई—"जस, चाहे मौतका पजा जकड जाए, जस, चाहे जिन्दगी-का धागा टूट जाये।" सिपाहियोकी रगोमे नया खून दौड चला। बाबरने कुरान उठा लिया—"उठाओ कुरान शरीफ, कसम खाओ—नवीका झडा झुकने न देगे, इस्लामकी सफेद चादरपर हारका स्याह धब्बा न लगने पायेगा।" फौजने कुरान पाक छूकर कसमे खाई, जाती हुई हिम्मत लौटी, बाबरकी जानमे जान आई।

राणा अपने राजपूतोको लिये मजिलपर-मजिल मारता उडा आ रहा था। मारवाड, अम्बर, ग्वालियर, अजमेर, चन्देरीके रिसाले उसके दाये-बाये थे, पास-पीछे। बाबरने सीकरीमे ही मोर्चाबन्दी की, व्यूह रचा। नौरोज था, १२ मार्चकी तारीख थी। दाहिना बाजू चुने लडाकोसे भरा, बायाँ सदाके विजयी जवाँमर्दोसे, हरावल उनसे जिन्होने कभी दुश्मनको पीठ न दिखाई। सामने गाडियाँ थी, पाँच-पाँच कदमपर लासानी मार करने वाली रूमी और फिरगी तोपे, पहियोपर रखी विशाल तिपाइयाँ। रिसालोके धावे रोकनेके लिए तोपे चमडेके रस्सोसे जकड दी गई। तोपोका यह तरीका मध्य एशियामे भी नायाब था। यह रूमी (उस्मान्ली) तरीके की नकल थी। फारसकी लडाईमे उस्मान्लियोने इस मोर्चेका इस्तेमाल किया था। यह बोहेमियाके तोपचियोकी सूझ थी, जिन्होने पहले-पहल इसका इस्तेमाल जर्मन रिसालोकी बाढ रोकनेके लिए किया था।

सारा मोर्चा बाँध बाबर घोडेपर सवार दाहिने बाजूसे बाये बाजूतक दौड गया। आखिरी बार सिपाहियोको कसमे खिला, उनके दिलमे जोश भर लौटा, फिर सिपहसालारोको लडाईके कौल-तरीके समझा आगे बढा। फौज उसी मोर्चेसे दो मील आगे सरकी। उस्ताद अली कुलीके बन्दूकची तोपो और पैदलोके बीच चले, जिसमे उनके बीच सम्बन्ध टूट न जाए।

१५२७ की मार्चकी सोलहवी तारीख थी जब कनवाहेके मैदानमे दोनो

सेनाओका सामना हुआ। राणाने दम न लिया, न दम लेने दिया। मंजिलपर मंजिल मारता आया था, तोपोके मुँहमे दौड पडा। बारूद चीनने ईजाद की थी, पर उसका इस्तेमाल उसने महज आतिशबाजीमे किया। बन्दूक और तोपके जरिये उसका उपयोग पश्चिमने किया, यूरोपने, यूरोपीय तुर्को-रूमियोने, फिर हिन्दुस्तानमे बाबरने।

हिन्दुस्तानने ऐसी लडाई नही लडी थी, देखी न थी, सुनी न थी। इब्राहिम लोदीकी एक लाख सेना पानीपतके मैदानमे इसी नई लडाईका शिकार हो गई थी। हाथी फूटते गोलोके सामने, टूटते गोलोके सामने छिनभर न टिक सके थे, अपनोको ही रौंदते भाग चले थे। राणाने तोपो-बन्दूकोकी बात सुनी थी, उसके दिलेर राजपूतोने उनकी बात सुनी थी। सुनकर हँस दिया था। लडाईके मामलेमे उन्हे किसीसे कुछ सीखना न था। उनके भाले हाथमे हो, तलवारे म्यानमे, घोडेकी पीठ हो, कण्ठ शराबसे तर हो, आँखोके डोरे चडीके उस तरल प्रसादमे लाल हो, असवारके भी, घोडेके भी, फिर आ जाय सामने चाहे जम !

साँगा आया और बढता चला आया। राजपूतोकी लहर उठी, लहर-पर लहर लहराती तोपो तक चली जाती, फिर उठती और बिखर जाती। सवार घोडेपर, घोडा असवारपर। फिर भी माताकी छातीपर बेटोके मुण्ड गिरने लगते, अग-अग बिखर पडते, पर कही उफकी आवाज न होती, कही घायल पानी न माँगता, कराहता नही।

पर आग उगलती तोपे भी राजपूती धावेको न रोक सकी। मुस्तफाने जौनसारी फौजोपर रिसालोके धावे देखे थे, फरगनाके मैदानोमे उसने अपनी रूमी तोपोसे उजबकोके हौसले पस्त कर दिये थे, पर आज यह किनसे पाला था जिनपर गोलोका कोई असर नही, बारूदका कोई बस नही ? घटो लडाई चलती रही। तोपोके चक्के टूट गये, उनके चमडेके रस्से टूट गये, तुर्की फौजोका मोर्चा टूट गया, राजपूती बाढ न रुकी।

पर लडाई अब तोपोकी न थी। दुश्मन उनके मुँह अपने सीनेसे बन्द कर चला था। ऐसी लडाई इतिहासने न जानी थी। अब लडाई तलवारो-की थी। बाबर सारी राजपूती सेनाके मैदानमे आ जानेकी राह देख रहा था। आधीसे कही अधिक शत्रु-सेना उसकी तोपोकी आगमे स्वाहा हो चुकी थी। जो बची थी वह भयकर मार कर रही थी। तोपे बिखर गई थी, उनके मुँह फिर गये थे, बन्दूकची बेकार हो चले थे, उनके पास फायर करनेकी दूरी न थी।

अब बाबरने अपना हुनर दिखाया। 'रिजर्व' को इशारा किया। चारो ओरसे हजारो घुडसवार एकाएक उठे और बढते तूफानकी तरह मैदानपर छा गये। बाजूके रिसालोने सहसा राजपूतोपर पहियेकी तरह घूमकर पीछेसे हमला किया। यही मगोली 'तुलुगमा' था, ऐन वक्तपर बाबरने उसका इस्तेमाल किया था। राजपूती कतारें बिखर गई। जब तक तोप-चियो और बन्दूकचियोका सामना था उसकी रास न रुकी, पर अब उन्हे लौटकर पीछे लडना था। और घुडसवार हमलावर सेनाके लिए फिर जानेपर लौटकर लडना सम्भव नही होता। राजपूत घिर गये थे और अब जो चारो ओरसे उनपर मार पड़ी और वे लौटे तो मुस्तफा और उस्ताद अलीने अपनी तोपे फिरसे सम्हाली। उनके मुँह दुश्मनकी ओर फिरा दिये और विकटकी मार शुरू की।

अब राजपूतोने अपना खतरा देखा। उनका व्यूह कबका टूट चुका था। पर उनकी मार अब देखने ही लायक थी। बँधी व्यूहकी लडाई, कतारकी लडाई, जुमला लडाई होती है सामूहिक। उसमे सबपर समान चोट पडती है, सब शत्रुपर समान रूपसे चोट करते है। पर टूटे मोर्चेकी लडाई इकाइयोकी लडाई होती है जिसमे अकेली वीरताके सबूत मिलते है। यह समय उसी अकेली दिलेरीका था। न कोई पनाह माँगता था न कोई पनाह देता था। जहाँ-तहाँ जोडे लड रहे थे, अधिकतर लडाके बीचके

मैदानमे राजपूत ही थे, जो चारो ओरके नये रिसालोके निशाने तो थे ही, तोपोकी नई मारके भी लक्ष्य थे।

राजपूत झूम रहे थे। राणाने विकटकी मार की थी। उसके बचे सरदार उसके आगे पीछे भयकर मार कर रहे थे। अधिकतर तो खेत रहे थे। 'हर हर महादेव! जय एकलिग!' की गगन-भेदी ध्वनि अब मद्धिम पडने लगी थी। जब राणाको बचानेकी कोई राह न मिली तब सवारोने अन्तिम प्रयत्न किया। राणा चोटो और थकानसे चूर-चूर हो रहा था। उसकी सज्ञा लुप्त हो चली थी। तभी किसीने उसे अपने घोडेपर सम्हाला। फिर तो इन्सानी दिलेरीकी कुछ ऐसी कीरत कनवाहाकी उस जमीनपर लिखी गई, जिसका मिसाल दुनियाके इतिहासमे नही है।

राजपूतोने तोपोकी ओर रुख किया। उधरसे हमला केवल तोपोका था। अपनी अगली बाढे बलिदान करते राजपूत उन्हे लॉघ चले। बाबरने फिर तुलुगमेका हुक्म दिया। ख्वारिज्मी रिसाले घूमकर उधर बढे भी, पर साफ उनकी कतारे चीरते राजपूत राणाकी सज्ञाहीन देह लिये उनके बीचसे निकल गये।

अस्मतका ख़ून

पहाडी इलाका। घने जगल। जगलोकी गहराईमे माडूके विमल प्रासाद। मालवाके सुल्तानोका अजेय गढ। जमीन, जो सदासे सोना उगलती रही है, जिसने उपजकी इतनी इफरात दी है कि भोजके साहित्यिक सपने सच हो सके, कि उसके दानोकी परम्परा अटूट बनी रहे, कि ज्ञानकी लौ जलती रहे। उसी जमीनकी मिल्कियत कभी अफगानोके हाथ आई।

अफगान हिन्दुकुशके सायेमे सदासे अपनी आजादीकी रक्षामे सजग रहे है। जहाँ-जहाँ वे गये वहाँ-वहाँ उन्होने अपनी आजादीकी बेल रोपकर उसे अपने जिगरके खूनसे सीचा। मालवा जब उनके हाथ आया, उसकी कीमत उन्होने समझी, उसकी जमीनकी कीमतसे भी बढकर अपनी आजादीकी। उज्जैन पुराने काफिलोकी राहपर पडता था, राजमार्गपर, वहाँ पहुँचनेमे आसानी थी। राजनीतिक छीना-झपटी उसके लिए उसकी जमीनपर सदासे होती आई थी। खतरेसे बचनेके लिए अफगान अपनी राजधानी वहाँसे उठाकर पहाडो-जगलोके बीच गढमाडू ले गये।

उसी माडूका सुल्तान बाजबहादुर हुआ। बाजबहादुर राजा भोजकी परम्परामे था। भोजकी धराका स्वामी तो वह था ही, उसकी मानसिक सम्पत्ति भी उसने पाई थी। तलवार वह मजबूत मुट्ठीमे पकडता। मालवाकी आजादी उसके सारे अरमानोके ऊपर थी। अधिकतर समय उसका लडाईके मैदानोमे बीतता।

पर ललित कलाओमे उसकी विशेष अनुरक्ति थी, उनका वह अनुपम पारखी था, असामान्य कलावन्त। माडूके महलोमे प्रहत मुरजकी धीर-गम्भीर ध्वनि उज्जयिनीकी परम्परा बनाये रखती और माडूका यह अभिजात उदयन नगरके विलासियोका प्रतीक बनता, विलासिनियोका साध्य।

सितार और सारगी उसकी उगुलियोसे सार्थक होते, सगीतकी तरग उसके सुललित कण्ठसे लहरा उठती, और सगीतकी वाणीका वह स्वय सर्जक था, हिन्दीका वह अभिमानी कवि रूपमती-सा ही अनुराग-मदिर, भाव-धनी।

रूपमती स्वरोकी साधिका थी, स्वर-गर्विता, रूप-गर्विता, वीर नर्तकी, अनुपम गणिका। कुमारदास और कालिदासकी वारवनिताकी बात हमने सुनी है, उस परम्पराका बोध जन-कथाओमे सुरक्षित है, पर जो कोई उनकी सचाईमे सन्देह करे वह रूपमतीके अभिराम लावण्यको देखे, उसकी लासानी कलाचातुरीको, गायन-नर्तनके प्रति कभी बासी न होने वाले उल्लासको, और उसे मेघदूतके महाकालकी नर्तकियोकी साधना, भोजकी ललित सम्पदामे पली गणिकाओ और क्षेमेन्द्र-दामोदर गुप्तकी वारवनिताओ-का रूप-विलास, कण्ठ-विलास सब इस रूपमतीमे ही एकत्र मिल जायगा। उसका रूप, भाव-सौरभसे सयुक्त उसकी अनुपम काया, अनुरागके दर्पमे उन्नत उसका कोमल चिबुक काव्यकी रेखाओमे सदा उसकी स्मृति बनाये रखेगे।

रूपमतीकी वाणी भी बाजबहादुरकी भाँति ही अपनी थी। गेय पदोको दुहराना गणिका-जीवनमे उसे अमान्य न था, पर अपने ही बनाये पदोको जब वह तन्त्रीकी सहायतासे स्वर देती तब उसमे अधिकारकी गूंज होती, कोमल कल्पनाका भावसौरभ तब सुकम्पित वाणीको अभिमत निनाद देता चराचर मोह जाता।

एक दिन बाजबहादुर भी मोह गया। वसन्तका आगम था। आमोपर कोमल मजरियाँ डोली। उनके रससे कषाय कण्ठ कोकिलने मत्त हो मदिर प्रेयसीको चूम लिया। उपत्यकाके फूले अचलमे पहली बार बाजबहादुरने गन्धबसी मदिरा ढाली। तभी दूरका अप्सरा-विनिन्दक स्वर सुन पडा। स्वरलहरी ऊँची उठी, और ऊँची, पर स्पष्ट लहरीमात्र, शब्द-विरहित ध्वनिमात्र। बाज कुछ काल सुनता रहा वह स्वरका आरोहावरोह। रह-

रह कर स्वरित तरल कारुण्य उसे हजार हाथो खीचने लगा । बाज स्व
प्रेरक दिशाकी ओर चला ।

उसने देखा स्वर-लहरी तरगित करने वाली उद्देश्यहीन अभिसारि
स्वय रूपमती है । फूलोका सेज झरनेके किनारे पडा है । गावतकियेके सह
अधलेटी रूप पडी है । रागकी ध्वनि, जो अभी हाल गिरि-कुञ्जोको अप
करुण प्रतिध्वनिसे भर रही थी, अब मन्द पड गई है । दासियाँ चुप स
रही है । मोरपंख हल्के-हल्के झला जा रहा है । इसे उसकी कुछ आ
श्यकता नही, क्योकि यद्यपि शिशिर बीत चुका है, हवामे कुछ न
बाकी है ।

बाजको एकने देखा, पहचाना, पर रूपकी परिचारिका होनेसे कु
बोली नही । बाज़ खडा चुपचाप सुनता रहा । जब करुण रागकी प्रतिध्व
रुकी तब बाँदीने रूपका ध्यान बाजकी ओर आकर्षित किया ।

रूप उठी । बाये हाथसे ओढनी सँभालती दाहिनेसे सलाम करती व
झुकी । बाज पास बढ आया था, स्वागतके लिए झुकी गणिका तक ।

"कनीजके बडे भाग ! स्वागत सुल्तान आजम ! वसन्त मुबारक !" रू
बोली ।

"वसन्त मुबारक, रूपमती ! पर आज बहारके इस भरे मौसम
फूलो लदे काननके बीच यह करुणराग क्यों ?" बाज़ने मुसकराते हु
पूछा ।

"यह भी क्या बताना होगा, आला हजरत ?" आवाजमे दर्द थ
आँखोमे बेबसी थी ।

"मालवाका फूल-फूल तुम्हारी महकसे गमक रहा है, रूपमती । मे
भी अन्तर तुम्हारे सुरसे भरा है । क्या माडूके महल तुम्हारी आवाज
वचित रहेगे ? बाज़का कोना-कोना तरस रहा है, रूप । आबाद करो मे
सूनेको ।" बाँका तरुण अपना सरबस जैसे हथेली-अंजलीमे धरे खडा थ
बदलेमें मात्र अनुराग माँग रहा था ।

दोनो दोनोको जानते थे। दोनोके मानसमे एक दूसरेकी एकान्त कामना थी। रूपमती बाजबहादुरके हरममे जा बसी। हरमका अनन्त वृत्त सकुचित होकर रूपमती और बाजबहादुर तक ही रह गया।

रूप और बाज दोनो गायक थे, दोनो कवि। उनके विरचित पदोमे भाव रूप धारण करता, शब्दरूप, जिसे तन्त्री निनादितकर चराचरको मुग्ध कर देती। गणिकाके पद-विन्यास अब माडूके महलोको झकृत करते। पर गणिका अब गणिका न थी, सतीकी निष्ठाका मूर्तिमान रूप थी। बाजका विलास अब परिधि पा गया था। उसका सहज व्यभिचारी मन सर्वत्रसे खिचकर रूपपर एकाग्र हो गया था।

अनेक बार महलका कोलाहल उन्हे उद्विग्न कर देता। अनेक बार वे चाहते कि उनके कानोमे सिवा उन दोनोके स्वरोके तीसरा स्वर न गूँजे। वे चुपचाप परिचर रहित घोडोपर सवार वनोमे निकल जाते। घोडोपर चढे मालस मुद्रामे जब उनकी वाणी निसर्गकी कोखसे उठती तब जैसे उसका रोम रोम खिल उठता। चितेरोकी तूलिका चित्रपटपर दौड पडती।

अहेरको निकले हुए जब दोनो वनोके अचलको पारकर मैदानमे आ खडे होते और सभीता हरिणी बेबस हो अपनी आँखे फैला धनुपपर बान चढाये बाजबहादुरकी ओर देखती, तब बाज उन आँखोसे अपनी आँखे फेर रूपकी आँखोमे डाल देता। दोनोको अपनी आँखोसे जैसे नापता अमिमीत लोचन। रूपकी आँखे अनुनय-सी करती कहती—"नही"। और बाज धनुप-पर चढा तीर उतार लेता।

जिस-जिसने रूप और बाजके प्रेमको जाना उस-उसने अपने प्रणयको उसकी मर्यादासे बाँधा। उनका प्रणय कवियोकी टेर बन गया, प्रणयियोके प्रणयकी सौगन्ध। शासन तक उस प्रणयकी मृदुता पहुँची। नीतिकी प्रख-रता मानवीयताके स्पर्शसे मृदु बन गई।

पर एक दिन कमलपर पाला पडा। रूपमतीकी ख्याति मालवाकी सीमाओको कबकी लाँघ गई थी। उसका बाजबहादुरके प्रति प्रणय भी

उसी प्रकार दूर-दूरके दरबारोंकी चर्चा बन गया था। गुजरात और काठियावाड, मेवाड और मारवाड, आगरा और दिल्ली, काबुल और फारस तक इस जोडेकी कहानी कही और सुनी जाती।

अकबरने भी सुनी पर उसका संयत मन इससे मथा नहीं, प्रसन्न-तुष्ट हुआ। पर उसीके सरदार आदमके मनमे रूपकी छाया घनी होती गई। उसे पा लेनेको उसका मन छटपटा उठा। रूप और बाजके प्रणय-चन्द्रपर आदमका राहु झपटा।

आदम खॉं अकबरकी धाय माहम अनगाका बेटा था। मातृरूपिणी माहम अनगाके लिए तरुण अकबरको कुछ भी अदेय न था। उसीके कहनेसे उसने अपने पिता-पितामहके सेवक मित्र खानखाना बैरमखॉंको बरबाद कर दिया था, अब उसीके कहनेसे उसके बेटे आदमको अकबरने मालवा लेने भेजा। आदमने मालवेपर चढाई की। लडाई दिन-रात होती रही। बाज-बहादुर केवल कवि न था, केवल तन्त्री ही स्वरित करना न जानता था। उसकी मुट्ठीमे तलवार पकडनेकी गजबकी ताकत थी और आत्मसमर्पण करना उसने कभी न सीखा था।

शत्रुकी सेनाएँ दिनमे किलेका परकोटा तोड देती, रातोरात बाज उसे दुरुस्त करा लेता। रूप बराबर घोडेपर चढी उसकी बगलमे बनी रहती। गढकी सेना उनको देख उत्साहसे भर जाती, लडाईकी मार दुगुनी हो जाती। पर यह कब तक सम्भव था कि मालवा मुगल साम्राज्यकी चोटे चिरकाल तक सह सकता, जब रणथम्भौर और बीकानेर, अम्बर और मारवाडके राजपूत उसके धीरजको कमजोर किये जा रहे थे। मालवाके सुनहरे खेतोको आदमके बर्बर सिपाही बरबाद किये जा रहे थे, उसके धनी गॉंवोको उजाडे जा रहे थे।

रूपमती पतिसे उलझ गई। "बाज, तुम जाओ", वह पतिसे बोली। "अन्यत्र शरण लो। बच रहोगे तो मालवापर फिर अधिकार कर लोगे वरना आज तुम न रहे तो मेरा सुहाग तो अलग, इस मालवाका सत्यानाश

हो जायेगा। तुम जाओ, राणाके पास। एक मात्र राणाका चित्तौड अपना सिरपेच उठाये हुए है। वही तुम्हे शरण दे सकेगा। वही आज आजादीके दीवानोका आसरा है।"

रूप यही नित्य कहती और बाजबहादुर नित्य पूछता—"और तुम ?" और रूप कह देती—"मै प्रजा हूँ, बाज। मेरा घर मालवामे है, मेरा स्थान मालवाकी प्रजाके साथ है, गढ माडूके लडाकोके साथ, और तुम्हारी अनुपस्थितिमे मेरी जिम्मेदारी रक्षाकी है। तुम जाओ, राजा, मालवाकी रक्षा करो।"

और बाज चुप रह जाता। उसका मस्तक बेबसीसे झुक जाता।

पर आज रूप चुप रह जानेवाली न थी। उसने बाजबहादुरको दुर्गमे न रहने दिया। सुरगसे दूर तक छोड आई। और बाजबहादुर नतमस्तक, सब कुछ हारा-सा मेवाडकी सीमाके वनोमे ओझल हो गया। रूपमती पतिके अभावमे माडूकी रक्षा करने लगी। उसके पास विरहके आँसू न थे, शत्रुको भून डालनेवाली आग थी। उसने दुश्मनके छक्के छुडा दिये।

पर माडूकी सेनाओका लडते रहना कब तक सम्भव था? दुर्गकी रसद कम होने लगी। भूखकी तपिशने वह किया जो चोटके दर्दने न किया था। सरदारोने गढ आदमको सौप दिया। मालवा मुगल सल्तनतका अग बन गया।

पर आलम मालवाके लिए नही आया था, न माडूके लिए। उसके दिलमे रूपमतीके लिए दरार पड गई थी। उसने आत्मसमर्पण करनेवाले सरदारोसे उसे माँगा। सारा हरम उसके सुपुर्द कर दिया गया। बाज-बहादुरकी बेगमे, रखैले, बाँदियाँ उसमे सभी थी। चोट खाई हुई नागिन-सी रूपमती भी।

पर चोट खाई हुई नागिन-सी। और अब-जब आदमने उसे आगरेकी-

रौनक, उसके ऐशकी बात कही, जब-जब उसकी दूतियोने रूपको फोडना चाहा तब-तब उसने उसे 'कुत्ता' कहकर पुकारा ।

अन्तमे जब एक दिन आदमने मारा शहर जला डालनेकी धमकी दी तब प्रजाके सर्वनाशसे शकित हो रूपमतीने आत्मसमर्पण करनेके लिए आदम खाँको अपने महलोमे बुला भेजा ।

शरत्की पूनो थी । आकाश निरभ्र था, निसर्ग हँसता था । रूपने मण्डन किया । अभिराम अलकारोसे वह सजी । जैसे बाजबहादुरके साथके दिन लौट आये हो । उसका सजना देख बाँदियाँ चकित थी । फिर सोचा ऐसा होना कुछ अजब नही । हरमोका एक हाथसे दूसरे हाथमे निकल जाना सामान्य बात रही है । और रूखे बालोको स्निग्ध कर जब रानीने उनमे मोती गूँथे, फूलोसे उन्हे सजाया तो वे प्रसन्न ही हुई । सुन्दरसे सुन्दर कीमतीसे कीमती लेबास पहनकर रूपने उसपर मादक तरल द्रव्य छिडका । कमरा गमक उठा । वह बिस्तरपर जा सोई । सोनेका पलग कबसे उसके इन्तजार-मे था ।

इन्तजारमे आदम भी तडप रहा था । घडियाल बजते ही, बताये समयके आते ही वह रूपके महलोमे घुमा । पहरेकी दासीने कमरा बता दिया । कमरेकी दासीने पलँग बता दिया । आदम पलँगकी ओर हँसता हुआ बढा । पर जो आहट न मिली तो झल्लाया । फिर जो चादर उठाई तो रूपके हिम-धवल मुँहपर जहरकी नीलिमा देखी । रूप बाजकी यादमे सदाके लिए सो गई थी ।

गोहलौतका राजतिलक

राजस्थानके दक्खिनमे हरे वनोसे ढकी पहाडियोका एक प्रमार है, मेवाड । मेवाड ख्यातो और इतिहासकी दृष्टिसे वीरप्रसवा भूमि राजस्थान-का ही भाग है, उसका उज्ज्वलतम मूल्यतम भाग । पर उसकी शस्य श्यामला भूमिकी हरियाली निश्चय बालुकामयी मरुस्थलीकी नही, शाद्वला धरा मालवाकी है, साँझे और राते जिसकी अभिराम होती है ।

और भाषा उस मेवाडकी मारवाडी-राजस्थानीसे भिन्न है । अधिकतर गुजरातीसे मिलती, इतनी कि मीराके पदोको बस जरा सा बदलकर गुजराती अपना कर लेते है । मेवाडका सम्बन्ध इस तरह एक ओर तो मालवासे रहा है दूसरी ओर गुजरातसे । तीनोकी सीमाएँ अक्सर मिलती रही है और अनेक बार तीनोके अधिपतियोने अपनेसे भिन्न शेष दोनोपर अधिकार कर लिया है ।

मेवाडको दो ओरसे विन्ध्याचलकी शृंखलाएँ घेरती है । अरावलीकी उत्तुङ्ग पर्वतमालाएँ, और चम्बलकी सहायक बनास उसकी धराको उर्वरा करती है । इसी मेवाडने राजस्थानकी ख्यातोको अपने विरुदोसे सनाथ किया है । पर उन विरुदोके निर्माता सोलकियो और परमारोका सम्मिलित रक्त था, यह कम लोग जानते है ।

गुजरातकी राजधानी वलभीपुरी इतनी प्राचीन थी जितनी बौद्धोंकी प्राचीन सत्ता । कालान्तरमे उसका राजा शीलादित्य हुआ, विशिष्ट राज-शृंखलाकी अन्तिम कडी । गुजरात और सौराष्ट्रपर विदेशियोके हमले पहले होते थे, शेष भारतपर पीछे । उसी राह यवन और शक आये, हूण और गूजर, उसी सिन्ध-गुजरातकी राह । उसी राह आभीरोने देशपर

आक्रमण किये। शीलादित्यकी वलभीपर सभवतः हूण-गूजरोंके ही पिछले हमलोने अपने खूनी पजे मारे।

भविष्यवक्ताओने पराजयकी घोषणा कर दी। सूर्यकुण्डके शकुनोच्चारने सन्देह जगा दिया। राजा लडा, वीरदर्पसे लडा, पर लडा जीतनेके लिए नही, वीरधर्मके पालनके लिए। और वीरगति पायी भी उसने। तलवारके घाट उतर गया, जनपदके गाँव लपटोमे झुलस गये, लोग पासके जगलोमे जा छिपे।

शीलादित्यका रनिवास बडा था। राजाका मन कुछ विलासी न था। पर मरजाद बडी थी, इससे रनिवास भी बडा बन गया। कुछ राजनीतिक सम्बन्धसे आई, कुछ दैवचिन्तकोके अनुरोधसे, कुछ राजाकी भक्तवत्सलता और औदार्यसे, कुछ नारीत्वके चमत्कारसे। और जब राजा खेत रहा तब रनिवासमे कुहराम मच गया, कुछ सुहाग छिन जानेसे, कुछ आनेवाली विपदाके भयसे, कुछ आक्रान्ताओके व्यवहारसे। और राह बस एक ही सूझी, सनातनकी राह, सुहागलूटी सतीकी राह। चिता सुलग उठी, ज्वालाएँ लाल जिह्वाओसे आसमान चाटने लगी। सतियोने पतिकी राह ली।

रानियोमे एक बच रही, बस पुष्पवती, आसन्नप्रसवा। विन्ध्याचलके चरणोमे चन्द्रावती नामकी नगरी थी, परमारोकी। और इन्ही परमारोंकी कन्या थी पुष्पवती। जब गर्भके लक्षण प्रगट हुए तब वह मायके जा पहुँची, जगदम्बाकी पूजाके लिए, जिससे प्रसव निर्विघ्न सम्पन्न हो, शीलादित्यका कुलाकुर जन्मे।

वलभी लौटते राहमे उसने स्वामीके निधनकी खबर सुनी। अवसन्न रह गई। लौट पडी। पर मायके नही गई। मलिया शैलमालाकी कन्दराकी उसने शरण ली। उसीमे उसने पुत्र जना। नवजातका अभिराम रूप देख रानी रोई। चिन्ता जगी—इसकी रक्षा क्योकर हो? शत्रुओसे भरे ससारमे किस प्रकार नवजातका शैशव बीते?

शैलमालाके निकट ही वीरनगरकी वस्ती थी। जा भटकी एक दिन रानी नवजातको लिये उस नगरमे। ब्राह्मणी कमलावतीका शील उसे भा गया। कुछ दिन उसका आतिथ्य भोग एक दिन रानीने अपना भेद उसके सामने खोल दिया। फिर बोली—वहन, इसी गर्भ-शिशुकी रक्षाके लिए यह अभागा तन स्वामीके गमनके वाद भी धरे हुए थी, वह कार्य सम्पन्न हुआ। अब मेरे बिरमनेका कोई अर्थ नही। अब तू ही इस नवजातको पाल। जब यह बडा हो, इसे ब्राह्मण शील ज्ञान सिखाना और राजपूत कन्यासे ब्याह देना। चली, वहन, अब मैं उस अजाने देशको जहाँसे कोई न लौटा। तेरा मातृत्व जागे ! तेरा आँचल नवजातके मोहसे भीज चले !

और रानी चली गई, चिताकी लपटोपर चढ, नवजातको कमलावती-की गोदमे डाल। और कमलावतीका मातृत्व जागा, उसका आँचल नव-जातके मोहसे भीज चला।

नवजातने न जाना कि वह बाँट पडा वालक है, दूसरी माँका जाया। क्योकि कमलावतीका मातृत्व विकल था, उसके मोहसे विकल, अपने दायित्वसे विकल, ममताकी डोरसे विकल। नवजात बढ चला, शैशवसे कैशोरकी ओर, कैशोरसे यौवनकी ओर। सूरजकी धूप वनके वृक्षोसे छनकर उसे छूती, साँझ उसे सरस परसती और चाँदनी उसके कठोर गातपर फिसल-फिसल बरस पडती। कमलावती उसे देख निहाल हो जाती। साभिमान देरतक उसे निरखती रहती और उसकी आँखोसे सहसा नीर चू पडता। पुष्पवतीकी याद अनायास आ जाती।

साथ खेलने वाले बालकोने पूछा, इसका नाम क्या है, भला ? 'गोह', माँ बोली। क्या नाम है भला, 'गोह !' 'गोह' भी कोई नाम है ? भीलो का-सा नाम। पर नाम, कहा ब्राह्मणीने, 'गोह' ही है। और गोह ही नाम पड गया, उस गुहामे जन्मे बालकका। ब्राह्मण-बालोने भील-नामके बावजूद उसे प्यारसे भेटा, गलहार बनाया। माँ कमलावतीका लाडला था वह,

कौन उसमे दोष निकाल सकता था ? कमलाके शीलका तो वीरनगरमे साका चलता था ।

कमलाने क्षत्रियके उस बालकको ब्राह्मणका शील देना चाहा, व्याकरण और धर्मशास्त्र पढाना चाहा, पर प्रयत्न विफल हुआ । न सीखा गोहने ब्राह्मणका शील, न पढे उसने व्याकरण और धर्मशास्त्र । ब्राह्मण-बालोका साथ भी उसने छोड दिया । भीलोके बालक उसे प्रिय लगे । उन्हीके साथ वह खेलता और वनस्थलियोमे रम रहता ।

उसे धनुषकी टंकार मधुर लगती, तीरका संधान उसे ऐसा खीचता जैसे लोहेको चुम्बक । और वह दिन-दिन रात-रात भील बालकोके साथ वन-वन, कन्दरा-कन्दरा शिकारकी टोहमे, अरने भैसो बनैले सुअरोकी खोजमे भटकता फिरता । माँ कमलावतीकी वह एक न सुनता, गो उसे वह प्यार करता, उसका आदर करता । माँ उसके पीछे-पीछे फिरती, वन-वन, कन्दरा-कन्दरा और रात बीते जब तब ला पटकती उसे अपने द्वार । उसे बडा दु ख होता जब गोह पेडसे अण्डे उतार उसके देखते-ही-देखते उन्हे तोड रस पी जाता और छक कर साँस लेता, जब हालके डैने निकले परिन्दोको सहसा पकड वह उनकी गरदन मरोड देता । और कमला वही बेबस हो जाती ।

× × ×

मेवाडकी दक्खिनी शैलमालामे तब भीलोका एक छोटा सा जगली राज था, ईडर । भील मण्डलीक उसका राजा था । भील ही उस समूची वनस्थलीके स्वामी थे । गोह उन्ही भीलोका प्यारा बना, उनके माल्यका एकान्त लक्ष्य । भीलोंके लडकोके साथ वह खेलता, विकट ख़तरेभरे खेल, जानलेवा ख़ूनी खेल ।

और एक दिन बस उसी ईडरके बनैले भूभागमे भील-बालोने एक नया खेल रचाया । राजदरबारका, शासन और दण्डका । ऐसे खेलोमे

शक्तिकी पूजा होती है, प्राणवान नर खोजा जाता है। कोई दुविधा न थी, शक्तिकी सीव, पौरुषकी मूर्ति गोह सामने ही खडा था, भीलोने उसे तत्काल राजा चुन लिया।

पर राजा चुन लेने मात्रसे कोई राजा नही हो जाता। राजाके परिच्छद होते है, लाछन होते है, उसका वितान होना है, फिर उसका तिलक होता है। तब कही वह सिहासनासीन होता है, शासनकी बागडोर सम्हालता है, छत्र और दण्ड धारण करता है। सो सब वहाँ कहा ? पर जब कल्पना नि सीम होती है, जिन्दगी बाजकी तरह पर मारती है, तब भला किस सम्बलकी कमी हो सकती है ? किस साधनकी ?

सो सब भील बालोने सब मुहैया कर दिया। परिचरोकी क्या कमी थी ? भील बाल सर्वत्र अनुचरोकी भाँति डोलने लगे। कोई खवास बना, कोई सेवक, कोई सैनिक, कोई सेनापति, कोई मत्री, कोई पुरोहित। लता-प्रतानोका वितान तन गया, धनुषोकी गोलाईमे बुना बाणोका छत्र राजाके सिरपर छा गया, मोरपख और फूलोका मुकुट राजाके मस्तकपर सोहने लगा। दो भील कुमार मूँज-सरपतके धवल शिखर ले राजाके दोनो ओर चँवर डुलाते खडे हुए। राजा डालोसे बने सिहासनपर जा बैठा।

अब अभिषेकके लिए जल और तिलकके लिए चन्दनकी आवश्यकता पडी। पासके निर्मल झरनेसे जल आ गया, पर चन्दनकी सुध किसीको नही आई थी। सो अनेक भील बाल चन्दन लाने पासके गाँवकी ओर दौडे। चन्दन आ गया, घिस कर तैयार हो गया। फिर भील पुरोहित झरनेका जल लेकर आगे बढा। दूसरे पुरोहित मन्त्रोच्चार गुनगुनाने लगे। कमलो भरे जलके छीटे पुरोहितने राजाके मस्तकपर मारे, पर पत्तोकी थालमे रखे चन्दन और अक्षत उठा जैसे ही वह तिलक करने राजाकी ओर बढा, एक भील बालक सहसा खिलाडियोकी भीडसे निकल उधर झपटा।

"ऐसे राजाका तिलक इस तरह नही होता, तनिक ठहर जा !" वह बोला, और पलक मारते अपनी बाई भुजामे उसने बाणका फलक चुभा दिया। भुजासे रक्त छल-छल बह निकला। हथेलीपर अक्षत और चन्दन डाल उसने अपने लहूसे तर कर दिया और उसी हथेलीसे उसने राजाका तिलक कर दिया।

साँस रोके भील बाल यह खूनी कौतुक देख रहे थे। सहसा एक स्वरसे वे जयकार कर उठे—राजा गोहकी जय! भीलराज गोह की जय!

गोहके रोगटे खडे थे, गात पुलकित था, स्नेह-सुख-विस्मयसे आँखे भर आई। सिहासन छोड वह उठा और रक्तरजित भील बालकको उसने बाहोमे भर लिया। खेल फिर न हो सका। क्योकि खेल अब खेल न रहा, गम्भीर जीवन उसमे उमड आया था। खूनी जिन्दगीका यह लाल सबेरा था।

× × ×

ईडरके बूढे भीलराज मण्डलीकने जब यह सुना, स्तब्ध रह गया। उसके सरदार-दरबारी स्तब्ध रह गये। गोहको उसने राजसभामे बुलाया। गोह आया। उसके साथ उसके भील साथी आये। गोहके एक बाजू उसका खेलमे बना मत्री खडा था, दूसरे बाजू वही पुरोहित जिसकी भुजाका घाव अभी भरा न था, और पीछे उसके प्यारे मित्र खडे हुए, भील बाल।

बूढा राजा मण्डलीक सहसा सिहासनसे उतरा और गोहको गलेसे लगाता हुआ बोला—"ईडरके राजा तुम हो, गोह, भीलोके रक्तसे अभिषिक्त! भोगो यह राज। तुम्हारा वश उसे भोगे, गोहलौत कहलाये! मेरा घर तो बनमे है, इधर भटक आया था, अब चला।"

और इस प्रकार गोहको ईडरका राज सौंप भीलराज मण्डलीक भाला टेकता हुआ जगलकी ओर चला गया। गोह राजा हुआ, उसकी सन्तति 'गोहलौत' कहलाई, पर किसीने जाना, उस भीलराजका क्या हुआ, उस जनकका, जिसने अपनी राजसभाको ज्ञानियोका अखाडा तो नही बनाया पर मानवीयतासे द्रवित हो जो वह वनमे गया तो फिर सिंहासनकी ओर लौटा नही।

प्रश्नका उत्तर

पराक्रमी सिकन्दर जब व्यासके तीरसे अपनी सेनाके हथियार डाल देनेपर खीझ कर लौटा तब रावीके तीर उसे मालवोसे जूझना पडा। पजावकी जमीनपर तब पचायती राज्योका बोलबाला था। अभिजात कुलो द्वारा प्रशासित अनेक राष्ट्र पजाबकी भूमिपर खडे थे और सिकन्दरके आते-जाते उन्होने पग-पगपर उसकी विजयिनी सेनाओको ललकारा था।

इन्ही राष्ट्रोमे एक मूषिकोका था, सिन्धके प्रदेशमे। पजाबकी परम्परा के विपरीत मूपिक दास नही रखते थे, अपने आप खेती वारीके सारे काम करते थे। उनकी सॉचेमे ढली-सी सुन्दर स्वस्थ सबल देह देख सिकन्दरकी सेनाको स्पार्ताके नागरिकोकी याद आई, और उनके अचरजका ठिकाना न रहा जब उन्होने सुना कि मूपिक एक सौ तीस बरस तक जीते है।

सिकन्दरने मूषिकोको कई मोर्चोपर हराया, पर बार-बार हारकर भी उन्होने उसकी राह रोकी और पूरी तरह वे सर न हो सके। उनके नेता अधिकतर ब्राह्मण थे, प्रधानत उन्हीका वह राष्ट्र भी था, और उस राष्ट्रका गणमुख्य था शम्भु। कहते है कि जिस आखिरी मोर्चेपर मूषिकोसे ग्रीकोकी मुठभेड हुई थी उसमे ८०००० मूपिक मारे गये थे। ज़ाहिर है कि देशका प्रेम इनकी रग-रगमे रवॉ था जिससे इतनी बडी सख्यामे वे बलिदान हो सके।

मूषिको और सिकन्दरके सम्बन्धकी एक बडी दिलचस्प कहानी एक प्रसिद्ध ग्रीक लेखक प्लूतार्कने लिखी हैं। सिकन्दरके साथ कुछ ग्रीक दार्शनिक भी थे जो भारतीय ऋषियो और दार्शनिकोके चमत्कार देखनेके

लिए उसके साथ हो लिये थे। वैसे तो उस विजेताका भारतीय तपस्वियोंसे अनेक वार साक्षात्कार हुआ था पर उसका जो आश्चर्यजनक सामना मूपिकोंके बीच हुआ वह इतिहासमे स्वर्णाक्षरोंमे लिखे जाने योग्य है। प्लूतार्क लिखता है कि मूपिकोंके नेता ब्राह्मण थे और उन ब्राह्मणोंमे कुछ तपस्वी साधु भी थे, जिनमेसे एकने सिकन्दरकी महत्त्वाकांक्षाका बेहद मखौल उडाया। उसने कहा—आखिर हम भी तुम्हारी ही तरह मनुष्य हैं, फर्क बस इतना है कि जहाँ हम शान्तिपूर्वक अपने घरमे रहते है वहाँ तुम बौखलकी तरह अपना घर छोड दूर-दूर जाकर दूसरोंके काममे खलल डालते फिरते हो। आप भी तकलीफ बर्दाश्त करते हो, दूसरोंको भी तकलीफ देते हो, छिः!

सिकन्दर उस साधुका साहस देख दग रह गया। और जब उसने उसकी हिम्मतको सराहा तब किसीने खबर दी कि यह तो क्या इस इलाके-मे एकसे एक बेनजीर मुनी है जो कुदरतके सारे करिश्मे और उनके भेद जानते है। फिर क्या था, सिकन्दरने हुक्म दिया और प्रसिद्ध तपस्वी चुन कर पकड़ लिये गये। ऐसे ऋषियोंकी सख्या नौ थी, और दसवाँ वह था जिसने सिकन्दरको बौखल कहा था।

सिकन्दरने उसकी ओर मुखातिब होकर कहा—"मै इन दसों साधुओंसे एक-एक सवाल करूँगा, तुम सुनो और बताओ कि इनमें सबसे ज्यादा हाजिरजवाब कौन है। जो सबसे ज्यादा हाजिरजवाब होगा उसकी सबसे पहले और उसी सिलसिलेसे बाकियोंकी भी जान लूँगा।"

साधु आसन मार जजकी जगह बैठ गया। एकके बाद एक साधु सिकन्दरके सामने आता गया, सिकन्दर उससे सवाल करता गया और वह जवाब देता गया। हर साधु नंगा था, साधु वे नगे रहते ही थे। गज़बका मुकाबिला था—एक ओर खल्कका मालिक सिकन्दर था, दूसरी ओर निहत्था

नगा साधु, जिसके पास अपना कहनेको सिवा कमजोर जिस्मके और कुछ न था।

सिकन्दरने एकसे पूछा—तुम्हारे विचारमे जीवित मनुष्योकी सख्या अधिक है या मृत मनुष्योकी ?

साधु बोला—जीवित मनुष्योंकी, क्योकि मृत मर कर फिर रहते नही।

सिकन्दरने दूसरेसे पूछा—जीव समुन्दरमे ज्यादा है या पृथ्वीपर ? साधुने उत्तर दिया—पृथ्वीपर, क्योकि समुन्दर पृथ्वीका ही एक भाग है।

सिकन्दरने तब तीसरे साधुसे पूछा—जानवरोमे सबसे बुद्धिमान कौन है ?

तत्काल व्यग्य भरा उत्तर मिला—वह, जो अब तक मनुष्यकी आँखसे अपनेको बचा सका है, जिसका पता मनुष्य अभी तक नही पा सका।

सिकन्दरने चौथेसे पूछा—तुमने शभुको बगावतके लिए क्यो उकसाया ?

साधु बोला—इसलिए कि मै चाहता था कि यदि वह जीये तो इज्जतके साथ, मरे तो इज्जतके साथ।

विजेताने फिर पाँचवे साधुसे पूछा—पहले क्या बनाया गया, दिन या रात ?

बेधडक उत्तर मिला—दिन, रातसे एक दिन पहले ?

सिकन्दर कुछ समझ न सका, चकरा गया। भवोपर बल डाल झल्लाया सा उसने पूछा—मतलब ?

"मतलब कि असम्भव प्रश्नोका उत्तर भी असम्भव ही होता है।" साधु बोला। सुननेवालोने उसकी निर्भीकतापर दातो तले उँगली दबा ली।

सिकन्दर कुछ हतप्रभ हो चला था। उसे लगा कि अपनी विजयोके बावजूद वह कुछ ऐसोके बीच खडा है जो हार कर भी उससे हारे नही

और नगे होकर भी उमे तुच्छ ममझते है। पामाल सा उमने छठे माधुमे पूछा—मनुष्य किस प्रकार दुनियाका प्यारा हो मकता है ?

साधु बोला—बहुत ताकतपर, पर माथ ही प्रजाका प्यारा होकर, जिससे प्रजा उमसे डरे नही।

सिकन्दरने फिर सातवे साधुमे पूछा—मनुष्य देवता कैमे बन सकता है ?

साधुने उत्तर दिया—अमनुजकर्मा होकर।

डूबते सिकन्दरको जैसे सूखी जमीन मिली। क्योकि वह स्वय अमनुज-कर्मा था। अपनेको देवताओका वशज वह मानता-कहता भी था। अब वह आठवें साधुकी ओर फिरा।

पूछा—जीवन और मृत्यु दोनोमे अधिक बलवान कौन है ?

साधु बोला—जीवन, क्योकि वह भयानकसे भयानक तकलीफ बर्दाश्त कर सकता है।

सिकन्दरने तब नौवे साधुसे पूछा—कबतक जीना इज्जतसे जीना है ?

उत्तर मिला—जबतक मनुष्य यह न सोचने लग जाय कि अब जीनेसे मर जाना अच्छा है।

जवाबोका मारा सिकन्दर अब उस साधुकी ओर फिरा जिसे उसने जज बनाया था। उसने उससे पूछा—किसका उत्तर सबसे चुटीला है ?

साधु भला अपने भाइयोकी जान कैसे ले सकता था ? उसने बडी युक्तिसे जबाब दिया—उत्तर एकसे एक बढकर है।

सिकन्दरने जब यह देखा कि जजका उत्तर स्वय पहेली बन गया जिसकी गुत्थी स्वयं उसे सुलझानी होगी, तब वह झल्ला उठा और जजसे बोला—तुमने इतना अनुचित न्याय किया है कि सबसे पहले मै तुम्हे ही यमलोक पठाऊँगा।

इसपर हंसता हुआ साधु बोला—राजन्, ऐसा करनेसे तुम झूठे साबित होगे। तुमने मुझसे पूछा था कि कौन उत्तर उत्तम है, मैंने कहा, उत्तर एकसे बढकर एक है। मतलब इसका यह है कि कोई जवाब किसीसे घट कर नही है। अब अगर तुम मुझे या इन्हे मारोगे तो स्वय झूठे साबित होगे।

साथके ग्रीक दार्शनिकोने फिर तो सिकन्दरको लाचार कर दिया और उसने साधुओको बंधनमुक्त कर दिया। साधु मुसकराते हुए जिधरसे आये थे उधर चले गये। न उन्हे दुख व्यापा न सुख।

गज़नीका पण्डित

१

बुतशिकन महमूद मर चुका था। उसका बेटा मसूद गजनीकी गद्दी पर आसीन था। बेटा जिस्मी कूबतमे बापसे बढकर था। शाहनामाका रुस्तम जैसे उसमे जी उठा था। उसकी एक चोटसे गजराज तिलमिला उठता, भैसा ऐठ जाता। उसका जगी फरसा दूसरा कोई घुमा नही सकता था, उस मसूदका। और वही मसूद प्यालोके दौरमे औरोको जहॉ बेपर्द कर देता, अपनी अहमियत कायम रखता।

बैहाकी लिखता है, "मै, अबुलफज्ल, बयान करता हूँ वह नजारा जो मैने अपनी ऑखो देखा है।" बैहाकीने देखा—

अमीर (सुल्तान) जा बैठा फीरोजी बागमे हरे चन्दोवे तले सुनहरे तख्तपर, तडके ही। फौजें सामनेसे गुजरने लगी। पहले शाहजादे मौदूदका सितारा निकला, फिर जिरहबख्तर पहने, बरछे लिये, चॉदनी और झण्डे लिये शाही हरमके दो सौ गुलाम निकले, फिर घुडसवार और सॉडनी-सवार, फिर झण्डे-सितारे लिये पैदल और उनकी अनगिनत कतारे।

दोपहर हो चली। सुबहका नाश्ता कबका हो चुका था, अब शुरू हुआ दिनका वह जौहर फीरोजी बागमे जिसके लिए सुल्तानकी सवारी आई थी। अमीरके चारो ओर उमरा बैठ गये। पचास सुराहियॉ शीराजी, दमिश्की, फिरंगी शराबसे भरी सामने रख दी गई। मीना और प्याला लिये साकी खडे हो गये। अमीरने ऐलान किया—'दिल खोलके पिये, बराबर वजनसे पिये, प्यालोकी तादाद कम न हो, यारो, ईमानसे पिये!'

दौर चल पडे प्यालोके। नीले, सुर्ख, सब्ज प्यालोके। ऑखे लाल, चेहरे सुर्ख, अँगडाइयॉ, खुमारी। कहकहोके बीच मस्तीसे गाई गजलें। एक

दरबारी होश खो चला था । पाँच ऊँचे प्याले वह पी चुका था, छठेने उसे हिला दिया, सातवेने बेसुध कर किया, आठवेने नौकरोके हवाले । शाही हकीम पाँचवेके बाद ढेर हो गया, घर भेज दिया गया । स्याहबुर्जने नौ ढाले, खलील दाऊदने दस । अब्दुर्रज्जाक अकेला सुल्तान मसूदका साथ दिये जा रहा था । एक-एक कर सत्रह प्याले उसने गलेसे नीचे उतार दिये, अट्ठारहवेके बाद वह खडा हो गया । बोला—'जहाँपनाह, गुलामका दौर जो जारी रहा तो गुलाम दोनो खो बैठेगा—अक्ल भी, अदब भी ।'

सुल्तानने मुसकरा कर उसे रुखसत किया । पर खुद उसने हाथ न खीचा । अट्ठारहसे बीस हुए, बीससे बाईस,बाईससे चौबीस । मसूदके हाथ सत्ताईस प्यालोके बाद जाकर रुके, जब उसने इशारेसे साकीको रोक दिया । सूरज उठा था, देखते ही देखते आसमानकी चोटीपर चढ एक बार हैरतमे थम गया था, फिर पच्छुमी पहाडोके पीछे ढल चला था ।

जिस्ममे कही बेबसी न थी, पेशानीपर एक बल न था । सुरमई आँखोकी सफेदीमे ढलता सूरज उतर आया था, नीले डोरे हल्के लाल हो चले थे । जैसे एक बूँद न छुई हो । पानी मँगाया, जॉनमाज मँगाया । वजू किया, दूर-दुपहरी और गुजरती शामकी नमाज एक साथ अदा की । चुप-चाप हाथीपर चढा और महलोकी ओर चल पडा ।

२

१०३३ ईस्वीका जमाना था, पजाबपर अहमद नियाल्तगिन काबिज था, मसूदका गवर्नर । नियाल्तगिन बेचैन बेखौफ आदमी था, और जब वह सुल्तानकी पहुँचसे दूर, उसकी नजरोसे दूर, बाजोर और लमगानसे परे पजाबके अपने इलाकेमे होता तब तो वह बिल्कुल ही बेखौफ हो जाता, विधाताकी तरह बनाने-बिगाडनेवाला । गुजरे सुल्तान महमूदकी हरावलमे हिन्दुस्तानके प्रान्तोंपर वह धावे-पर-धावा कर चुका था, उनकी लूट और लूटसे पाई दौलत उसकी जानी थी । उसके अपने सपने थे और उन सपनो-

मे उसके अरमान इस कदर पेग मारते कि एक दिन उसने सहसा कूदकर घोडेकी रिकाबमे पैर डाले और उसकी बाग पूरबकी ओर कर दी ।

नियाल्तगिनने गजनीके सुल्तानके खिलाफ यह बगावत की थी, क्योकि सालो पहले, महमूदके गुजरते ही, नये सुल्तानने फरमान निकाल दिया था कि साम्राज्यके प्रान्तोका कोई गवर्नर साम्राज्यके बाहर बगैर सुल्तानके हुक्मके हमला न करेगा । गजनी और भारतकी सरहदके गवर्नर लूटकी हविस लिये हिन्दुस्तानके नगरोपर हसरतभरी प्यासी निगाहे डालते रहे थे, पर उनके घोडोकी रास खिची थी, क्योकि सुल्तानका डर बडा था, अरमानोके सच करनेकी हविससे कही बडा । और हिन्दुस्तान पर धावे रुके रहे, बाजोके चगुलसे उसके नगर बचे रहे, बाज यद्यपि उनके दूरके आसमानमे मॅडराते रहे ।

पर यह नियाल्तगिन था, महमूद-मसूदकी तरहका ही जवाँमर्द तुर्क, और उसने जो पूरबकी ओर अपने घोडेका रुख फेरा तो उसके-से ही जवाँमर्द वफ़ादार रिसाले उसके पीछे दौड पडे । पूरबकी ओर, और पूरब, व्यास पार सतलज और जमुना पार । दिल्ली और कन्नौज पीछे छूट गये, उजडी मथुरा भी छूटी, उजडे नगरोमे सब कुछ लुटकर भी अभी बहुत कुछ बचा था, पर उनकी ओर नियाल्तगिनका रुख न फिरा, वहाँ उसने मजिल न की, उनके बीच दरकी छातीके बीचसे चीरती चली गई छुरीकी तरह वह उन्हे चीरता पूरब निकल गया । गगा-जमुनाके सगमपर तीरथराज प्रयाग बसा था पर उसका वैभव उसका इष्ट न था । वह और पूरब बढा, अपनी मजिलकी ओर ।

मजिल उसकी काशी थी, तुर्कोके जबानमे बनारस, जहाँके मन्दिरोमे सोना बरसता था, सदियो बरसता रहा था, बिल्कुल अछूता, और जहाँ महमूदके बावजूद कोई मुसलमान अबतक न पहुँचा था । विजयी गाजी और कुरबान शहीदके परेके अरमान साधने वाला नियाल्तगिन जब बनारस पहुँचा तब उसपर कलचुरियोका राज था । गागेयदेव और लक्ष्मीकर्ण,

पिता-पुत्र, दोनो जीवित थे, दोनोकी कीरत उत्तरापथके चन्देलो और परमारोके साथ लिखी जाती थी। सोलकियोके डूबे सूरजपर परमारो और कलचुरियोका चाँद उठ चला था।

पर नियाल्तगिनके रिसालोकी उठती धूलने चाँदके ऊपर घना पर्दा डाल दिया और बनारसकी सडकोपर सहसा अँधेरा छा गया। सच पूछो तो दिनकी रात हो गई। घाटोसे नहा कर आते लोग हमलावरके घोडोसे टकरा कर टूट गये, मन्दिरोके कपाट सहसा बन्द हो गये। निरन्तर उनकी देहलीमे बजते रहने वाले घण्टे चुप हो गये, हरहर महादेवकी गूँज एकाएक बन्द हो गई, वैसे ही जैसे नागरिकोके महलोके कपाट भी बन्द हो गये। पर बन्द कपाटोसे लूटनेवालोकी बाढ कब रुकी? मन्दिर और महल लुट गये। सडकोपर, भवनोके आँगनोमे, घाटोपर, लाशोके अम्बार खडे हो गये। और जबतक नागरिकोको होश आया, नगरके रक्षको और कोतवालने कलचुरियोकी काशीकी छावनीको आगाह किया तबतक नियाल्तगिनके रिसाले अपने हजार-हजार साडिनियोपर बनारसका सदियोंका सोना लादे दूर पच्छिम निकल गये। गागेयदेव और उसका बेटा लक्ष्मीकर्ण उत्तरकी ओर बढे, काशीकी ओर, चन्देलोने अपने घोडे सम्हाले, राजा भोज अपनी धारासे निकला, तबतक नियाल्तगिन प्रयाग, कन्नौज, मथुरा और दिल्ली लाँघ चुका था, लाहौरमे था।

पर यह बगावत थी। सुल्तानके खिलाफ बगावत। गजनीके अधिकारसे बगावत। और सुल्तान मसूद, जो अरने भैसेको एड मार गिरा सकता था, गजराजको पछाड सकता था, नियाल्तगिनकी इस जुर्रतको तरह देनेवाला आदमी न था। अपने वजीर अब्दुर्रज्जाकको उसने तलब किया। उसके आते ही हुक्म दिया—भेजो फ़ौजे लाहौर, मुझे सर चाहिए दीवानेका, बदकार बागाका।

और, वजीर चुपचाप चला गया था, हुक्म बजा लाने।

३

पर हुक्म बजा लाना कुछ आसान न था, अब्दुर्रज्जाककी सूझ-बूझके बावजूद। फौजे गई, आजमाये सिपहसालार गये, जाँबाज खूनी दस्ते गये, पर न लाहौर सर हुआ, न उसका हाकिम। वजीर पामाल था, सुल्तान जैसे जिच।

सुल्तानने वजीरको फिर बुला भेजा, कहा, 'अब मै खुद लाहौरकी ओर कूच करूँगा, क्योकि देखता हूँ गजनीमे अब फरगनाके मर्द न रहे, कि अब हिन्दुकुशकी सफेद बर्फपर शैतानका साया पडा है।'

वजीर सकतेमे आ गया, बोला—'जहाँपनाह, कुर्दिस्तान खतरेमे है, ईरान करवट ले रहा है, इराक जाने कब खडा हो उठे, बलख और बुखारा उजबक रिसालोके पैरो तले कसमसा रहे है, सुल्तान-आजम गजनी नही छोड सकते। सब्र करे, मालिक, दस्तबस्ता अर्ज कर रहा हूँ, इस पगडी-की लाज रखे वरना बुढापेमे मेरी वजारतको कालिख लग जायेगी।' और वजीरने पगडी उतार कर सुल्तानके कदमोमे रख दी।

सुल्तान चुप हो रहा और वजीर नये कौलके साथ अपने महलो वापस चला गया।

एक गोरा गुलाम दिनोसे सुल्तान और उससे ज्यादा अपने मालिक वजीर अब्दुर्रज्जाकके दिलोदिमागका हाल चुपचाप देखता रहा था, नये खतरेका अन्दाज करता रहा था। उनकी एक-एक हरकतपर उसकी नजर थी, और अपने मालिककी पेशानीका एक-एक बल उसकी निगाहका जाना था। वह कश्मीरका पण्डित था, तिलक। दुनियाकी मक्कारी, कहते है, दो हिस्सोमे बॅट गई थी, एक हिस्सा समूची दुनियाके पल्ले पडा दूसरा समूचा हिस्सा अकेले तिलकके पल्ले। गजबका धूर्त था तिलक, हरफनमौला। जानी हुई दुनियाकी कोई जबान न थी जो वह न जाने, जो वह बोल न सके। और स्वाभाविक ही मालिकने नजर उसपर डाली, लाचार नज़र

तिलक जैसे उसी नजरके इन्तजारमे दिनो साँस रोके बैठा था। जमीन तक झुककर उसने आदाब बजाया, बोला—'इर्शाद, मेरे आका !'

'जानता तो है, तिलक, तू मेरे मनकी गाँठ। बता तो सही किसपर एतवार करूँ, किसे यह काम सौपू। सुल्तानने आज दस्तरखानसे भी हाथ खीच लिया। कहते है, मेजपर जब नियाल्तगिनका सर होगा तभी अब वे दस्तरखानको लौटेगे। सुल्तानकी जान जोखिममे है, तिलक, मेरी सारी लियाकतपर पानी फिरा चाहता है। बता मेरे अक्लमन्द दोस्त, किसे लाहोर भेजूँ ?' वजीर बोला।

'मुझे, मेरे मालिक !'

'तुझे ?' वजीर एक बार हँसा, फिर सहसा उसकी आकृति गम्भीर हो उठी। वह फिर बोला, 'तुझे, हाँ, तुझे। तू शायद इसे सर कर आये, क्योकि तलवारे अब टूट चुकी है, और जहाँ तलवारे टूट चुकी है, मुमकिन है वहाँ दिमाग कामयाब हो जाय। जाओ, गजनीके खजानेकी यह कुजी है, गजनीके सिपहसालारोको यह हुक्मनामा है, ले लो, जाओ। इस सफेद बेदाग दाढी पर मरते दम नाकामयाबीका धब्बा न कही लग जाय, खबरदार !'

और वह पाँच फुट पाँच इचका मझोले कदका इन्सान मुजरा करता चुपचाप वजीरके सामनेसे चला गया।

दो घण्टे बाद सुल्तानके हजूरमे खड़े हो वजीरने दस्तबस्ता कहा, 'जहाँपनाह, खातिरजमा रखे, मुनासिब कन्धो पर भार डाला है, मुनासिब हाथोने बीडा उठाया है। काम सर होकर रहेगा।'

सुल्तान की बेरौनक आँखे ऊपर उठी, जैसे चुपचाप पूछा—'कौन है वह जवाँमर्द जिसने हुक्म बजा लेनेका बीडा उठाया है ?'

'तिलक।' वजीर बोला।

'जोरसे हँसीका फौआरा फूटा, व्यग्यकी हँसीका। और हँसी यह

ममूदकी थी। महलकी दीवारे तक हिल गई, वजीरका निरस्कार करती, जैसे उन्होने उसकी ही आवाज दुहराई—'तिलक ?'

'हाँ, तिलक !' वजीरने जैसे आँखोके सवालकी ही जवाबके तौर पर प्रतिध्वनि की—'आलमगीर, सत्तर सालका यह बूढा अपने मालिकके इस सदमेके वक्त मजाक नही करता। पर जरूर दो दिनकी मुहलत दे, दस्तरखानको आबरू दे। जहाँपनाहके इकबालसे काम फतह हो जायगा।'

'मसूदका कौल मजाक नही है, वजीर, पर तुम्हारे इन्तजाम पर भरोसा करता हूँ। खाना तो मेरा तभी होगा जब बागीका सर मेरे सामने होगा।' सुल्तान बोला।

× × ×

नियाल्तगिन सिध पार कर हमलेके अदेशेमे गजनीकी राहका नाका-नाका रोके पडा था। तिलक चद साथियोके साथ उसकी फौजमे खो गया। एक-एक घण्टा उसके लिए कीमत रखता था, एक-एक लमहा उसकी जानपर हावी था। तेजीसे वह अपना मकसद हल करने लगा। काबुली रुपये जाटोमे चुपचाप बँट गये, रातो-रात घक्खरोने लाहौरके हाकिमके सरका सौदा कर लिया। रातो ही रात लाहौरके हाकिमकी फौजोके पडावके बीचसे, खुद उसके तम्बूसे, नियाल्तगिन गायब हो गया।

तीसरे दिन तीसरे वक्त जब वजीरने सुल्तानके सामने हँसते हुए कहा, 'जहाँपनाह, दस्तरखानको बारुतबा करे, बागीका सर मेज पर है।' तब सुल्तानको यकीन न हुआ।

पर सुल्तान उठा; दरबारके साथ दस्तरखानके पास जा पहुँचा। मेज पर नियाल्तगिनका सर सोनेकी थालमे परसा पडा था। दरबारियोके कण्ठसे एक साथ आवाज उठी—'अल्लाहो अकबर !'

सुल्ताननने जब वजीरकी ओर अपनी एहसानमद आँखे उठाई तब देखा, वजीरकी आँखे भरी हुई थी।

'शुक्रगुजार हूँ, वजीर !' सुल्तान बोला।

'अब्दुर्रज्जाक जहाँपनाहका बंदा है, गरीबपरवर, खुद शुक्रगुजार इस हिंदू गुलामका !' वजीर बोला और खंभेकी आड़से तिलकको खींचकर उसने सुल्तान और दरबारके सामने कर दिया।

तिलकके होंठ कोरनिसमें जमीन चूम रहे थे, पर सिर उठाते ही उसकी आँखें लमहे भरको सुल्तानकी उन आँखोंसे मिलीं जो एहसानके नूर-से रोशन थीं।

मुसकराते हुए सुल्तानके मुँहसे धीरेसे निकल पड़ा—'अव्वल अफगान ·!'

और दरबारियोंने ईरानियोंकी वह कहावत पूरी कर दी जिसको कलमसे लिखा नहीं जा सकता। सुल्तानके ठहाकेकी प्रतिध्वनि दरबारियोंके कण्ठसे फूटी और महलकी दीवारें हिल उठीं।

कश्मीरी पण्डित गज़नीके वजीर आजम अब्दुर्रज्जाकके प्राइवेट सेक्रेटरी तिलकके चेहरेपर बस खामोशी थी, उसकी चिंदी आँखें जरा और सिकुड़ गई थीं।

दाहिर-कुमारियोंका बदला

वह पहला जौहर था। राजपूत नारियोकी वीरता और बलिदानका प्रतीक। वह जौहर बार-बार इस देशमे रचा गया। बार-बार आगकी उन लपेटोने आसमान चूमा जिनके ईंधनमे इन्सानकी देह मिली थी, पर जिनमे आनके लिए जलते हुए भी उसने उफ़ नही की। हम जिस जौहरकी बात कहने जा रहे है वह राजपूती जौहरसे पहलेका है जिसे ब्राह्मणीने रचा।

बात पुरानी है, सन् ७१२ ईसवीकी। अरबमे अस्सी वर्ष पहले जो चिनगारी चमकी थी उसने अब तक दावाग्निका रूप धारण कर लिया था। समरकन्द और काशगरसे स्पेनके अलहमरा तक, तातारीसे मिस्र तक इस्लामका नया साम्राज्य कायम हो चुका था। उसी सिलसिलेमे भारतपर भी चढ़ाई हुई थी।

खिलाफत उमैया खानदानकी थी, अल हज्जाज खल्दका गवर्नर था और भारत खल्दसे ही लगा हुआ समझा जाता था। खल्द सिन्धु सभ्यताके दिनोसे ही, हजारो सालसे, भारतका पड़ोसी राज्य रहा था—खल्द, एलाम, बिलोचिस्तान, सिन्ध—एक सिलसिला। मुमकिन न था कि अल हज्जाज-के-से साम्राज्यवादीको पासका यह ऋद्ध देश न दीखता।

अपने भतीजे मुहम्मद इब्न कासिमको उसने सेना देकर भारत भेजा। सत्रह सालके मुहम्मदने गजबका हौसला दिखाया। देवलकी लडाई उसने घण्टोमे जीत ली। और तभी राजा दाहिरकी बहनने महलकी रानियो और दूसरी नारियोको इकट्ठा किया। दुश्मनके हाथमे पडनेका मतलब था, दीन, ईमान सब कुछ खोना। राह बस एक थी, सामनेकी लपटोमे समा जाना।

चिता धीरे-धीरे ऊपर उठती जाती थी। उसकी सुनहरी लपटोसे चन्दनकी गन्ध उठ-उठ हवामे पसर रही थी। महलकी सम्पदा, उसके बहुमूल्य सामान, रेशम किमखाब सब उसमे भस्म होते जा रहे थे। पश्चिमकी दुनिया—एशिया, मिस्र और यूरोप—से जल और थलकी राह आई व्यापारकी सारी अनोखी चीजे जली जा रही थी।

राजाकी बहन उठी। उसकी सुनहरी कायापर जैसे मदनने झण्डा फहराया था। उसके रूपपर आँख नही टिकती थी। अभिराम सिगार उसने किया था। उन सबने भी, जो उसके पीछे कतारमे खडी थी। वह आगे बढी, पूरी कतार शालीनतासे हिली, मन्त्र पढते ब्राह्मणोके पाससे निकली, चिताकी परिक्रमा की और चितापर चढ गई। किसीने ललाटपर बल न आने दिया। अग्निकी लाल ज्वालामे सभी राख हो गई। सतीत्वकी रक्षामे वह पहला बलिदान था।

पर उस चितासे दो कुमारियाँ अलग अलग रही। दोनो बहने थी, राजा दाहिरकी बेटियाँ। उन्होने साथियोके व्यग सुने, धिक्कार सुने, पर रोष न किया, चुपचाप वे देवलसे बाहर निकल गईं।

× × ×

उन्हे हमलावरोसे बदला लेना था। कुछ अजब नही कि अगले मोर्चे भारतके पक्षमे उतर जायँ, इससे वे मोर्चा-मोर्चा अरब सेनाओके साथ चली, छिपी-छिपी। पहले बहमनावाद, फिर मुलतान।

अरबोने किश्तियोके पुलसे सिन्धुको पार कर लिया। सामने खड़ी तीर-की बरसाती सेना उन्हे रोक न सकी। अगली लड़ाई फिर जमकर हुई, पर किस्मत उल्टी थी। नफ्था अग्निवाणोने हौदोमे आग लगा दी। उनकी चमकसे हाथी भाग चले। महलमे लड़ता राजा दाहिर खेत रहा। मुलतान-पर अरबोका अधिकार हो गया। राजकुमारियोकी आशा धूलमे मिल गई। अब बस एक साध रह गई थी, बदलेकी।

मुहम्मद कासिमने इस्लामके उसूलोके मुताबिक नई रिआयासे बरताव किया। उसने ब्राह्मणोंको बुलाकर लगानकी वसूली उनके जिम्मे की और ऐलान किया कि हिन्दुओके मन्दिर उसी तरह पाक समझे जायँगे जिस तरह ईसाइयोके गिरजे, यहूदियोके मन्दिर और मगोकी पूजा-वेदिया। अपने अहलकारोको बुलाकर उसने कहा—"रिआया और हाकिमके बीच ईमानदारी बरतो। अगर मिल्कियत बाँटनी हो तो बराबर-बराबर बाँटो और लगानकी दर अदा करनेकी कुव्वतके मुताबिक तै करो। आपसमे मेल रखो, लडो नही, जिससे मुल्कमे अमन कायम रहे।"

ऐलान मुनासिब था। रिआयाके रवैयेमे फर्क नहीं पड़ा। पर राज-कुमारियोका मन उससे शान्त न हुआ। उन्होंने अपना राज बिलटते देखा, देशके नगर एकके बाद एक सर होते देखे, वतनपर विदेशी हुकूमत कायम होते देखी, अपनी बुआ और सहेलियोको चिता चढते देखा, पिताको आजादीके लिए तलवारकी भेट चढते देखा। उनके सभी कोमल धागे टूट गये थे, सभी नाते छिन्न-भिन्न हो गये थे।

मुहम्मद सुकुमार था, सुन्दर और वीर। मुल्कको उसने बरबाद भी नही किया। पर था तो वतनकी आजादीका दुश्मन। कुमारियोको देशके शत्रुओसे बदला लेना था और उन शत्रुओका प्रतीक था मुहम्मद। कुमारियोने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

उन्होने अपने दूत दमिश्क भेजे और उनके देशसे बाहर जाते ही अपनेको पकडवा दिया। बगावतकी साजिश करती वे पकड़ ली गई और किलेके भीतर कैद कर दी गई।

दूत दूर दमिश्क पहुँचे खलीफाके दरबारमे, मंजिलपर मंजिल मारते। खलीफासे उन्होने कहा—हम राजा दाहिरकी कन्याओकी ओरसे आये है। उन्हे इब्न कासिमने अपने हरममे डाल लिया है, और उनके हजार कहनेपर भी दमिश्कके हुजूरमे भेजनेको तैय्यार नहीं।

खलीफाको नाचीज़ मुहम्मदकी जुर्रत देख बड़ा गुस्सा आया। उसने

अपने दूत सिन्ध भेजे, इस हुक्मके साथ कि हाकिम चमडेमे सीकर दमिश्क भेज दिया जाय। दूत सिन्ध पहुँचे। अरब सेनापतियोको इकट्ठा कर उन्होने खलीफाका हुक्म उन्हे पढ सुनाया। खौफ और दर्दकी लहर उनके जिस्ममे दौड़ गई पर जो हुक्म आया था उसका कोई इलाज नही था, उसे बजा लाना ही फर्ज था।

मुहम्मद भरी जवानीमे चमडेके खोलमे घुसा। खोल सी दिया गया। फिर दाहिरकी बेटियोके साथ सिला हुआ चमडेका वह खोल दमिश्क पहुँचा और दिनो बाद जब वह वहाँ खोला गया तब घुटता दम सहसा टूट गया। सिन्धी तरुणियोने वह हत्या देखी जो उन्हीकी साजिशका नतीजा था। पर उन्हे अफसोस न हुआ। उन्होने मुल्कको सर होते देखा था, पिताको बलिदान होते, बुआको जवानीमे हजारों रूपवती और कच्ची उम्रकी कन्याओके साथ चिता चढते। उनकी तौलमे दुश्मनकी सारी सजाएँ हलकी थी।

× × ×

और अब उनकी कुरबानीकी बारी थी। उनका सतीत्व बेदाग बचा था। पर अब उसका बच रहना मुश्किल था। उन्होने तब खलीफाको कहलाया कि मुहम्मदपर उनका इलजाम झूठा था, मुहम्मद बेगुनाह था गो उनके बदलेका सही हक़दार था।

खलीफा गुस्सेसे जल उठा। इन्साफकी कोई सज़ा इस कसूरके लिए उसने काफी नही समझी। तब उसने बदलेका सहारा लिया। हुक्म दिया कि उन सिन्धी लड़कियोको घोड़ोकी पूँछसे बाँध दिया जाय और सवार उनपर बैठकर दमिश्ककी सड़कोपर सरपट भागें।

दमिश्ककी सड़कोंपर जब घोड़ोपर बैठ सवार भागे तब उनकी पूँछसे दाहिरकी बेटियाँ बँधी थी। खिलाफतकी राजधानी बड़ी थी। लोग बेशुमार उन सडकोपर खड़े थे। उन्होने सुकुमार कमनीय तरुणियोके बदलेका किस्सा सुना था, अब उनके कुचले रौंदे शरीरको टूटते-बिखरते देखा।

जब नारीके उत्कर्षका पहला सितारा डूब गया!

एशिया और अफ्रीकाके इतिहासमे तेरहवी सदी बडे मार्केकी है। उसने दो विशेष उपेक्षित वर्गो—गुलाम और नारी—को अपने निम्न आधारसे उठते और शक्तिके शिखरपर चढते देखा। सर्वत्र गुलाम विजयी हुए—मिस्रमे, मध्य एशियामे, हिन्दुस्तानमे। गुलाम बादशाहत गुलामकी सफलताका सबूत है, क्योकि वह अपनी ताकत और लियाकतसे ऊँचा चढना है। सुलतानके अभिजात बेटेका लायक हो जाना असाधारण घटना है, गुलामका उत्कर्ष केवल गुणोकी विजय है।

और इसी प्रकार नारीका उत्कर्ष भी गुणोकी सफलताका सबूत है, पक्षपातका नही; क्योकि जिस प्रकार गुलामोका स्वाभाविक स्तर नीचे है, नारीका भी प्रकृत स्थान नीचे ही इतिहासमे रहा है। सबने उसे दबाया है, उठाया उसे केवल उसके अपने गुणोने है। जिस प्रकार तेरहवी सदीमे गुलामोमे एक अनोखी स्फूर्ति आई जिसने उन्हे सल्तनतोकी मूर्धापर जा बैठाया, उसी प्रकार नारीने भी—और अधिकतर ऐसी स्वय गुलाम या गुलाम खानदानकी थी—अपने बन्धन तोडकर ऊपर उठनेका प्रयत्न किया।

इनमे एक तो मिस्रके मामलुक तुर्कोकी लडकी थी, खुद गुलाम, जिसने अपनी दिलेरी और अक्लसे, अपने अधिकारसे उस प्राचीन देशकी सल्तनतकी रास हाथोमे ली थी। इतिहासप्रसिद्ध सुलतान सलादीनके पोतेकी वह पत्नी थी जिसका नाम—शजरुद्दूर—इतिहासमे अमर हो गया है। उसने क्रूसेडो (जुरूसलम लेनेके लिए ईसाई राष्ट्रोंकी पश्चिमी एशियामे तुर्कोसे लड़ाई) मे फ्रासके राजा नवम लुईको हराकर कैद कर,

लिया था। किस तरह उसने घोडेपर चढकर सेनाका सचालन किया था, वह रोमाञ्चक इतिहासकी कहानी है। दूसरी महिला-विभूति थी फारस की रानी, उस राज-परिवारकी आखिरी औलाद जिसने शेख सादीको अपनी सरक्षा दी थी। जब मगोलोकी 'खुदाई चाबुक'से धरा थरथराती थी, जब उनकी धमक सबसे अधिक मध्य एशियाके मैदानोमे सुन पड़ती थी, ठीक तभी इस गजबकी अक्लमन्द रानीने फारसपर प्राय चौथाई सदी राज किया था। तीसरी थी रजिया, गुलाम अल्तमशकी बेटी, हिन्दुस्तान की मलका—तीनोमे बदकिस्मत।

कुरान और हदीसोकी हिदायत है कि औरत तख्तनशी न हो, आदमी उसे अपना मार्गदर्शक न बनाये। इससे तब, जब कि इस्लामका सारे एशियापर बोलबाला था, नारीका सामने या तख्तपर आना गुलामकी ही तरह ताकत और अक्लका सबूत था। रजियामे अपने समकालीन अभिजात या ग़ुलाम मर्दसे कम अक्ल न थी।

उसका बाप अल्तमश तो उसके सारे भाइयोको नालायक और फकत उसे काबिल मानता था। जब उसने अपने सरदारोके सामने अपनी वसीयत रखी, अपने उत्तराधिकारकी घोषणा की तब मर्दोपर एक सदमा छा गया, क्योकि उसने अपनी सल्तनतका वारिस रजियाको बनाया था। मर्दो के नाक-भौ सिकोडनेपर उसने कहा—"मेरे बेटे जवानीके लुत्फ़ उठा रहे है। उनमे कोई सल्तनतका काम अंजाम देने लायक नहीं। बस रजिया ही वह भार उठा सकती है।"

रजियाने उठाया वह भार। अल्तमश उसे नजीरुद्दीन कहकर पुकारता था। रजिया अपने भाइयोके निकम्मे साबित हो जानेके बाद दिल्लीके तख्तपर बैठी। भाइयोके निकम्मेपनने बापकी आधी बात सच्ची कर दी। आगे अब उसकी उम्मीदोंका इम्तहान था।

दिल्लीके तख्तपर अभी तक औरत न बैठी थी। रजिया पहली औरत थी जिसने राजदण्ड धारण किया। उसने मर्दका लिबास पहना, अपनेको

'रजिया सुलतान' कहा, मुँह खोले वह दरबारमे बैठी, मर्दकी तरह हाथी पर चढ उसने सेनाका संचालन किया। जमाना हैरतमे था। कोई काम नही जिसे वह अंजाम न दे सके, कोई इसाफ नही जिसे वह न कर सके।

पर कुरान और हदीसोके कलाम क्या काफी न थे ? लोहेको लोहेने काटा। खुद ग़ुलाम उसके दुश्मन हो गये, ग़ुलाम मर्द। अल्तमश और उसका पूर्ववर्ती सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक दोनो पहले गुलाम रहे, अल्तमशने चालीस शक्तिमान ग़ुलामोका सगठन कर लिया था। इस संगठनका नाम ही 'चालीस' पड गया था। देशकी सारी शासन-शक्ति, सारी दौलत सिमटकर इनके ही हाथमे चली आई थी। अल्तमशके मरनेके बादकी अराजकतामे, उसके बेटोकी बुजदिली और कमअक्लीके समय तो इनकी शक्ति और भी बढ गई थी। रजिया जब गद्दीपर बैठी तब सभी तरहसे 'चालीस' सल्तनतके मालिक थे।

रजियाने हुकूमत बडी काबलियतसे शुरू की। उसकी हिम्मत देख बडे-बडोके छक्के छूट जाते। इसाफ उसका इकता था। दीनकी वह लामिसाल सेविका थी। दुर्गुण उसमे बस एक था, जो उसके हाथकी बात न थी—वह औरत थी। औरतकी हुकूमत किसीको पसन्द न थी, न हिन्दूको न मुसलमानको, न अभिजातको न ग़ुलामको। सभीने इस बातका एक स्वरसे विरोध किया।

रजिया हुकूमतपर डटी रही। उसने विशेष नीतिसे काम लेना चाहा, पर वही उसके नाशका कारण बन गई। चालीसों गुलामोमे एक अबीसीनियाका हब्शी था—याकूत। उसपर रजियाकी विशेष नजर हो गई। उसकी सलाहसे उसने हुकूमत करनी शुरू की। पता नही उसका उससे कैसा सम्बन्ध था ! सम्बन्ध चाहे जैसा भी रहा हो, वह बाकी ग़ुलामोको सह्य न हो सका। वे बगावत कर बैठे।

रजियाने पहले तो उनका सामना किया। तलवार लेकर वह मैदानमे

उतर पडी। लोहेसे लोहा बजा। पर जीत दुश्मनोंकी हुई। अल्तुनियाँने उसे कैद कर लिया।

पर रजिया दम रहते हिम्मत हारनेवाली औरत न थी। जब ताकत बेकार हो गई तब उसने नीतिसे काम लिया। उसने अपने विजयीको अपनी निगाहोंका कैदी बना लिया। अल्तुनियाँने प्रेमीके रूपमे उसके आगे घुटने टेक दिये, तलवार रख दी। रजिया फिर दिल्लीपर चढ चली, अपने शौहर अल्तुनियाँके साथ।

पर अब तक उसका भाई बहराम सरदारोंकी मददसे तख्तपर बैठ चुका था। तख्तपर बैठ जाना अनेक मुश्किलें आसान कर लेना है। ताकतसे, रुपयेसे, रुतबेसे लोग जीते जा सकते हैं। रजियाको हारकर अल्तुनियाँके साथ जंगलकी राह लेनी पडी और वही पकडकर दुश्मनोंने दोनोंको मार डाला। नारीके उत्कर्षका पहला सितारा डूब गया!

ग़ज़बकी अक़्ल पाई है तुमने, बीरबल

बगालने बगावत की थी। बराबर करता रहा था। अकबर उसे दबा-कर पटनेकी राह लौटा। इलाहाबादमे अगला पडाव पडा। क्वारका महीना था, शरद्की पूनो थी, दूधकी धोयी रात। बादशाह गगा-जमुनाके सगमपर आ खडा हुआ। पहली बार वह सगम आया था। उसकी महिमा उसने सुनी हजार जबानोसे थी, पर देखा उसे एक बार भी न था।

घोडे, हाथी, पालकी और सुखपाल जमुनाके किनारे दूर तक फैले खडे थे। शाही सन्तरी कतारोंमे खडे बादशाहकी हिफाजतमे तत्पर थे। राजे-महाराजे, अमीर-मुसाहिब, सूबेदार-सरदार साथ थे। सबको लगा, बादशाह संगमकी खूबसूरतीसे मोह गया है। सही मोह गया था बादशाह। पर चुप था—वह ऐसा, जैसा ऐसे मौकोपर वह कभी नही रहा करता था।

'जहाँपनाह', बैरमके बेटे कवि रहीम ख़ानख़ानाने कहा, 'रात सँवरकर उतरी है। चाँद नीले समन्दरमे तैरता जा रहा है'''।' बादशाहने हल्केसे हाथ उठाकर उसे चुप कर दिया, कुछ गम्भीर आवाजमे बोला भी, 'ठहरो, शायर।'

शायर चुप हो रहा। मुसाहिब कुछ हिले, पीछे हटे। जाना, सगमकी खूबसूरतीसे दूर कही बादशाहकी नजर भटक गई है। आवाज़े रुक गई। ख़ामोशी गहरी हो गई। आँखे मिलती, जैसे मतलब भरी बातें कहती, नीचे झुक जाती, दूर संगम पार क्षितिजपर जा लगती।

और बादशाह चुप था। सहसा वह हिला, अमीरोकी भीड भी हिली, लोग पीछे सरके।

'नादिर !' बादशाहने कन्धेपर सिर जरा मोड धीरेसे पुकारा ।

'आलमगीर, बन्दा हाजिर है', जागीरोके हाकिमने झुककर सलाम किया ।

'आस-पासकी मिल्कियतकी देखभाल कौन करता है ?'

'झूँसीका राजा, जहाँपनाह, शिवबरनसिह ।' नादिर फिर झुका ।

'कहाँ है, झूँसी ? राजा क्या है यहाँ ?'

'झूँसी सामने है, जहाँपनाह, गगा पार ।'

नादिरने तभी पीछे हटकर मजीद ईरानीकी ओर देखा जो बादशाहके हुजूरमे पहलेसे ही झुका हुआ कुछ कहना चाहता था ।

वह बोला, 'दरबारका हुक्म था, आलीजाह, कि यहाँ पहुँच और पडावकी खबर किसीको न हो । इसीसे राहके राजे इस्तकबालमे हाजिर न हो सके ।'

'झूँसीके राजाको खबर करो, सूरज निकलनेसे पहले रूबरू हो ।'

'जो हुक्म, जहाँपनाह ।'

बादशाह पडावको लौट पडा । उसने मुद्रा बदल दी । मुसकुराता, बात करता सुखपालमे जा बैठा ।

झूँसीका राजा पैगाम पा घबडा उठा । दूतसे हजार पूछनेपर भी पता न चला कि बादशाह सलामतने कैसे तलब किया । उससे बस इतनी जानकारी हुई कि बादशाह सगम गया था । वहाँसे उसने झूँसी देखी । उसका चेहरा गम्भीर हो गया । खानखानाने जो मौकेसे मोहकर कुछ कहना चाहा तो उसे चुप कर दिया, फिर राजाकी तलबीका हुक्म दे पडाव लौट आया ।

राजाका दिल बैठा जा रहा था। बीरबलको बुलानेके लिए वह हरकारे पर हरकारा भेज रहा था, पर उसके कानों जूँ नही रेगती थी । बेटीके साथ वह शतरंज खेल रहा था, हिला तक नही । हरकारेने जो किस्सा बयान कर राजाकी घबडाहटका हाल कहा तो बीरबल यह कहकर फिर

खेलमे मशगूल हो गया कि 'राजा साहबसे कह दो, हुजूरकी सेवामे चले जायँ और जब जायँ तब कुछ नावोपर ईट-चूना साथ लेले ।'

राजा बीरबलका मिजाज जानता था, चुप हो रहा । उसकी सलाहपर उसे भरोसा था । उसने साथ ईट-चूनेसे भरी नावे ली और बादशाह सलामतके सामने आ खडा हुआ । दहशतके मारे उसका बुरा हाल था । होठ सूखे जा रहे थे, रोयॉ-रोयॉ कॉप रहा था ।

उधर बादशाहकी पेशानीपर बल पडे थे । जो कुछ उसने देखा वह उसे हैरतमे डाल रहा था । अभी सूरज निकला नही था, जब इने-गिने मुसाहिबोके साथ सगमपर पिछली रातकी जगह आ खडा हुआ था । अभी कुछ ही मिनट उसे आये हुए थे कि उसने धुँधलकेमे मालभरी नावें गगामे झूँसीकी ओरसे अपनी ओर आती देखी ।

बादशाहकी नजर उधर थी जरूर, पर वास्तवमे वह उन्हे देख नही रहा था । कुछ ही देरमे नावे वहाँ आ पहुँची जहॉ बादशाह खडा था । नावोके आगे सुन्दर बजरेपर राजा सवार था । उसने बादशाहको न देखा, पर नादिर उसका पहचाना था । उसके आदमी सिपाहियोसे शाही पडाव पूछ रहे थे कि नादिर उसे पहचान उसकी ओर बढा और उसे लाकर बादशाहके सामने खडा कर दिया । नावे धीरे-धीरे तटसे आ लगी । बादशाह कबका उनका ईट-चूना देख चुका था । अब हैरानी उसे थी ।

'यह ईट-चूना क्यो, राजा ?' बादशाहने राजाके मुजरेके जवाबमे पूछा।

'बादशाह सलामत, गुलाम बेगुनाह है', लड़खडाती जबानसे राजा बोला । उसकी कलँगी जमीन चूम रही थी ।

'बादशाहने जाना, उसका सवाल उसके भीतरी विचारोका सिलसिला था, जो भला गरीब राजा क्योकर जान पाता । उसने झट आश्वासन देते हुए राजासे कहा, 'नहीं, नही, गुनाहका क्या सवाल है, भला ? पर मैं पूछ रहा हूँ कि ये नावे क्यों ? इनके ईट-चूनेसे क्या मतलब ?'

अब राजाकी जानमे जान आई। वह आश्वस्त हो गया, पर उसने समझा कि बीरबलकी सलाह फिर भी आडे आई। झट आत्मरक्षामे उसके मुँहसे निकल पडा—'बन्दापनाह, कुसूर मेरा नही, बीरबलका है।'

राजा सम्हल गया था, पर उसे लगा, अभी खैर नही, मामला तूल पकड़ चुका है। बादशाह उसकी घबडाहटसे फिर नरम पड़ गया। मुसकराहट दबाई और पूछा—'कौन है यह बीरबल ?'

'बीरबल, बन्दापनाह, गुलामका सलाहकार है, दीवान', राजा बोला।

'हाजिर करो उसे, अकेले।'

'दो घण्टेके पेश्तर, बादशाह सलामत', कहकर जब राजा चला तब उसकी सही साँस लौटी। कुछ खुश भी था कि मुसीबत अब बीरबलके सिर गई। देखे कैसे पनाह पाते है। रातसे ही बुलवाता रहा हूँ, जरा परवाह नही की।

बीरबल जब बादशाहके पास जानेके लिए नावपर बैठा तब उसके चेहरेपर मुसकराहट खेल रही थी। राजा दग था। उसने वहाँ हवाइयाँ देखनी चाही थी। नावके दूर चले जाने तक वह आँखें फाड-फाड देखता रहा, फिर धीरे-धीरे हवेलीमे दाखिल हुआ।

'जहाँपनाह, जो बादशाह सलामतके इकबालसे वाकिफ है, उसे समझते जरा देर नही लगी कि सगमपर खडे होकर उनके मनमे कैसे खयाल उठेंगे। मुझे लगा, आलमगीर यही किला बनवाना चाहेगे, नजरके नामपर ईट-चूना भिजवा दिया।' बीरबलने बादशाहके सवालके जवाबमे कहा।

'गज़बकी अक्ल पाई है तुमने, बीरबल! आजसे तुम्हारा खिताब 'राजा' हुआ और तुम आगरेके दरबारके 'रतन' हुए। शाम तक शाही पड़ावपर आ जाओ। साथ चलना होगा।' बादशाहने मुसकराते हुए कहा।

'बजा इरशाद, जहाँपनाह', कह बीरबलने फ़र्शी सलाम किया और शाही खेमेसे बाहर हो गया।

पडावमे पल भरमे चारों ओर खबर घूम गई। मुसाहिब नये रतनकी अक्लकी बात सुन हैरतमे आ गये। राजाने जो बीरबलको हाथी-घोडोके साथ लौटते देखा तो दंग रह गया। पर उसके मनमे ईर्ष्या न थी अफसोस था, कि उसके बचावका जरिया, उसका कवच, अब उसके पास न रहा।

कुछ ही दिनोमे गगा-जमुनाके सगमपर इलाहाबादका किला बनकर खडा हो गया।

अम्बरनरेशका पुरस्कार

मानसिह मुगल सल्तनतकी तलवार माना जाता था। उस सल्तनतमे उससे बढकर लडाका न था। दक्खिनसे फरगना तक उसका बोलबाला था। काबुलकी घाटीकी गहराइयोसे हिन्दूकुशकी चोटी तक उसका जस छाया हुआ था।

बगालको खुद बादशाहने एक बार सर किया था, पर उसके बागी सरदार गायब हो गये थे। जब शाही कुमक उधर जाती, वे सुन्दरबनमे जा छिपते, फिर निकलकर उड़ीसा, बंगाल, बिहारपर हावी हो जाते, लूट-मार करने लगते, शाही लश्कर बेदीन हो जाते, शाहंशाहकी हुकूमत उस जमीनसे उठ जाती। एकसे एक सूरमा बगाल भेजे गये, पर साबुत कोई नही लौटा, जो लौटा भी तो पिट कर। बादशाह परेशान था। उसकी चिन्ता मानसिहने समझी। उसने बंगाल सर करनेका बीडा उठाया। अपने राठौरोको ले वह गौड़ जा पहुँचा।

महीनो बाद जब वह आगरे लौटा तब खुद अकबर उसके स्वागतके लिए शहरपनाहके फाटक तक आया। उसने राजाको गले लगा लिया। मुसाहब आह भरने लगे।

बंगाल पूरी तरह सर हो चुका था। उसके सारे बागी आगरेमे काठमे ठुक चले थे। उधरसे कोई अन्देशा नही था और अब अकबर चैनकी नीद सो सकता था।

पर अब वह एक दूसरी धुनमे था। मानसिहको क्या बख्शा जाय? उसका काम कुछ मामूली न था। बंगाल दक्खिन न था, मालवा न था, गुजरात न था, क़ाबुल भी न था। उसे सर करना कुछ आसान न था। उसकी मुश्किलोका खासा तजुरबा खुद शाहंशाहको था, और उसे हो रहा

था, कि मानसिहको कुछ क्या देकर निहाल हो जाय । पर बादशाह उसे हाथी-घोडे, दास-दासी, रतन-इलाके नही देना चाहता था । अम्बरनरेशके पास हाथी-घोडे, दास-दासी, रतन-इलाकोकी कमी न थी । इन्हे देकर अकबरका मन अब भरनेका नही ।

उसने दरबारे खास बुलाया । नो रतन बैठे । उसने अपने मनकी बात कही । पर वे कोई बख्शीश उसे सुझा नही सके । उन्होने उन्हीके नाम लिए—हाथी-घोडोके, दास-दासियोके, रतन-इलाकोके । अकबरने सिर हिला दिया । जाहिर था कि वह इनसे ऊब चुका था । झल्लाहट और लाचारी उसके चेहरेपर झलक उठी । उसने एक ठंडी साँस ली ।

फिर जैसे कुछ याद आ गया । उसने बीरबलपर नजर डाली । नजरें मिल गई । बीरबल चुपचाप कुछ मुसकराता-सा बादशाहकी ओर देख रहा था ।

'राजा, तुम चुप कैसे हो, यह जानकर कि मैं तुम्हारी अक्लका कायल हूँ ? तुम्ही मेरी मुश्किल आसान कर सकते हो, बोलो ।' बादशाहने जैसे बेबसीमें कहा ।

राजा बीरबल बोला, 'जहाँपनाह, अम्बरनरेशका नाम है 'मानसिह ।' उन्हे वीर मानसिह कहे, जीते हुए बगालको तीन हिस्सोमें बाँट दें, हर एकका नाम उनके नामके टुकडोपर रख दे । उनका नाम आजसे 'वीरभूमि', 'मानभूमि', सिहभूमि हो ।'

नौरतन दग थे । बादशाह मोह गया । गद्गद था । चेहरेका रोयाँ-रोयाँ पुलक उठा था ।

बोला—'बीरबल, आजसे बगालके तीन हिस्सोके नाम वीरभूमि, मानभूमि, सिहभूमि हुए । उनको ये नाम देकर तो सचमुच मै निहाल हो गया। समझा कि अम्बरनरेशको मैने पुरस्कृत कर दिया, पर इस सुझावके लिए तुम्हे क्या दूँ, यह कभी न जान पाऊँगा । कगाल हूँ !'

शाहंशाहने सिर झुका दिया ।

जब सिकन्दरने राह चुराई !

गौगामेलाका फैला मैदान। वालूके ऊँचे टीले जिनके सायेमे गजराज दम ले ले, मगर रेत ऐसी कि समुन्दरकी लम्बाई-चौड़ाईको लजा दे। रेतके पहाड जो आज यहाँ, कल वहाँ, पीली आँधीके डैनोपर सवार।

उसी गौगामेलाके मैदानमे दाराकी सेनाएँ पडाव डाले पडी थी। दारा यह तीसरा था, उस महान् दारा (दारायवौष्) के खानदानका, जिसका जस चीनसे यूनान तक गाया जाता था। कुरूष् उस कुलका पहला यशस्वी सम्राट् था जिसने हिन्दुस्तानकी सरहद गन्धार तकको जीता, उधर पश्चिममे भूमध्यसागर तक। तीन पीढी बाद दारा आया जिसने पंजाबपर क़ब्जा किया, जिसकी बाख्त्रीकी दूनमे जायफ़ान फूलता था, आमू दरियाके किनारे, जिसके बेटे क्षयार्षाने यूनानपर हमला कर यूनानी इतिहासमे माराथानकी घटना अमर की, जो शकोकी खोजमे दानूब नदीकी राह दखिनी रूस तक जा पहुँचा, जिसने अपनी विजयो की प्रशस्ति नख्शएँ रुस्तम और बेहिस्तूनकी शिलाओपर खुदवाई, जिसने अपनेको 'आर्योमे आर्य', 'क्षत्रियोंमे क्षत्रिय' कहा। उसीके बेटे क्षयार्षाने यूनान जीतकर एथेन्सको जला डाला। उसकी ओरसे भारतीय युद्धजीवी भी लडे थे, खादी पहने, लोहेके फलोवाले लम्बे तीर लिये; और फिर यह दारा हुआ, दारा तीसरा।

साम्राज्यकी चूलें हिल गई थी, पर साम्राज्य आखिर अभी खड़ा था—हिन्दूकुश-बदख्शाँसे सीरिया तक, मिस्र-अबीसीनियासे रूस तक। दूर-निकटके सूबोंपर ईरानी सूबेदार (क्षत्रप) शासन करते थे और सूबोका सोना पार्सपुर (ईरानकी राजधानी पर्सिपोलिस) मे धारासार बरसता

था। सिकन्दरको यूनानके पुराने अपमानका बदला लेना था, दाराकी चढ़ाईका, उसके बेटे क्षयार्षके विध्वंसका। सदियोसे यूनानी इतिहासकार यूनानियोके पुरातन अपमानका ईरानियोंसे बदला लेनेको भड़का रहे थे—हेरोदोतस, दिमोस्थेनीज, पेरिक्लीज। पर ईरानियोकी तलवारे मज़बूत मुट्ठियोमे थी, यूनानी अरमान जहाँके तहाँ रह गये। फिर एक दिन मकदूनियाके फिलिपके लाडले सिकन्दरमे दिग्विजयकी लौ लगी, उस पुराने अपमानके बदलेकी बिसरी याद दार्शनिक गुरु अरस्तूने उसे पढ़ाते समय बार-बार दिलाई थी। सिकन्दरको याद दिलानेकी जरूरत न थी वह कौमी बेइज्जती थी। वह मकदूनियाके महलोमे खड़ा हुआ उस रातके दूसरे दिन, जिसके जशनमे हत्यारेने उसके बापको छूरा भोक दिया था, और दोस्तोको खजाना लुटाता हुआ बोला—'लो, लो यह सोना !'

दोस्तोने पूछा—'सिकन्दर, सब दे डाला, आख़िर अपने लिए क्या रख रहे हो ?'

सिकन्दर बोला—'उम्मीदे !'

उन्ही उम्मीदोको लिये वह मकदूनियाके पहाड़ोसे निकला और यूनानको फिर सर करता, एशिया माइनर-फिलस्तीनको रौंदता मिस्र जा पहुँचा। दाराके क्षत्रपोंकी हारकी ख़बरे ईरानी राजधानीमे पहुँच चुकी थी पर दखिन बढ़ते सिकन्दरके घोड़ोकी बाग किसीने न रोकी। सिकन्दर मिस्र लेता उत्तर लौटा और गौगामेलाके मैदानमे जा उतरा—उस मैदानमे जहाँ दूर तक सुनहरे खेमे खड़े थे, रानियों-रखेलियोके खेमे, उमरा-सरदारोके। दाराकी सेना क्या थी शहर था, शहरका कोई ऐसा ऐश नही जो उन खेमोमे मुहैया न हो। पर उस दारा और इस दारामे फर्क था, ज़मीन-आसमानका फ़र्क।

दाराकी बेशुमार फ़ौजें दूर तक फैली पड़ी थी, उस गौगामेलाके बियाबाँमे जहाँ वसन्त तब जवानीपर था। सूरजकी आँख कबकी बन्द हो चुकी थी—शामका झुटपुटा रातकी गहराईमे डूब चुका था। ईरानी

दस्तरखान दमक रहे थे, साकी शराबके जाम भरते जा रहे थे, मीनाओं-की कतारें खाली होते ही भर जाती थीं, नर्तकियाँ नाच रही थीं।

सिकन्दर अपनी सेना लिये पहुँचा ही था कि उससे पहले पहुँचे सर-दार पर्दिकस्ने कहा, 'सिकन्दर, बस हमला कर दो, पौ बारह हैं, वरना सुबहका उजाला होते ही दाराकी बेशुमार फौज देख अपनी सेनाको काठ मार जायेगा।'

सिकन्दर हँसा, बोला, 'पर्दिकस्, सिकन्दर जीत चुराता नहीं लड़कर लेता है!'

पर्दिकस् लजाकर चला गया। सुबह हुई, कुछ ही ठोकरोंसे सिकन्दरने दाराके साम्राज्यको गिरा दिया। महान् साम्राज्य चरमराकर जो गिरा तो अपने ही मलबेमें समा गया। सिकन्दरने जीत चुराई नहीं। शिल्पी आया, बोला, 'महान् है तू, सिकन्दर। ला तेरी मूरत गढ़ दूँ—एक पैर एक पहाड़की चोटीपर, दूसरा दूसरे पहाड़की चोटीपर, एक हाथसे दूसरे हाथकी मुट्ठीमें समुन्दर उँडेलती मूरत।'

रातमें सिकन्दरने भी जशन मनाया। पर्सिपोलिसके महलोंके सायेमें। शराबका दौर चल रहा था। सभी सरदार पी रहे थे। सिकन्दर भी अपने आपेमें न था। सैनिकोंके हाथकी सैकड़ों मशालें रातको दिन बनाये हुए थीं। पर उन मशालोंका तेज अन्तियोककी प्रसिद्ध वेश्या तायाकी रूप-जोतसे मलिन पड़ रहा था। ताया विश्वविख्यात गणिका थी। प्राचीन जगत् उसका दीवाना था। प्राचीन गायकोंने अपने गीतोंमें उसका रूप अमर कर दिया था। ताया उस विश्वविजयी सिकन्दरकी रखैल थी।

शराबका नशा जब सरदारोंपर असर कर चला, उनके पैर लड़-खड़ाने लगे, तभी एकाएक ताया उठी। बोली, 'विश्वविजयी, तुमसे पहले भी इस धरापर विजेता हुए हैं, पर उनके साथ ताया न थी। आज ताया कुछ करेगी। कहानी रह जायगी कि सिकन्दरके साथ एक नारी थी जिसने वह किया जो कभी कोई नहीं कर सका।' फिर पासके सैनिकके हाथसे

मशाल छीन वह उन महलोमे घुसी जिनमे कुरूप और कम्बुजीय, दारा और क्षयार्पाके इकवाल, जीत और लूटमे आई दौलत—बाख्त्री-बदख्शाकी, गान्धार-पञ्चनदकी, खुरासान-अजरबैजानकी, बाबुल-निनवेकी, दमिश्क-जुरूसलमकी, तीर-सोदोमकी, एथेन्स-मेम्फिस्की—गॅजी पडी थी। महलके सुनहरे कँगूरोके साथ वह भी जलकर खाक हो गई। सगमरमरके खम्भे मस्तकहीन खड़े थे। सगमूसाके आबसे चमकनेवाले सॉट चुप थे, दारा महान्‌की प्रशस्ति बेजबान हो गई। यह एथेन्सके विध्वसका बदला था।

झेलमके उस पार हिन्दका बाँका लडाका पर अदना जमीदार राजा पुरु सिकन्दरकी राह रोके खडा था। कुछ पैदल कुछ घुडसवार सेना थी, उसके पास, हजार रथ थे, १३० हाथी। उधर यूरोप, अफ्रीका और एशियाके चुने वीर और उनसे बढकर यूनान-मकदूनियाके वे रिसाले जिन्होने लडाईके हुनरमे अपना साका चलाया था। पर करींके मैदानमे सिकन्दरने जो पंजाबी मर्दानगीकी फौलादी दीवार खड़ी देखी तो उसके देवता कूच कर चले। मुँहसे निकल ही तो पडा, 'आखिर वह खतरा आज सामने है जो मेरे साहसको ललकार रहा है। पाला आज एक साथ ही बनैले जन्तुओसे पडा है, लामिसाल जवॉमर्दोसे !'

यह तो तबकी बात है जब सिकन्दर झेलम पार कर गया था। पर बुनियादी कहानी तो उस पारकी है जब कि दजला-फरातकी धाराओने जिसकी राह न रोकी, हिन्दूकुशका हिममण्डित गौरवान्वित मस्तक जिसके चरणोमे झुक गया, सिन्धुके प्रखर प्रवाहके सामने जिसके घोड़ोकी बाग न रुकी, वही सिकन्दर झेलमके तटपर बेबस हो गया, लाचार बेरौनक।

तक्षशिलासे सिकन्दरने पुरुके पास सन्देश भेजा था—'आत्मसमर्पण कर दो, आकर मिलो।' राजाने उत्तरमे कहला दिया था—'निश्चय मिलूँगा, पर सेनाके साथ वितस्ता (झेलम) के तटपर !' और अब वह वितस्ताके तटपर उसकी राह रोके खडा था।

बरसातके दिन थे। नदी उमड़ी आ रही थी, कूल उसे सम्हाल नही

पा रहे थे। उसे रिसालेके साथ पार करना कुछ ठठ्ठा नही था जब बॉका लडाका पुरु मौत और सिकन्दर दोनोको ललकार रहा था। दिनो पैतरेबाजी होती रही, राह न मिली। सप्ताह बीते, पर मौका हाथ न आया। सिकन्दर रातके अन्धेरेमे नदीके उतार-चढावकी ओर फिरा करता कि कही अवसर मिले और वह झेलम डाक जाय।

जब मर्दानगी चुकी तब उसने राह चुरानेपर कमर कसी, और एक रात उसे अवसर मिल ही गया, राह भी मिल गई। सोलह मील चढावपर ओहिन्दके पास नदी टेढी हो गई थी। वहाँ जंगलोसे ढका नदीके बीच एक टापू भी था। अब मौका चाहिए था। भादोकी रातमे भला उसके मिलनेमे क्या देर ?

भयानक अँधेरा, सुईसे छिद जाय, ऐसा घना अँधेरा कि अपना हाथ भी न सूझे। मूसलाधार मेह बरस रहा था। काला आसमान धुआँधार ज़मीनपर गिरा आ रहा था। सिकन्दर ११,००० चुने हुए सवारोके साथ चुपचाप निकल पडा पडावसे। पडावमे क्रातरस् अपनी फ़ौजके साथ जशन करता रहा जिससे नदी पारका दुश्मन धोखेमे रहे, जाने कि यूनानी बरसात तक वही ठहरना चाहते हैं। क्रातेरस् और सिकन्दरके बीच मिलीगर अपनी सेना लिये विश्वविजयीके इन्तज़ारमे बैठा।

और विश्वविजयी रातके अँधेरेमे ओहिन्दके टापूके जगलोके सहारे, बरसते मेह और अँधेरेके सहारे, उस पार उतर गया। इतिहासकार एरियनने लिख दिया—'सिकन्दरने राह चुराई !' और सिकन्दर जब-जब सोता, रात सॉय-साँय करने लगती, तब-तब गौगामेलाकी उसीकी आवाज उसके कानोमे व्यंग करती फुसफुसा उठती—'पर्दिकस्, सिकन्दर जीत चुराता नहीं लडकर लेता है !'

इन्सानियतका पहला दावेदार !

इन्सानियतका वह पहला दावेदार अशोक था। पहली बार उसने नीतिकी पुस्तकोंका आदर्श अपने आचरणमे व्यक्त किया। उनके घातक आदर्शोको त्याग उसने मानवके उन्नयनके आदर्श खोजे, उनका प्रचार किया।

जमाना खून-खराबेका था। संसारमे राजाओकी एक ही ताकत थी, तलवार, एक ही नीति थी, दिग्विजय। सिकन्दरका मनुष्यकी हड्डियोसे, रक्तके गारेसे, खडा किया साम्राज्य टूट कर बिखर रहा था। मीरियाका साम्राज्य अपनी आखिरी साँसें ले रहा था, ईरानी राष्ट्रीय आन्दोलनने पार्थवोंको स्वतन्त्र कर दिया था, बाख्त्रीका वक्षुवर्ती प्रान्त बागी हो गया था। चीन जितना उत्तरी खूँखार जातियोकी चोटसे खून उगल रहा था, उतना ही गृह-युद्धोसे तबाह था। महान् दीवारका वह निर्माता अब उस धरापर उतरने ही वाला था जिसने चीनकी जमीन तो रक्तसे रँग ही डाली, उस देशकी सहस्राब्दियो पुरानी पोथियोको भी आगकी लपटोमे स्वाहा कर डाला। समस्या तबके ससारमे एकमात्र तलवारसे हल की जाती थी।

पर अशोकने तलवार तर्क कर दी। मानवोके पारस्परिक सम्बन्धमे उसने मानवीय सिद्धान्तोंका प्रसार किया, क्रोधको क्षमासे जीता, घृणाको प्रेमसे। स्वयं उसने जिस संसारको आरम्भमे पाया था वही रक्तरजित संसार था, वन्य जन्तुओके संस्कार जिसकी नीतिके आदर्श थे। अशोक स्वयं अनेक भाइयोंको मार लहूसे लाल गद्दीपर बैठा था। उसकी वाहिनी भी अन्य राजाओकी भाँति ही 'अनधिगत'के 'अधिगमन'के लिए चली। पिता-पितामहने बहुत कुछ उसके लिए जीतकर रख दिया था।

केवल कलिग स्वतन्त्र था जो तरुण राजाकी नजरपर चढ कर खटकने लगा। जब उसकी विशाल सेनाने महानदीके काँठेपर हमला किया तब कलिगके वीर निवासियोने जमकर उसका मुकाबला किया। भयानक नर-संहार हुआ। एक लाख कलिगके आजादीपरस्त सूरमा खेत रहे, डेढ लाख कैद कर लिये गये। इस संख्यासे कई गुना लडाईके सर्वग्रासी बीमारियोंके शिकार हो गये।

अशोकका हृदय इस भयंकर हत्याकाण्डसे घबड़ा उठा। विजयोकी राजनीतिसे वह विरत हो गया, तथागतका प्रेममार्ग उसके अभियानका पथ बना और यह अभियान ऐसा जैसा अब तक की राजनीतिमे अनजाना था। उसने कहा, अब दिग्विजयके लिए भेरीघोष नही होगा। धर्मविजयके लिए धर्मघोष होगा। साम्राज्यमे सभी प्रजा बराबर अधिकारसे प्रेमपूर्वक बसेगी, उसके सुखके लिए राजा वैसे ही प्रयत्नशील होगा जैसे अपने पुत्रों-पौत्रोंके लिए। उसके फैले 'विजित'मे सम्प्रदाय घृणारहित प्रेम भावसे परस्पर आचरण करेगे।

प्रेम ओर सहिष्णुता भरे उसके उपदेश शिलाओंपर, पत्थरके खम्भोंपर खोदकर युद्धके पुराने मोर्चोपर, भारतकी सीमाओपर, भीतरके नगरोमे, घनी आबादियोमे भटकते मानवोके मार्ग-प्रदर्शनके लिए खड़े कर दिये गये। बन्धुत्वके नारे हवामे उठे, चिकित्साने पशु-मानवको व्याधिमुक्त किया।

सदियो ग्रीस और मकदूनियामे ईरानी विजयके बदलेकी आग लोगोके दिलोमे सुलगती रही थी। लोग उसी पराजयकी शपथ खाते, बदला लेनेकी प्रतिज्ञा करते, इतिहासकार उन्हे घटनाओके ज्वलन्त निरूपणसे बदलेके लिए जगाये रखते। सिकन्दर जो वहाँसे आँधीकी तरह उठा तो उसका रोम-रोम बस एक आवाजसे आकुल था, ईरानसे बदलेकी आवाजसे, दारा और क्षयार्षाकी औलादको इस धरासे उखाड़ फेंकनेकी आवाज़से। और उसने दारा-क्षयार्षाकी औलादको गौगामेलाकी लड़ाईमे कुचलकर ग्रीसके

वीरोके अपमानका बदला लिया। ईरानकी राजधानी पर्सिपोलिसको, उसके रत्नभरे भवनोको आगकी लपटोको सौप एथेन्सके विध्वसकी याद मिटाई, उसके बुलन्द·खम्भोको जमीदोज कर दिया।

बदलेकी भावना स्वाभाविक है, सबको होती है, अशोकको भी शायद हुई। पीढियो पहले इसी सिकन्दरने पजाबकी चप्पा-चप्पा जमीनको कुचला था। उस जमीनकी रक्षाके लिए आजादीके दीवानोने अनसुनी कुर्बानियाँ की थी। पुरुने, पिप्रमने, कठोने, मालवोने, अग्रश्रेणियोने, शिबियोने, ब्राह्मणोने। शारदाकी जिह्वा थक जाय उनके नाम गिनते जिन्होने भारतकी इंच-इच जमीनपर माराथान और थर्मापीलीके मैदान रचे थे। बदलेकी भावना स्वाभाविक थी और उसे रूप देनेमे अशोक चूका नही। उसके माध्यमसे भारतने ग्रीकोसे, उनके पाँचो राज्योमे प्रभूत बदला लिया। उनकी जमीनसे उसने दुश्मनीकी जहरीली पौध उखाड़कर उसकी जगह मुहब्बतकी पौध लगाई, भाईचारेका फूल उस पौधेपर मलयानिलमे डोलती उसकी टहनियोपर झूम उठे। यह बदलेका नया तरीका था, दुनियाका अनजाना—'तू मुझे काँटे बो, मै तेरी राह फूल बोऊँगा!'

अशोकने पाँचो ग्रीक राज्योमे—मकदूनियामे, सीरिया (अन्तिओक) मे, एपिरसमे, मिस्रमे, सिरीनमे—पशु-मानवोंकी चिकित्साके लिए औषधियाँ लगवायी। शत्रुओने दाँतोतले उँगली दबा ली। सिकन्दर आग और तलवार लिये भारत आया था। अशोकने दूत औषधि और शान्तिकी अमरबेलि लिये मकदूनियामे घुसे। पच्छिमने संहारके साधनोसे भारतको प्रनष्ट करना चाहा था, अशोकने उसी पच्छिमको जीवनके अमर साधनोसे भेटा।

तथागतका यश देश-देशमे फैल चुका था, अशोकके भ्रातृ-सन्देशने दूरकी जनतामे विवेक और प्रेमकी साँस फूँकी थी। तीसरी संगीतिके धर्म-दूतोने एशियाके कोने-कोने तक परुषको मृदुलसे, घृणाको प्रेमसे, क्रोधको क्षमासे जीता था। अशोक दूर उस मगधके हृदय पाटलिपुत्रमे अभितृप्तिकी

साँस लेता था जिसके आतंकने व्यासके किनारे सिकन्दरकी राह रोक दी थी, जिसके डरसे ग्रीक वाहिनीने वहाँ हथियार डाल दिये थे।

परन्तु वह पाटलिपुत्र अब नन्दोके आतंकका केन्द्र न था। उससे अब उस प्रशान्त शीतल कौमुदीकी आशा छिटकती थी जिसके स्पर्शसे चराचर शान्ति और सन्तोष लाभ करता था। अशोक वृद्धावस्थामे था। उसके अद्भुत कर्म उसकी कीर्ति दिगन्तमे फैला रहे थे, उसके अभिलेख शिलाओ, स्तम्भों द्वारा उसका नाम अमर कर रहे थे। उसका 'विजित' बड़ा था। उसका यश उसमे न समा सकनेवाला, उससे भी बडा था, और जब वह अपने जीवनकी विगत मजिलोको मुड़कर देखता तब सुनहले प्रकाशकी लीक-सी उसे दीखती जिसमे एक धब्बा न होता, शर्मकी एक स्याह लकीर न होती। सन्तोषसे अशोककी छाती फूल उठती।

देशमे महान्, विदेशमे महत्तर अशोककी आज्ञा अनुल्लघनीय थी। भला कौन उसकी भावनाओको टोक सकता? कौन उसके संकेतका अपमान करता? युद्धोकी मारी मानवताका पजर फिर भर गया था, चोटसे विकल मानवोके व्रण भरे जा रहे थे। पृथ्वी ऐसे स्वामीको पाकर राजन्वती हुई थी। फिर कौन ऐसा अभागा था जो अशोकके आदेशोकी उपेक्षा कर अपजसका भागी बनता?

तभी एक घटना घटी जिसने नीतिकी राहमे एक नई मंजिल खडी की। पाटलिपुत्रके नये बौद्ध महाविहारको अशोकने असीमित धन दान किया। सद्धर्मके इतिहासमे यह अनुपम दान सोनेके अक्षरोमे लिख लिया गया। सिहल-नेपालमे, कश्मीर-उद्यानमे, तुखार-गोबीमे सर्वत्र श्रमण-चारण इस दानकी महिमा गाने लगे। महाविहारके महास्थविरने तब अशोकसे उस दानका धन माँगा। अशोकने धर्ममहामात्रकी ओर देखा, धर्ममहामात्रने सन्निधाताकी ओर। सन्निधाताकी कुञ्जियोके गुच्छे राजनिधिकी रत्नपेटिकाएँ खोल देनेके लिए उसकी कटिमें फड़क उठे।

पर किसीने राजनिधिके द्वारपर प्रहरी नियुक्त कर दिये थे। सन्निधाताने देखा, प्रहरियोके पास युवराज सम्प्रतिके आज्ञापत्र थे। सन्निधाता सहम गया। उसने कुजियोके गुच्छे सम्हाल लिये। इस बीच मगधके साम्राज्यमे कुछ हो गया था। महामन्त्री राधगुप्त और सम्प्रति युवराज उसके कारण थे।

युवराज सम्प्रति प्रमदवनमे चिन्ताकुल टहल रहा था, जब महामन्त्री राधगुप्त स्वयं चिन्ताकुल वहाँ पहुँचा। राधगुप्तको देखते ही सम्प्रतिने पूछा—'सुना, आर्य ?' 'सुना, युवराज', राधगुप्त बोला। 'फिर ?' 'फिर औचित्यका निर्वाह !' 'अथात् ?' 'अर्थात्, राजनिधिपर पहरा।' 'और गुरुजन, पितामह, सम्राट्के शासनका उल्लघन-दोष ?' 'वह इस कर्तव्य-परिधिके बाहर है, युवराज ! प्रजाकी परिधि उससे बडी है, उसके रजनका मान उस शासनसे कही व्यापक है, और मात्र तुम उसकी रक्षाके उचित साधन हो। सम्राट् कार्यविधायक मात्र है, निधिके स्वामी नही, महाविहारके प्रति उनकी श्रद्धा वैयक्तिक है, प्रजाकी निष्ठा उस दिशामे विविध है, परस्परविरोधी। दान अवैधानिक है। उसे व्यवहारत· (कानूनन) रोक सकते हो, रोक दो, राष्ट्रके हितके लिए।'

दान सम्प्रतिने रोक दिया। राजनिधिकी पेटिकाओपर युवराजके ताले पड़ गये। सन्निधाता चुप हो रहा। महास्थविरने सम्राट्के समीप निवेदन किया। अशोकके नासापुट फडक उठे, आँखोसे आग बरसने लगी। वह सभाभवनसे उठकर महलके भीतर चला गया।

कुछ काल बाद समझमे आया, उसका दान शक्तिके बाहर था, उसकी चेष्टा अनधिकारीकी थी। पर शक्ति झुँझला रही थी, मनको ग्लानिसे भर रही थी। अनुल्लघनीय शासनवाला राजा स्थितिको समझ गया, सही, पर उसके गर्वको ठेस लगी। दु खी रहने लगा; न किसीसे बोले न चाले।

एक दिन प्रमदवनमे चुपचाप बैठा आमलक खा रहा था। अपनी

उसी शक्तिविरहित स्थितिको गुन रहा था, दान न दे सकनेसे कुख्यातिसे दबा-दबा। आँखे डबडबा आई थी। तभी महामन्त्री राधगुप्त आ पहुँचा। सम्राट्ने उसके अभिवादनका उत्तर न दे, पूछा—'राधगुप्त, सम्राट् तुम हो या मै?' 'सम्राट् आप है, देव, दूसरा कौन?' 'मुझे तो, राधगुप्त, यह खाया हुआ आधा आमलक तक इच्छानुसार किसीको दे सकनेका अधिकार नही!'

आँखोमे टँगे आँसू ढुलक पडे।

मालवोंका वह जानलेवा तीर !

ससारकी बहुत कम जातियोने अपने देशके इनिहासपर इतना प्रभाव डाला है जितना मालवोने भारतपर। मालव रावीके दोनो ओर पंजाबमे बसनेवाले किसान थे। भारतीय इनिहासमे उनका लोकतन्त्र जितना प्रसिद्ध हो गया है उतना शायद और किसीका नही। मालवोंका गण अत्यन्त प्राचीन था। चन्द्रगुप्त मौर्य और साम्राज्यवादी चाणक्यकी ध्वस-नीतिसे क्षुब्ध होकर वे पजाब छोड पूर्वी राजपूतानेकी राह दक्षिण चले। जयपुर और अलवरके इलाकोसे होते हुए वे मध्य भारतमे अवन्ती पहुँचे, शकोके साथ उनकी भीषण मुठभेड हुई। उनके गणनायक विक्रमने शकोको अवन्तीसे निकाल विक्रम-संवत् चलाया।

वही बसकर मालवोने अवन्तीको अपना मालवा नाम दिया। उन्ही मालवोकी यह प्राचीन कहानी है, जब मालव रावीके दोनो तटपर बसते थे, जब सारे पजाबके गणराज्य आदर्शके लिए उनकी ओर देखते थे। मालव आजादीके दीवाने थे, कभी किसीके शासनमे न रहे। ससारमे उनकी-सी जाति न थी। एक हाथमे हँसिया दूसरेमे वे तलवार धारण करते थे। शान्ति और स्वतन्त्रता उनके स्वप्न और सत्य थे।

सिकन्दर ब्याससे मन मारे लौटा था, झुँझलाया हुआ। उसकी सेनाने आगे बढनेसे इन्कार कर दिया था और बरबस उसे लौटना पड़ा था और अब सामना जो पडा तो उन मालवोंसे जो ग़जबके लडाके थे, दिलेरीमे बेजोड़। उनकी वीरताकी भी देशभरमे धाक थी और जब तक सेना रावीके तटपर पहुँची उसपर मालवोंका डर छा गया था। उसने फिर सिकन्दरको कोसना शुरू किया। उसने समझा, सिकन्दर उन्हे धोखा दे रहा है। लड़ाई उसने जारी रखी है, महज मोरचा बदल दिया है।

सिकन्दरने जो देखा कि व्यासकी कहानी दुहराई जानेवाली है तो उसे बडी घबडाहट हुई, क्योकि अब न लडना मौतके मुँहमे जाना था। उसने सेनाको एकत्रकर कहा, 'मेरे ऊपर दया करो और मुझे इस मुल्कसे इज्जत-आबरूके साथ लौट जाने दो, भगोडेकी तरह भागनेको मजबूर न करो।' सेनाने जाना कि आखिर लौटना सिकन्दरके ही नेतृत्वमे है इससे उसका निर्णय मानना ही श्रेयस्कर होगा। एक व्यक्तिकी तरह सारी सेना विजेता-के सकेतपर कार्य करनेको सन्नद्ध हो गई।

उधर मालवगणने सिकन्दरसे लड़ना निश्चय किया। क्षुद्रकोंका महान् गण उनका पड़ोसी था। मालव और क्षुद्रक एक दूसरेके प्रबल शत्रु थे, प्रकृत बैरी। पर इस समान विपद्मे उन्होने मित्रवत् आचरण करनेका निर्णय कर लिया। अपने सम्बन्धको और दृढ बनानेके लिए उन्होने वह किया जो दुनियाके इतिहासमे अपना सानी नही रखता।

दोनों गणोने निश्चय किया कि दोनोके अविवाहित तरुण दोनोंकी अवि-वाहिता तरुणियोसे विवाह कर ले जिससे पुराने झगडे मिट जायँ, जिससे मालवोके हर घरमे क्षुद्रकोकी कन्या स्वामिनी हो। सम्बन्ध करते देर न लगी और घडियोंमे सदियोका बैर भुला दोनो एक हो गये।

सिकन्दरके देशी-विदेशी भेदिये दोनो गणोके भेद लेनेमे व्यस्त थे। भेदियोकी कमी न थी। स्वयं निर्भीक लडाका पुरु सिकन्दरका मित्र बन गया था। उसीकी सहायता और देशद्रोहितासे विजेता कठोंको कुचल सका था। भेदियोकी कमी न थी।

सिकन्दर टोह लेता रहा। मालव और क्षुद्रक सेनाएँ एक दूसरेसे मिलकर देशके शत्रुसे लडनेवाली थीं। पर सिकन्दरने बड़ी होशियारीसे काम लिया। उसने खबर फैला दी कि अभी कुछ काल वह विश्राम करेगा। मालव और क्षुद्रक दोनो ही सेनाएँ सुस्त पड़ गईं। क्षुद्रक घर ठहरे रहे, मालव अपने खेत काटनेमे लगे। सिकन्दरने सोचा, जहाँ दोनों

मिले कि उसकी सेनाका सत्यानाश हुआ । उनको किसी तरह मिलने न दिया जाय ।

चुपचाप वह मौका देखता रहा । जैसे ही क्षुद्रक शिथिल पडे वैसे ही उसने खेतोमे काम करते मालवोपर भयानक हमला किया । क्षुद्रक बढे पर समयपर पहुँच न सके । सिकन्दरकी यही तो चाल थी, दोनोको अलग-अलग हराना । वह निहत्थे मालवोपर उनके खेतोमे जा टूटा । बडी हत्या हुई, क्योकि मालव युद्धसे भागना न जानते थे और नहीं भागनेका मतलब था उस नर-सहारमे प्राणोकी आहुति । जो खेतोमे नही थे उन्होने पासके नगरमे शरण ली । गली-गलीमे युद्ध ठन गया । सब मारे गये, क्योकि बन्दी होना उन्हे स्वीकार न था ।

अगला मोर्चा ब्राह्मणोके नगरपर पडा । सिकन्दरकी राह इतनी शक्तिसे शायद ही कही रोकी गई हो । शास्त्रका आचरण करनेवाले ब्राह्मणोने शस्त्र धारण किया और सिकन्दरकी सेनाके साथ चलनेवाले ग्रीक दार्शनिकोने देखा कि भारतीय पुरोहित उसी निष्ठासे तलवार भी पकडते है जिस निष्ठासे शास्त्रीय ग्रन्थ । पर उससे भी बढकर उन्हे अचरज तब हुआ जब उन्होने आत्मसमर्पण करनेसे इन्कार कर दिया । बन्दी होना जो उन्हे मान्य न था तो स्वाभाविक ही स्वतन्त्रताका मँहगा मूल्य चुकाना पड़ा। प्राण देकर उन्होने अपनी मर्यादाकी रक्षा की । सिकन्दरने अनेक बार भारतमे नारियोंको लडते देखा था, मस्सगमे, सगलमे, दूसरे नगरोमें । पर वहाँ अनेक नारियाँ कैद हो गई थी । यहाँ, मालवोमे रीति और थी, वैरीको आत्मसमर्पण न करने की । सो लाशपर लाश गिरती गई, नरोकी, नारियो-की, बालकोंकी । मालव सर न हुए ।

सिकन्दरने तब उनके झग और मण्टगुमरी जिलोंकी सन्धिपर खडे प्रधान नगरपर हमला किया । ऐसा भीषण युद्ध, ग्रीकोका भारतमे न हुआ था । सिकन्दरकी विजयोके क्रममे कही इतनी जुझाऊ लडाई न लड़ी गई थी । नगरको जीतना असम्भव हो चला । जानपर खेलकर मालव

अपनी आजादीकी रक्षा कर रहे थे। ग्रीकोंका जीवन इस जीतपर ही निर्भर था, वरना लौट सकना असम्भव था, इससे वे भी जानपर खेल रहे थे। सिकन्दरके सारे सरदार दुर्गपर चढनेका प्रयत्न कर चुके थे पर मालवोंकी जवाँमर्दीसे सारे प्रयत्न निष्फल हुए जा रहे थे।

अब सिकन्दर स्वयं प्राचीरोपर चढा। हज़ारो तीरोका वह लक्ष्य था। पर उसकी फुर्तीने गजब ढाया। परकोटेपर वह अकेला जा चढा। फिर तो ग्रीक सेनाने भी वह दिलेरी दिखाई जो असाधारण थी। एक-एक सैनिक जानता था कि उसका जीवन नेताके जीवनपर ही निर्भर करता है, एक-एक सैनिक परकोटेपर जा चढा। पर अब तक जो होना था वह हो चुका था। सिकन्दरको तीर लग चुका था। मालव गणनायकका तीर था, सर्वथा अचूक, सिकन्दरका ताँबेका वर्म छेदता छातीमे जा घुसा था।

अब लडाई केवल जीतके लिए नही, बदले और जानके पीछे लड़ी जाने लगी थी। कोई किसीपर रहम न करता, न कोई किसीसे शरण माँगता। दोनो ओरसे नर-संहार हो रहा था। ग्रीक सैनिक दुर्गके भीतर बाहर सर्वत्र सशस्त्र और निहत्थे दोनोपर प्रहार कर रहे थे। उनके लिए नर-नारी-बालकमे कोई भेद न था।

लडाई चलती रही, पहरों। मालव नगर मिट गया। उस नगरमे, उस दुर्गमे एक प्राणी जीवित न बचा—न नर, न नारी, न बालक। पर सिकन्दर भी अछूता न बचा। जर्राहने बडी हिम्मतसे उसका तीर खीचकर घावपर मरहम लगा दिया। पर घाव वह संगीन ही न था, मरणान्तक था। सिकन्दरको बुखार हो आया। और कहते है कि कुछ काल बाद बाबुल नगरमे जब वह मरा तब अधिकतर उस मालव चोटके ही फितूरसे।

सुगतकी सत्ता

१

अलारकालामका आश्रम विपुल था। ब्रह्मचारियोकी सख्या विपुल थी। ज्ञानका घटाटोप विपुल था। पर वहाँ गौतमके प्रश्नका उत्तर न था। मानव दुखी क्यो ? तारुण्यका अन्त क्यो ? जरा क्यों ? मरण क्यो ?

चला गया भिक्षु वह आश्रम छोड, सम्बोधीकी खोजमे।

उद्दक रामपुत्त तर्कका अकाट्य पण्डित था। उसके आश्रममे हजारो जिज्ञासु अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करते थे। भिक्षु भी वहाँ अपनी प्यास मेटने जा पहुँचा। बताये नियमोके अनुसार उसने विचारोका विश्लेषण आरम्भ किया। पर तर्कसे तर्ककी महिमा बढ़ी, गाँठपर गाँठ लगती गई। जिज्ञासा न मिटी। प्रश्न ज्योके-त्यो बने रहे—मानव दुखी क्यों ? तारुण्यका अन्त क्यो ? जरा क्यों ? मरण क्यो ?

हजारो भिक्षु-ब्रह्मचारियोका वह जनमकुल कानन गौतमको सर्वथा सूना जान पडा। परम्पराका उत्तर उसके मनको न लुभा सका। चला वह सम्यक् सम्बोधीकी खोजमे। राजगिरके दखिन पहाड़ियोकी शृङ्खला थी, उस शृङ्खलाके पार गयाका महाकान्तार था, दूर तक फैला गहन वन। गौतम चला उसी दिशामे।

गयाकी पहाड़ियाँ वह लाँघ गया। महाकान्तारके उस हिंस्र जन्तुओसे भरे वनको उसने अपना आवास बनाया। अब उसका लक्ष्य एक ही था—तपकी साधनासे ध्येयकी प्राप्ति। आसन मार यती निरंजनाके तटपर उरुबेलाके निकट बैठा। अन्नका त्याग, आहारका त्याग, काल पर्यन्त जलका त्याग—घोर तपका जीवन उसने अपनाया। काया ढह चली।

रागकी परिधियाँ संकुचित हुईं। इन्द्रियाँ अपने विषयोकी दिशासे मुड़कर अन्तर्मुखी हुई। चेतना सज्ञा खो बैठी। विवेक, सत्-असत्का ज्ञान जाता रहा।

पेट पीठसे जा लगा। शरीरकी त्वचा हड्डियोसे झूल गई। यतीने उफ् नही की। पर उसके प्रश्नोंका उत्तर फिर भी न मिला। और चेतना पगु हो चली। सदसत्का विवेक जब जाता रहा तब सम्बोधीका जटिल मार्ग कैसे सुलभ होगा? प्रज्ञा किस प्रकार सत्यका दर्शन संज्ञाके अभावमे करेगी—यती न समझ सका।

एक दिन तपसे क्लान्त जरजरदेह यती निरंजनाकी बालुकामे म्लानमना बैठा था, सर्वथा विमन। प्रयाससे थका जीवनसे हारा, निराश। तभी गाँवकी दिशासे कुछ हलचल-सी सुन पड़ी। यतीने जाना कि यद्यपि इन्द्रियोकी शक्ति क्षीण हो चली है, अभी सर्वथा मरी नहीं, क्योकि कान अभी सुन लेते है, चित्त अभी अपनी वृत्तियोंकी ओर झुक पडता है। अभी सर्वथा निराशाका स्थान नही।

गाँवसे आती हुई आवाज अनेक प्राणियोकी थी, मधुर गीत-वाद्यकी, कुछ देर बाद ध्वनि स्पष्ट हुई। गौतमने नेत्र खोल दिये, कान कबके खुले थे। देखा—उरविल्वकी नर्तकियाँ मार्गमे नाचती जा रही हैं। उनकी मुद्राएँ अभिराम उठती गिरती हैं। उसने सुना, उनके गायनका स्वर—वीणाके तारोंको बहुत न खीचो, नहीं तो वे टूट जायँगे, और देखो, उन्हे बहुत ढीला भी न करो, नही वे न बजेगे।

ऐ! गौतमका रोम-रोम जैसे उस ध्वनिको पीने लगा—वीणाके तारोको बहुत न खींचो, नही वे टूट जायँगे, और देखो उन्हे बहुत ढीला भी न करो, नही वे न बजेंगे।

प्रकाशकी लपट-सी मनमे उठी सारा तम छँट गया। अन्तर आलोकित हो उठा। अत्यन्त विलास अत्यन्त तपके बीचका मार्ग सूझ गया।

मध्यम मार्ग मज्झिम पटिपदा—न अत्यन्त विलासका न अत्यन्त क्लेशका। मानस थिरक उठा।

तपकी तपनसे जला, यम-नियमसे कातर शरीर फिर सत्यके स्पर्शसे जी उठा। निरञ्जनाकी क्षीण धारामे उसने वर्षोका बटुरा मल शरीरसे धो डाला। अकिंचन काया अब स्निग्ध सत्यके प्रकाशमे चमक उठी थी। वृक्षके नीचे प्रसन्न बदन भिक्षु कायिक यातनासे मुक्त सन्तुष्ट बैठा। सुजाता उसकी देव चेष्टासे आकृष्ट हुई। पायसका थाल उसके सामने रख दिया। यतीने देवताओका वह मधुर आहार लिया। तृप्त कायामे चित्तकी प्रकृत चेष्टा लौट आयी। उस बेलाकी नर्तकियोका स्वर-संकेत बार-बार कानोमे गूँजने लगा—वीणाके तारोको बहुत न खीचो नही वे टूट जायँगे, और देखो, उन्हे बहुत ढीला भी न करो, नही वे न बजेगे।

२

चला जा रहा था महाभिक्षु राजमार्ग पर। गड़रिया अपने ढोर उसी राह राजद्वारकी ओर हाँके लिये जा रहा था, बकरे, भेडे। भेडोका चलना विशेष प्रकारका होता है। झुके सिर, मुँदी-मुँदी सी आँखे, सिर अगली भेडोके शरीरमे धँसे हुए, शरीर एकमे एक, सारी भीड एक जिस्म। देर तक भेड़ोका चलना देखा जा सकता है। भिक्षु भी देखता रहा। उसे उसी ओर जाना था जिससे वह देखना स्वाभाविक सा हो गया था। कुतूहलके साथ चुपचाप वह उन्हे देखता जा रहा था।

अचानक एक बार आँखें एक ओर टिक गईं। पहले भ्रम-सा हुआ, फिर देखा। ना, वह भ्रम न था। एक मेमना उस भीडमे लँगडा-लँगड़ाकर चल रहा था। भेड़ोकी भीड़ उसे घसीटे लिये जा रही थी, पर भीडका सहारा भी देर तक उसे न ले जा सका। पैरमे शायद कुछ कष्ट था, रह-रहकर मेमना दर्दकी ध्वनिसे कराह उठता। धीरे ही धीरे वह अगली कतारोसे पिछलीमे आया और अब और पीछे, और पीछे छूट चला, गड़-

रिया उसे अपने डण्डेसे खोदता, मारता, पर उसकी चाल तेज न हो पाती। वह रह-रहकर चीख उठता।

भिक्षुसे अब न रहा गया। आगे बढकर उसने उसे उठा लिया, बोला—"गडरिये, तू चल। इधर ही मै भी चल रहा हूँ, इसे उठाये चलूँगा।"

"अच्छा भन्ते," गडरियेने कहा, "पर भेडे तो ऐसे चलती ही है। उनके कभी काँटे लगते है, कभी चोट लगती है फिर वे ठीक भी हो जाती है।"

पर भिक्षु कुछ बोला नही। प्यारसे कुछ क्षण वह मेमनेको निहारता रहा। फिर वह उसे कन्धेपर रख गडरियेके साथ चल पडा। उसे लगा एक स्थलपर सहलानेसे मेमनेका कराहना बन्द हो जाता है। भिक्षु उस स्थानपर सहलाता चला। उसके नेत्रोमे समवेदनाके आँसू उमड आये।

गडरिया रह-रहकर भिक्षुकी ओर देखता, कुछ मुसकराता, और चल पडता। भिक्षुमे गजबका आकर्षण था, ऊँचा दिव्य शरीर, उन्नत मस्तक, अभिराम दर्शन। दर्शकका सिर अपने आप उसके सामने झुक जाता। पर निश्चय गडरियाकी चेष्टा इतनी श्रद्धाकी न थी जितनी विनोदकी थी। भिक्षु-ने उसकी चेष्टा देख पूछा—"क्यो गृहस्थ, मेमनेके दुःखसे द्रवित होना क्या विनोदकी वस्तु है?" "नही भन्ते", गडरिया तुरन्त बोला, "उसमे विनोद या विस्मयकी कुछ बात नही। मै तो केवल यह सोच रहा था कि जिसे मेमनेका लँगडाना देखकर इतनी दया उमड पड़ती है उसे उसका निधन कैसे सह्य हो सकेगा और एकका भी नही, इतनी भेड़ोका, इतने बकरोका?"

"मतलब?" भिक्षुने पूछा।

"मतलब कि पशु ये बलिदानके है" गडरिया बोला। "महाराज अजातशत्रु प्रायश्चित्तके लिए महासत्र कर रहे है, एक लाख पशुओकी बलि

होगी। ये सारे भेड-बकरे वही लिये जा रहा हूँ जहाँ चारो दिशाओसे पशु हाँके जा रहे है। थोडी देरमे ये सभी जीव देवताओकी पूजामे चढ जायँगे, सभी भेडे, सभी बकरे, वह मेमना भी।"

भिक्षुने कुछ उत्तर नही दिया। चुपचाप सुनता-सा भेडोके पीछे-पीछे चलता रहा। जाना उसे कहीं और था, अब वह उसे भूल अजातशत्रुके महासत्रकी ओर चला। अजातशत्रु और उसके पिता बिम्बिसार दोनो तथागतके जाने हुए थे। पुत्रने पिताको कष्ट देकर मार डाला था। उसी पापका वह आज प्रायश्चित्त कर रहा था, इस महासत्र द्वारा।

तथागतने यज्ञके प्रागणमे जाकर देखा, हजारो पशु यूपोसे बँधे हुए है। दीक्षित राजा पीताम्बर पहने यज्ञशालामे बैठा है। तथागतको देखते ही वह उठ खडा हुआ। आशीर्वचन बोल तथागतने पूछा, "यह पशु-समारोह कैसा, राजन्?"

सिर झुकाये राजा बोला—"पापका शमन प्रायश्चित्तमे होता है, तथागत। उसी प्रायश्चित्तका अनुष्ठान अनन्त बलिदानसे कर रहा हूँ, भन्ते।"

"फिर सुगतकी ही बलि क्यो नही देते?" तथागत बोले। "सम्यक् सम्बुद्ध वहाँ पहुँचकर धर्मराजके सामने तुम्हारे पक्षमे कुछ बोल भी सकेगा, ये निरीह अजिह्वा पशु भला क्या कर सकेगे?"

अजातशत्रु चुप था। महायात्रीकी दया उससे छिपी न थी।

तथागतने भूमिपर पडा एक तिनका उठा लिया। राजाकी ओर उसे फेक उसने कहा, "राजन्, इस तिनकेको तनिक तोडो तो।"

राजाने कुतूहलपूर्वक तथागतकी ओर एक बार देखा फिर चुटकीके कम्पनमात्रसे तिनकेके दो खण्ड कर दिये। फिर जो भिक्षुकी ओर उसने अर्थके लिए देखा तो भिक्षु बोला—"अब तनिक इन टुकडोको जोडकर पूर्ववत् तो कर दो।"

राजा हतप्रभ चुपचाप तथागतकी ओर देखता रहा।

तथागत बोले—"राजन्, जो मृत तिनकेके टुकडोको नही जोड सकता उसे जीवित हजार पशुओका सन्धि-विच्छेद कर बलि देनेका क्या अधिकार है ? यज्ञ बन्द करो। प्रायश्चित्त मनका संस्कार है। आर्य सत्योको जानो, अष्टागिक मार्गका आचरण करो।"

यज्ञ बन्द हो गया यूपोसे बँधे पशु स्वतन्त्र हो गये।

३

कोसलके राजमे अगुलिमाल डाकूका आतक छा गया था। राजा प्रसेनजित् सब जतन करके हार गया था पर डाकू सर न हो सका। उसका अत्याचार बन्द न हुआ। राज्य उजड चला। अंगुलिमाल वनसे अपने आततायी साथियोके साथ निकलता और नगरोंको लूट लेता, गाँवोंको उजाड़ डालता। फिर चुपचाप श्रावस्तीके महावनमें जा छिपता। स्वय राजधानी चौबीस घण्टे सन्त्रस्त रहने लगी। किसीका जीवन खतरेसे खाली न था। वनकी ओर तो कोई भूलकर भी न जाता, जाने भी न पाता। राजाने उस मार्गपर पहरा बैठा दिया था क्योकि अगुलिमाल अनेक हत्याएँ कर चुका था, करता जा रहा था। उसने हज़ार हत्याएँ करनेका प्रण कर लिया था। जब किसीकी वह हत्या करता, स्मरणके लिए उसकी एक अंगुली काटकर गलेकी मालामे गूँथ लेता। अंगुलियोकी एक भयानक माला ही बन गई थी। इसीसे डाकूका नाम ही अगुलिमाल पड़ गया था।

संघके साथ जब बुद्ध श्रावस्ती जाकर ठहरे तब राजाने उनसे अगुलि-मालके भयानक उत्पात और प्रजाके अमित कष्टकी बात कही। बुद्धने कुछ उत्तर नही दिया पर दूसरे दिन वे वनके मार्गकी ओर चल पड़े। वनके निकट पहुँचनेपर प्रहरीने उनकी राह रोकी। कहा, "तथागत, उधर विकराल अंगुलिमालका निवास है। वनका मार्ग छोडकर पधारे।"

तथागत हँसे, चुपचाप अपने मार्गपर बढते चले गये। अमनुजकर्मा तथागतकी शक्तिपर भला प्रहरीको कैसे सन्देह होता, उसने राह छोड़ दी।

तथागत घने वनके अन्तरालमे जा घुसे । कुछ घण्टे चलनेके बाद एकाएक किसीने पुकारा—"ठहर जा !"

तथागत ठहरे नही । तरु-लताओके बीच हाथसे राह बनाते चुपचाप चलते रहे । फिर जोरसे दारुण पुकार सुन पडी—"ठहर जा !"

तथागत ठहर गये । जिस दिशासे आवाज़ आई थी उधर देखने लगे । क्षण भरमे भीषण साथियोसे घिरा धनुष-बाण लिये अंगुलियोकी माला पहने क्रूरदर्शन अंगुलिमाल सामने आ खडा हुआ । पर जो तथागतकी प्रशान्त मुद्रा और मुखमण्डलपर खेलती मुसकान उसने देखी तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा ।

"मेरी आवाजसे तो चराचर कॉपकर ठहर जाता है । तुम कौन हो जो नही ठहरे ?" उसने पूछा, साथ ही अगुलियोकी माला भी तनिक ऊपर उछाल दी ।

"मै तो कबका ठहर गया, अगुलिमाल, तभी जब सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की । पर भला तू कब ठहरेगा, यह तो बता ? कब इस क्रूर कृत्यसे विरत होगा, कब आवागमनसे विराम लेगा ?"

बुद्धके निर्भीक स्वरमे अद्भुत शान्ति थी, अद्भुत स्नेह था, अमिन आत्मीयता थी । अगुलिमालने तथागतका नाम कितनी ही बार सुना था, आज उसने उनके प्रकाशपुञ्जको देखा। उनके तेजोमय मुखमण्डलको वह देर तक निहारता रहा । फिर उसने हाथके धनुष-बाण फेंक दिये, तरकश फेक दी, कटिकी कटार फेक दी, गलेकी अगुलियोकी माला फेक दी, और तथागतके चरणोमे लोट वह बोला—"भन्ते, स्थान दो चरणोमे । अंगुलिमाल क्रूरकर्मसे विरत प्रव्रज्या माँग रहा है ।"

तथागतने अगुलिमालको तत्काल प्रव्रज्या दी । कोसलके राज्यको डाकुओके उपद्रवसे मुक्ति मिली ।

जब नन्दने मण्डनका मूल्य चुकाया !

तब सघ कपिलवस्तुमे ठहरा था। बुद्ध भिक्षाटनके लिए निकले। तपाये सोनेकेसे जिस्मपर जोगिया त्रिचीवर खूब फबता था। नीचे अधोवस्त्र, ऊपर उत्तरासग, सबसे ऊपर सघाटी। ऊँची अभिराम काया कि देखकर गजराज राह छोड दे, देखनेवालेके मस्तक अनायास झुक जायँ। अमिताभ चेष्टा, चाल धीमी, चाप भारी तृष्णा-वासनाको जैसे कुचलती हुई, विपुल नयन नीचे।

आज तथागत कही और न रुके, चुपचाप भाईकी देहलीपर जा पहुँचे। नन्द सौतेला भाई था, तथागतका अन्यतम भक्त, अनुरागका पुंज, शील-सौहार्दका अनुपम प्रतीक, नकुलको लजानेवाले अभिराम कलेवरका निरभिमानी तरुण। मधुर मदिर गायक, स्निग्ध उद्वीणनमे पारगत, रेखावर्णका धनी अभिजात कलावन्त।

सिद्धार्थके महाभिनिष्क्रमणके बाद राजा शुद्धोदनके बस दो ही आसरे थे—नन्द और राहुल। राहुल दूरकी तृष्णा था, बालक, यशोधराकी एकमात्र आशा, बुद्धकी अकेली यादगार। नन्द शुद्धोदनके कार्योमे सभी प्रकार हाथ बटाता, सथागारमे, महलोमे, वनोंमे। बुद्धके जानेके बाद राजाका अनुराग इसी नन्दपर केन्द्रित हो गया था।

सुन्दरी उसी नन्दकी विवाहिता थी, अभी हालकी विवाहिता। कविकी निजूठी कल्पना-सी कोमल, कमल-सी अभिराम, हिम-धवल उसकी आभा, दर्पण-स्निग्ध कान्ति। उभरी कोयोको ढकनेवाली लंबी-भारी पलके जब उठती श्वेत श्याम सागर लहरा उठता, जब गिरती कपूरकी डलीपर जैसे दूजका काला चाँद खिच जाता।

दोनोंकी हृद्गति साथ चलती। दोनो साथ उठते-बैठते, साथ चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते। उनका भाव-बन्धन-स्नेह अखण्ड था। और जगत् जैसे उन्हींके लिए बना था। उन्हींके लिए जागता था। दास-दासियाँ, भृत्य-अनुचर उनकी अहर्निश सेवा कर धन्य मानते। उनके कृपा-कटाक्ष मात्रसे उपकृत हो जाते।

नौकर मण्डनकी अनन्त विभूतियाँ, शृंगारकी अटूट परम्परा प्रस्तुत करनेमे लगे रहते। विविध वर्णो और गन्धोके फेनक, हल्की-तीखी मादक सुरभि, कायाको कान्त और स्निग्ध बनानेवाले अनेकानेक अगराग, विविध शीतोष्ण अनुलेप, चन्दन-उशीरके उबटन, परागबसे चूर्ण, आलक्तक और गन्धबसी मादक मदिरा अनुचर नित्य प्रस्तुत करते, इन्द्रका प्रासाद लजा जाता।

कादम्बरीके सेवनसे प्रियाकी कान्ति जब रक्ताभ द्युतिमती हो उठती, मदिर गायक नन्द तब तन्त्री उठा लेता। जैसे-जैसे उसका राग पसरता, नारीका कोमलाग विकल हो उठता, उसका पुलकित गात सिहर उठता। वह अपने कण्टकित बाहुओको अपने-ही-आप धीरे-धीरे सहलाने लगती। रागकी लहरियाँ उठती और नील अधरमे विलीन हो जाती। और अभी जीवनका यह आरम्भ था, प्रणयका प्रभात।

तथागत जब आये, नन्द सुन्दरीका मण्डन कर रहा था। स्नानान्तर धूप और अगुरुके धुएँसे उसने उसके केश सुखाये, फिर उन्हे अभिमत बसे तेलसे स्निग्ध किया। चन्दनके स्पर्शसे अंगाग शीतल हो गये, गमक उठे। होठोंको आलक्तकके स्पर्शसे लाल कर उसने उनपर लोध्रचूर्ण छिडक दिये जिससे उनकी आभा पाडुर हो गई। केशोको एकत्र कर जब नन्दने उन्हे एक गुच्छमे पीछे बाँधा तब उसे सन्तोष न हुआ, उसने उन्हे झटकेसे खोल दिया। फिर उनकी अनेक वेणियाँ बना उनमे लाल-पीले कुसुम डाले और उन्हे पीछे एकके ऊपर एक सजा छत्राकार गुंजलकके रूपमे प्रस्तुत किया।

सीमन्त और केशतटको आकर्ण निर्मल कान्तिके मोतियोंसे सजा दिया। कान नीलमणिके मकराकृत कुण्डलोंसे दमक उठे।

वैदूर्य-पात्रोंमे रखे चन्दन-कालेयक-केसरके लेपकी ओर फिर नन्द झुका। सुन्दरी पतिके प्रयासका फल दर्पणमे देख अघा गई। जब उसने उसे पात्रोमे शलाकासे लेप फेटते देखा तब वह रजत-पीठ पर जा बैठी। नन्द भद्रपीठ पर बैठ उसके कपोलोपर पत्रलेख करने लगा। श्वेत-रक्तिम हल्के-गाढे रंग शलाकाके घुमाते ही खिल उठे। पहले उसने ललाटके मध्य-नीचे नन्ही-नन्ही केसरकी बिन्दियोका वृत्त बनाया और उनके बीच केन्द्र-विन्दु श्वेत चन्दनका लिख 'भक्ति'की सुघराई देखनेको जब उसने प्रियाका चिबुक उठाया तब सुन्दरीके हाथोका दबाव नन्दके कन्धोपर पडा। प्रकृति और कलाकी उस सृजन-सीमाको सामने देख नन्दका अन्तरंग- बहिरंग नाच उठा। प्रियाके होठ उसने नि शब्द चूम लिये।

फिर नन्द शेष-सम्पादनकी ओर झुका। चिबुकके कन्दर्प गर्तमे अञ्जन-की उसने बिन्दी डाली। काली बिन्दी धवल पृष्ठभूमिपर चमक उठी। बकुलकी फूटी कछियोकी भाँति फिर उसने दोनो ओर भरे कपोलोपर नयन-कोरों तक दो टहनियाँ लिख दी। फिर उनसे चन्दनकी और नन्हीं टहनियाँ फूटी जिनपर लाल नन्हे फूल खिल उठे। दोनोके तन रह-रहकर कंटकित होने लगे।

पर ठीक तभी जब तूलिका केसरके पात्रसे नन्दने उठाई ही थी कि वातायनमे उसकी दृष्टि गयी। तथागतका उन्नत शरीर दृष्टि-पथमे आ अँटका। तथागत शान्त-गम्भीर मुद्रासे नेत्र नीचे किये लम्बे डग भरते चुपचाप चले जा रहे थे, भिक्षापात्र रिक्त था। नन्दकी सारी चेष्टा सहसा कुण्ठित हो गई। तूलिका शिथिल पकडसे छूट फर्शपर गिर पडी। सुन्दरी पतिकी अप्रत्याशित भावभगी देख घबडा कर खडी हो गयी। पूछा, "उद्वेग कैसा, आर्यपुत्र ?" फिर जो खिडकीकी ओर दृष्टि गयी तो उसने तथागतको रिक्तपात्र जाते देखा।

सुन्दरीके अनुराग-बन्ध भी शिथिल हो गये। तथागत द्वारपर आये, देहलीमे भिक्षापात्र बढा गृहस्थको करणीय उपदेश कहा। पर किसीने उनपर ध्यान न दिया। गृहका स्वामी प्रेयसी-पत्नीके शृगार-मण्डनमे रत था, दास-दासी उनके विलासार्थ अंगराग-अनुलेप, मडनादिके विविध उपकरण प्रस्तुत करनेमे व्यस्त थे। कौन सुनता ?

धीर-गम्भीर स्मित हास्यके धनी बुद्ध चुपचाप चले गये। रिक्तहस्त भूखे तथागतको अपनी देहलीसे लौटते देख भाईका अन्तर आकुल हो उठा। नन्द और सुन्दरीकी ऑखे चार हुई, चारोमे नीर भरा था।

नन्दने कहा—"सुन्दरि, आज तथागतके भिक्षाका दिन था !"

नन्दके स्वरमे मथी व्यथा थी।

सुन्दरीका मण्डन अपूर्ण था, उसमे विघ्न होना अशुभका परिचायक था, सौभाग्यकी चिन्ता मण्डित सौन्दर्य पर सर्पवत् कुण्डली मार बैठी। तथागतकी अवमाननाका कारण फिर अपने आपको जान ग्लानि हुई। नन्दका विशेष उत्तर न देकर उसने केवल धीरेसे पूछा—"फिर ?" शकित स्वर उसके भयका परिचायक था।

नन्दने सुन्दरीकी सकारण शिथिलता देखी। उसके दोनो कन्धोको पकडे आतुरस्वर वह बोला—"जाने दो मुझे क्षण भरको, प्रिये, जाना ही होगा। तथागतको मना कर निमिषमे अभी लौटा आता हूँ। मण्डनमे यह विघ्न क्षमा करो।"

"जाओ, प्रिय, राग-रजनसे भिन्न है तथागतके वे दिव्य चरण। उन्हे लौटा लाओ। पर देखो, इसके पहले कि मेरे कपोलोके गीले आलेख सूख जायँ, लौट आना।" स्वर-राग शिथिल था, संकोचविह्वल। अघटित अशुभकी आशंकाको दबाती याचना स्वरकी राह फूट पडी थी।

प्रकोष्ठसे उतरते हुए दोनोके अपराधी जैसे नन्दने जब सुन्दरीकी ओर देखा, उसका अन्तर बिलख उठा, गलीसे बार-बार मुडकर उसने प्रियाके सुलगते अन्तरको देखा। फफकते-बिललाते अन्तरको दबाये सुन्दरी नन्दको

देखती रही। व्यथित काया निस्पन्द थी, रोम-रोममे याचना थी। आँखो-मे बडी-बडी बूँदे टंगी ही टँगी सूख गई।

नन्दने अनुनय की। तथागतने हँस दिया। उसके कन्धेपर प्यारसे हाथ रखा, हाथमे भिक्षापात्र पकडा दिया। सघसे निवासकी ओर बढ चले। आकुलअन्तर नन्द भिक्षापात्र लिये चुपचाप पीछे-पीछे चला। आकुल था कि तथागत आज निराहार रहे।

उधर हृदय मथा जाता था। टीस उठ रही थी। सुन्दरीको शृंगारके बीच ही छोड आया था। उसने कहा था—"इसके पहले कि मेरे कपोलो के गीले आलेख सूख जायँ, लौट आना।" पर वह लौटे कैसे ? भिक्षा-पात्र तथागतके हाथमे देनेकी दु शीलता कैसे करे ? विलासरत वह उपेक्षाका घृणित अपराध पहले ही कर चुका था। चुपचाप अवसरकी आशामे बुद्धके पीछे वह चलता गया। पर अवसर हाथ आया नही। वह बार-बार कुछ कहना चाहता, बार-बार तथागत उसकी बात मुँहसे निकलनेके पहले ही कुछ पूछ बैठते, बात बदल जाती। भीतरकी बात भीतर ही रह जाती। नन्द विकल हो उठता।

अन्तरको यत्नसे समेट साहस कर नन्द फिर कुछ कहना चाहता, तथागत प्रणाम करने वाले लोगोसे आशीर्वचन कहने लगते, क्षेम पूछने लगते। राजमार्ग छूट गया, बीथियाँ चुक गई, कालके क्षण दीर्घ होते हुए भी सत्वर निकलते गये, पर बुद्धको नन्दकी बात सुननेका समय नही मिला। नन्द अपनी बात कह नही सका। सुन्दरीके क्षण कल्पवत् बीतते रहे। मण्डन उसका उपहास कर उठा।

तथागत नगरसे बाहर हो गये। नन्द भिक्षापात्र लिये उनकी छायाकी भाँति चुपचाप पीछे-पीछे चला, कुछ गुनता, सुन्न। और वे दोनो अब अकेले भी न थे। जनसमूह तथागतके पीछे चल रहा था। यही उनके उपदेश का समय था। संघ स्वय शाक्यसिहकी प्रतीक्षामे था। असख्य नर-नारी निकट-दूरके गाँवोसे आये हुए थे, कपिलवस्तुके नागरिकोसे सघस्थली भरी थी।

तथागत नन्दपर स्मित दृष्टि डाल उपदेश-वेदीपर जा बैठे। जन-हिताय उनकी वाणी सस्वर हुई। पहला पहर बीत गया। नन्द भिक्षा-पात्र लिये उद्विग्न उन्मन खडा था। तथागतके मगल-वचन उसके कर्ण-कुहरोको न बेध सके। उनमे सुन्दरीका अनहद नाद भरा था—"इसके पहले कि मेरे कपोलोके गीले आलेख सूख जायँ, लौट आना!"

तथागत उठे, नित्यके कार्यमे लगे। नन्दसे मिलनेका उन्हे अवसर न मिला। सुन्दरी प्रकोष्ठमे खडी अब भी खिडकीकी राह देख रही थी। शृगारके फूल उसने मसल डाले, सीमन्त-केशतटके मोती उसने बिखेर दिये, मण्डनके भक्ति-विशेषक (पत्रलेख) उसने शक्ति भर पोछ दिये। नन्दकी बिलखती आँखे उसकी आँखोमे गडी चुभती रही, पर नन्द नही आया।

नन्दको तथागतने बरबस काषाय चीवर दे दिये थे। व्याकुल नन्द आचार के लाजसे तथागतकी उपेक्षा न करता, पर तथागत उसका इष्ट जान कर भी उसकी उपेक्षा करते गये। उसका विलासकी ओर लौटना उन्हे अभीष्ट न था।

दिन बीते, सप्ताह बीते, माह बीते। निदाघकी आग चराचरको झुलस गई, पावसके मेघ बिलख-बिलख रोये, शरत्का निर्मल आकाश व्यग हँसा, हेमन्तने कमल-वनको उपल मारे, शिशिरके उघरे-नगे तरु-लताओपर कामुक वसन्तने पल्लव-फूलोके वितान-ताने, पर नन्द न लौटा।

रोम-रोम उसका शिथिल था। उसके अतरगका कण-कण क्रन्दन कर रहा था। धीरे-धीरे प्रकृतिके उपकरण उसके लिए सारहीन हो गये। दृश्य जगत् उसे निरर्थक लगने लगा। धीरे-ही-धीरे उसकी कान्ति निष्प्रभ हो चली, चेष्टा भावहीन, मानस निरीह। सुन्दरीकी स्मृति उसे हजार संकेतोसे बुलाती पर नन्द जडवत् पडा रहा। जब तब उसे सुन पडता—"इसके पहले कि मेरे कपोलोके गीले आलेख सूख जायँ, लौट आना!"

यशोधराका कबका सूना पडोस भी सुन्दरीके क्रन्दनसे नये स्वरसे बिलख उठा, पर नन्द न लौटा, न लौटा।

मुग़लिया दस्तरख़ान और शेर !

बापकी जागीरपर दूसरी माँके दाँत लगे थे और मासूम नौजवान बीरानोमे भटक रहा था। आज जौनपुरके दरबारमे नौकरी कर ली, कल क़ुरान नकल कर लिया, परसो तलवारका हाथ मार शेरका काम तमाम किया। पर मकसद उसका नौकरी न था, न कुरान नकल करना, न शेर मारना। लोहानियोसे उसके साझेका कोई अर्थ न था, आँखें उसकी दिल्ली-के तख़्तपर लगी थी, उस शेर ख़ाकी।

चुनारके घेरेसे वह बिजलीकी तरह निकल गया था, जौनपुरकी लडाईमे तलवार म्यानमे कर वह बाबरसे जा मिला था। बाबर लमहे भरमे उसे भॉप गया। लिये-लिये आगरे पहुँचा। बगाल और बिहारमे लोधी अब भी प्रबल थे, राजमहलसे कनौज तक लोहानियोका विकट मोर्चा था। शेर खा हर मोर्चेका मरकज था।

आगरेके नये खुदे तालाबोके बीच नये लगे बगीचोमे, राजा बिकरमाजीत कछवाहेके पुराने महलोके सामने बाबरने सल्तनतकी पहली दावत की। दावतमे ख़ास मेहमान रूखा शेर था जिसने सिवा जंगलमे खुले दहाडनेके न कभी मुगलिया एख़लाक जाना, न दस्तरख़ानकी शाही न्यामतें जानी। देहाती अफ़गान, खूँख़ार भोजपुरिया, शोख़ किसान, रैयतका प्यारा शेर बाबरका बगलगीर हुआ।

बाबरकी तेज निगाहने उस ख़तरेको पहचान लिया था जो उसके प्यारे बेटे हुमायूँके भविष्यपर काले मेघकी तरह छा सकता था। उसे उसने कुचलकर नही सुलहसे सर करना चाहा। उसने सोचा, कुछ अजब नही जो दस्तरख़ानका याराना सुलूक मैदानकी तोपोसे कही ज़्यादा कामयाब हो जाय।

दस्तरखानपर खानेकी अनेक किस्मे चुनी गई, एकसे बढकर एक। पुलावकी बेइन्तहा किस्मे—ईरानी, नरगिसी, नूरमहली, मोती। रोटियोके प्रकार—नानतुनक, नानगुलजारत, हवाई चपातियोसे भारी शीरमाल तक; गोश्तकी अनगिनत थालियाँ, बीचमे मुर्गमुसल्लम; और मादकसे मादक शराबसे भरे सागर। दिनोकी तैयारियाँ, प्लेटोसे भापके साथ उठनेवाली कस्तूरीकी खुशबू, नज़रको बेबस कर देनेवाले जायफरानके रग। फलोके बेशुमार ढेर, मिठाइयोकी बेइन्तहा कतारे, शोरवे, रुपहले वरकोसे दबी फिरनियाँ।

सुनहरी थालें, जिनकी चमक और चिकनाहटपर निगाह फिसल पडती थी, सैकड़ो चित्रित प्लेटें, कीमतीसे कीमती, जिन्हे दौलत और लूट मुहैया कर सकती थी, जिन्हे चीनकी अनुपम कला सिंगार सकती थी, हजारो रिकाबियाँ, बिल्लौर और पन्नेकी, लाल और नीलमकी, उन कागज़ी पत्थरोकी जिनका वज़न झडे परोसे हल्का था, नज़र जिनके पार देख लेती थी, पैमानोकी हजार-हजार क़िस्मे जिनकी धातु नज़रसे ओझल रहे, जिनके पेय जैसे निराधार मेजपर खडे हो। छुरी, चम्मच और काँटे, जिनके इस्तेमालका तैमूरिया खानदानको खासा ग़रूर था। कहते हैं इनका इस्तेमाल, इनके खास तरीकोका इस्तेमाल, मुगलोने चीनियोसे सीखा था, तुर्कोको सिखाया था, तुर्कोने यूरोपको।

और दावतका मेज़बान था चीनी चगेज़ और समरकन्दी तैमूरकी एख़लाकी बुलन्दियोका वारिस कलन्दरी बाबर। और मुगलिया एखलाकके लामिसाल पाबन्द हुमायूँके इंतजामकी ही यह दावत नमूना थी। मुगल दावतोका दस्तूर अपना था, उसकी तमीज़ अपनी थी, रस्मे अपनी थी। मजाक मगर निहायत शाइस्ते, पुरलुत्फ, जब-तब तीरकी तरह तीखे। बाबर लासानी खुशख़त था, कलमका बादशाह, इबारतके राज़का माहिर। हल्की चुटकियोके बीच आबेहयातकी चुस्कियाँ चलती, प्लेटोपर काँटे फिसलते, छुरियाँ चलती, पर क्या मजाल कि कही ज़रा-सी आवाज़ हो

जाय। दस्तरखानके रवैयेको बाबर नमाजकी निष्ठासे निबाहता। उसी दस्तरख़ानको ओर बाबर शेरको ले चला।

शेर खॉ बीचमे बैठा, उसके बाये बाबर, दाये हुमायूँ, दोनो ओर अस्करी और हन्दाल और सामने और दूर तक दोनो ओर सल्तनतके उमरा बैठे। मुगलिया अमीरोकी बेइन्तेहा नस्ले थी, उनकी शान शाहोको नसीब न थी। अमीरी खुत्तल-कम्बोजके, बल्ख-बदख्शॉके, समरकन्द-बुखारा के, बामियान-खुरासानके, दमिश्क-कुस्तुन्तुनियाके। बातके धनी, तलवारके चितेरे, चुप थे। एक अजीब खामोशी छाई हुई थी। थी वह दावत, जशन उसका मकसद था, पर उमरा बाबरकी वह बारीकी समझ न पाये थे जिसने शेर खॉ जैसे पुरबिये किसानको, गँवार पठानको यह रौनक बख्शी थी।

उस चुप्पीमे शेरको बेइज्जत करनेकी हसरत भरी थी। कहॉ मुगलिया दस्तरख़ानका एखलाक और तमीज, कहॉ बिहारका वह फूहड़ मुँहफट बेडौल अफगान, नाचीज लोहानियोका नाचीज नौकर। कुतूहल था, कैसे खायगा? कैसे छुरी पकडेगा, कैसे कॉटा? इनसे उसे छुआछूत कहॉ? मजा आ जायगा। चाहे ऐसे गॅवारको शाही दावतका मेहमान बनाना अमीरोंको खल गया हो, बेशक उसकी तहजीब रग लायगी, ग़जब ढायगी। छुपी नजरे चुपचाप एक दूसरेसे मिल रही थी, घमण्ड और हिकारत भरी अपनी तजवीजे एक दूसरेसे बदल रही थीं।

शेर चुप था। बाबर समझ रहा था कि शायद शाही शान उसके मेहमानको दबाये दे रही है, मुगलिया अमीरोका रोब उसपर गालिब हो रहा है। मेहमानको वह सिर-ऑखोंपर लिये हुए था। अमीरोका छुटपन उसमे मुतलक न था। खुद नाचीज बना हर तरहसे वह उसकी पसन्द जाननेकी कोशिश कर रहा था, इसकी भी कि शेरको वह अनजानी, तहजीब बोझ न हो जाय। बार बार वह ऐसी बाते कहता जिससे पठान हँसे, बोले, उससे अपनापा ज़ाहिर करे। खाना शेरको ही शुरू करना था,

रस्मके मुताबिक, क्योंकि मेहमान वही था। इससे सब उसीकी ओर देख रहे थे। सही, ऐसा दावतका अन्दाज उसे सपनेमे भी न हुआ था। अकेला होता तो शायद परेशान हो जाता कि किस चीजसे खाना शुरू करे। उसकी तेज नजरोसे छिपा भी न रहा कि गो बाबरका सुलूक उसके साथ बेबनावट है, अमीरोकी निगाहे मतलबसे खाली नही।

बाबरने उसकी ओर देखा, फिर सामने रखे मुर्ग-मुसल्लमकी ओर इशारा किया। शेर छिन भर चुप रहा, एक बार काँटे-छुरियोकी चमक उसकी नजरमे कौधी। सहसा वह हिला और उसने बगलसे खजर खीच लिया। आँखे चमकी, यकायक बीसियो तलवारे म्यानोसे निकल पडी। पर बाबर खामोश था, गो उस ओरसे नामुखातिब भी न था। जानता था कि जरूरत पडी ही तो उसकी कलाईमे कूवत है। बगलोमे जवान दबा किलेके परकोटोपर वह दौड चुका है, तीस-तीस चोटमे दरियाको पार कर चुका है। अगर पठान शेर है तो वह भी आखिर बाबर है।

पर शेर खाँको न तो बाबरके इन विचारोका पता था, न खूनकी प्यासी उन तलवारोका जो उसके सिरपर झूल रही थी। वह खजरसे मुर्ग काट उसके टुकडे खजरकी नोकसे उठा-उठा खामोश खाये जा रहा था। तमीजदार अमीर आँखे फाड-फाड उसे देख रहे थे।

बाबरकी नजरसे तलवारे म्यानोमे लौट गयी। खाना शुरू हुआ, खामोशीमे। खामोशीमे ही खत्म भी हुआ। गजबकी मुर्दनी दावतपर छाई हुई थी जो शराबके दौरोसे भी न टूटी, बाबरकी मुसकराहट, उसकी चुहलबाजियोसे भी नही। उसकी चुहलके जवाबमे अमीरोके कहकहे अस्वाभाविक लगते, उनकी खोखली आवाज जैसे बेमानी हो जाती।

खाना खत्म हुआ। अमीर शेरको खुश करनेके लिए उसे घेरकर खड़े हुए, दस्तूरके मुताबिक उसे नजरे देने लगे। बाबर तभी हुमायूँको एक ओर खीचकर कह रहा था—"बेटे, उस पठानसे होशियार रहना,

मकसद हासिल करनेके लिए वह किसी जरियेको बेजा न समझेगा। कोई कौल, तहज़ीबकी कोई पाबन्दी उसके आड़े नही आ सकती!"

हुमायूँ इस सीखका भेद तब न पा सका। उसका राज उसने बादमे जाना जब शेरशाह पच्छुमका नाका-नाका बन्द किये बक्सरके पास चौसेमे उसे उसीके खेमोमे कैद कर बैठा था। हुमायूँ तबाह था—राहे बन्द थी, रसद मिलनी दुश्वार थी फिर भी वह हिल तक न सकता था। और शेर आख़िरी उछालके लिए पूँछ पटक रहा था।

हुमायूँने आधीरात तक सरदारोसे मशविरा किया। तय पाया कि सुलहका पैग़ाम भेजा जाय। उसे लेकर राजदूत जब शेरशाहके खेमेमे गया तब सरदारोंने मजदूरोसे भरी खाइयोकी ओर इशारा किया। राजदूत समझ न सका पर उसने जो देखा वह यकीनके बाहर था—शेरशाह कमर कसे अधनंगे बदन फावडा चलाये जा रहा था। चाँदनीमे दूतने देखा, शेरके दमकते गोरे बदनसे पसीना चू-चूकर जमीनको गीला कर रहा था, और खाई बराबर चौडी होती जा रही थी।

सुलह हुई। हुमायूँकी सेनामे जशन होने लगे। यकायक सुबहकी गोधूलीमे तलवारे चमक उठी—शेरने हमला किया था। हुमायूँ घोड़ेपर भागा। गंगा चढी थी, पर दुश्मनकी चढाई उससे ज़्यादा खतरनाक थी। और उसने भरे दरियामे घोड़ा कुदा दिया। भिश्ती न होता तो शाहजादेकी ज़रा सी जान गई ही थी।

और जब बीरानोकी खाक छानता हुमायूँ ईरानकी ओर भागा जा रहा था तब उसे बापकी नसीहत बार-बार याद आ रही थी—"बेटे, उस पठानसे होशियार रहना। मक़सद हासिल करनेके लिए वह किसी जरियेको बेजा नही समझेगा। कोई कौल, तहज़ीबकी कोई पाबन्दी उसके आड़े नही आ सकती!"

जंब जांनमाजके नीचे दिल्लीका तख़्त पड़ा था

सिन्धु, आमू, यारकन्द, ब्रह्मपुत्र—चारोंका स्रोत जोरकुल झीलमे है। जोरकुलपर पामीरोका साया है। पास ही कश्मीरके उत्तर गिलगितके उतारपर कम्बोज है और पच्छिम आमूके घेरेमे वखाँ। आमू पंजेकी अँगुलियोकी तरह अपनी शाखें फैलाये नीचे उतर जाती है, वक्षाब और अक्षाबके द्वाब खुत्तलको पीछे छोड़ती। बायें चित्राल और हिन्दूकुश छोडती, बदख़्शा और बल्खकी खुशनुमा घाटियाँ सीचती, मैदानोमे बल खाती नदी अरलके समुद्रकी ओर ढुलक जाती है।

बल्ख (बाख़्त्री, वह्लीक) की घाटी बराबर हमलावरोको आकृष्ट करती रही है। ग्रीक, शक, कुशान, बार-बार ईरानियों और एक दूसरेसे टकराते रहे है। कभी उसकी यादने फिरदौसीकी कलममे जादू भर दिया था, 'शाहनामा' के सफहे बदख़्शा-फरगनाकी रौनक और दिलेरीसे भर गये थे। आमूके तीर ईरानी सूरमा रुस्तमने वही कभी अपने बेटे सोहराबको भालेपर तोल दिया था। वही सिकन्दर कभी हिन्दूकुश लाँघ दाराके भगोडे शाहज़ादोकी खोजमे उतर पड़ा था।

कभी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने सिन्धुकी सातो धाराओको पार कर कोजक अरमान पहाड़ोको बगली दे उसी वह्लीक (बल्ख) मे हूणोको धूल चटा दी थी, फिर उसके घोडे जो आमू तीरकी केसरकी क्यारियोमे आलस-से लोट पडे तो उनके अयाल फूलोसे लाल रँग गये थे। उसी बल्ख-बदख़्शा के लिए बाबरने तेरह-तेरह बार तलवार तोड़ी थी। उसकी औलादने बार-

बार मार खाकर भी उधर रुख किया—अकबरने, जहाँगीरने, शाहजहाँने।

उसी बल्खमे, आमू दरियाके तीर—

आमू रेंगती चली जा रही है। उसके आँचलकी क्यारियोपर जवानी बरस रही है। केसर फूली हुई है, लाल-लाल। पर लहूसे सिची भी है। जमीन इन्सानके खूनसे तर है। दरियाका पानी रक्तसे रँग गया है। घाटी मारो! मारो! की आवाजसे गूँज उठी है। मैदान तड़पते घायलो और लाशोसे पट गया है।

तीन दिनसे घमासान छिडा है। दिल्लीके मुगलोने दूरकी बपौतीपर छापा मारा है। चार पीढियाँ लडती रही है, पाँचवी दखल कर सकी है पर उजबक तुर्कोको यह मजूर नही कि गैर उनकी जमीनको भोगें, उनपर हुकूमत करें। शाहजहाँने बल्ख-बदख्शाकी उस केसरिया जमीनपर कब्जा कर लिया था पर उसका इकबाल अकेला उस इलाकेको न सम्हाल सका। उजबक बेगके रिसालोने उसे मुगलोसे छीन लिया। शाहजहाँने कुमक भेजी। औरगजेब दूर दकनसे उसे लिये आ धमका। घमासान मच गया। उजबकोके धावे जगत्प्रसिद्ध थे। उन्होने शाही फौजको तितर-बितर कर दिया। उसे लाज बचाना कठिन हो गया।

शाम हो चली थी। उजबकोकी तेगे मुगल सेनाकी पीठपर जख्म कर रही थी। औरगजेब अपनी मुट्ठी भर हरावल लिये भयानक मार कर रहा था। उसकी दिलेरी दुश्मनोको जीतमे भी बेताब कर रही थी। सूरजका गोला सहसा पहाड़ियोके पीछे सरका। मग़रिबका नमाज सिरपर आया। औरगजेब आज तीसरे पहरसे ही हाथी छोड़ घोडेपर आ गया था। हमलेकी चीख-पुकार और बरसते तीरोके बीच वह घोडेसे उतर पड़ा। लडती फ़ौज़ोके बीच दुश्मनोसे घिरी जमीनपर उसने जानमाज़ बिछा लिया, वह नमाज़ अदा करने लगा।

साथी बडी सम्हालके साथ पीछे हट रहे थे, रणबाँकुरे राठौर और बिकट बलूची, बाके मुगल और बीहड पठान। सहसा वे रुक गये।

शाहजादेको घेरकर खडे हो गये, दुश्मनके नेजे उन्होंने अपने सीनोपर लिये। नेजे रुक गये, तीर तनी कमानोपर चढे रह गये, सन्नाटा छा गया।

किसीने दौडकर दुश्मन कबीलोके सरदार बेगसे कहा। खून टपकती नंगी तलवार लिये बेगने देखा और देखता रह गया। बोला—"खबरदार जो किसीने उसे हाथ लगाया ! चलो, छोड़ो, उसे कल जीत लेगे। उसे नमाज मुबारक ! ग़जबकी दिलेरी है इस दीवानेमे।"

बेग रिसालोंके साथ उत्तरके धुँधलकेमें बढा, आमू दरिया हैरतमे आ जरा ठमका फिर मैदानोमें रेग चला, अपनी यादे सम्हालता, जैसे कल-कल आवाजसे पूछता—यह कौन है? ऐसा तो किसीको न देखा—न रुस्तम सोहराबको, न दारा-सिकन्दरको, न शक-कुशानोको, न बिकरमाजीत को !

शाहज़ादोमे जंग छिड चुका है। दिल्लीके तख्तपर बैठना कुछ खेल नही। चार-चार है, बैठना एकको है, और वह एक तभी उस तख्तपर बैठेगा जब बाकी तीन क़ब्रमे सो चुके होगे।

धरमातकी लड़ाई औरगज़ेबकी कीरत जसवन्तकी पीठपर लिख चुकी है, रक्तसे लाल सिप्रामे आठ हजार राजपूत जलसमाधि ले चुके है। पर आखिरी फैसला सामूगढमे होनेवाला है। मुगलोकी राजधानीमे चारो ओरसे फ़ौजे उतर पडी है, उमड़ी आ रही है। सल्तनत ख़तरेमे है। शाहंशाहकी औलादने उसके रूबरू देखनेकी जुर्रत की है, शेरकी मूँछका वाल किसीसे छू गया है !

बूढ़ा बीमार शाहजहाँ दिल्लीसे भागा-भागा आगरे पहुँचा। दाराके मुँहपर कालिख पुती है, राजपूतोके मुँहपर भी। दोनो औरगजेब और मुरादके खूनसे उसे धोयेंगे। एक लाख सवार, बीस हजार पैदल, अस्सी तोपे लिये दारा आज मैदानमे उतरा है। सल्तनत और शाहजहाँकी शान, किस्मत और रजपूती आन सब कुछ दाँवपर है। दकन और गुजरात, दिल्ली और राजपूताना आज जूझनेपर उतारू है।

गरमी जवानीपर है, आगरे-सामूगढकी गरमी, सात जूनकी। सेनाए आमने-सामने खडी है। एक दूसरेको घूरती। जवाँमर्द गरमीसे बेहाल है, कवचोके भारमे दबे गरमीसे बेहोश हुए जाते है। घोडे रानोके नीचे तिल-मिला उठते है, जहाँ-तहाँ चुप-चाप बैठ जाते है, ढेर होकर, फिर नही उठते।

सुबहका वक्त है, अभी तक लू चलती रही है, और अब सूरजका लाल दहकता गोला तेजीसे उठता आ रहा है। औरंगजेब व्यूह बनाता है—हरावलमे दकनकी फौज लिये वह आप है, उसके दाये बाजू अपने गुजराती रिसालोके साथ मुरादबख्श और दायें बहादुर खाँ। हरावलके सामने तोपख़ानेके साथ औरगजेबका बेटा मुहम्मद खड़ा है।

दाराकी फ़ौजबन्दी उसका जवाब है। सामने उसकी तोपे फौलादी जंजीरोसे जकडी है जिससे दुश्मनके रिसाले उनकी कतार तोड़ न दे। तोप-ख़ानेके पीछे पीतलकी हल्की तोपे लिये ऊँटोकी कतारे है, उनके पीछे पैदल बन्दूककी। ख़लील-अल्लाह खाँ दाहिने तोडपर है, रुस्तम खाँ बाये बाजू और दोनोके बीच हरावलके मोर्चेपर खुद दारा, मौतसे रार करनेवाले अपने राजपूतोको लिये।

सहसा तोपे दग उठी, हाथी-घोड़ोको भड़कानेके लिए शोले फेंके जाने लगे, बन्दूकोसे लपटे निकलने लगी, तीर हवामे उड़ने लगे। दाराका अगला भाग उसके बेटे सिफ़िर शिकोहके जिम्मे था। उसने ज़ोरसे टकराकर मुहम्मदकी तोपें तितर-बितरकर दी। साथ ही रुस्तमने धावाकर औरगजेबके दाहिने बाजूपर चोट की। लगा कि बाजू चकनाचूर हो जायगा पर हरावलने घूमकर उसे सम्हाला। अब तक दोनो ओरके व्यूह टूट चुके थे। सभी सबके निशाने थे।

मेघकेसे स्याह सिहली हाथीपर चढ़ा दारा घुड़सवारोसे घिरा आगे बढा और औरंगजेबपर जा टूटा। हज़ार जानोके दामो उसने दुश्मनकी

तोपोंपर कब्ज़ा कर लिया, साँड़नी सवार और पैदल उसकी चोटसे कुचल गये। घुडसवार घुडसवारोसे टकराये, जाने हथेलियोपर नाचने लगी। दारा बाबरकी जंगी बुलन्दियाँ रौदने लगा, राजपूत अपनी नस्लके जौहर दिखाने लगे। तरकश खाली हो गये, भाले टूट गये। तब दारा और राजपूत नेजे और तलवार लिये शत्रुकी कतारोमे पिल पडे। शत्रु भागा।

औरगजेब अड़ा रहा। किस्मतने, लगा, करवट ली। पर वह जमा रहा उसके रिसाले चोट खाकर पीछे हट गये थे। मुश्किलसे हजार घुड़सवार उसे घेरे लड़ रहे थे। बार-बार मुराद खबर भेज रहा था—"लौटो, भाईजान, लौट पडो। मैदानमे मौत उतरी है। जीत आज न सही, कल सही, पर जानको मौतके हवाले न करो!"—खुद शेर-सा दहाड़ता, लडता। तीन हजार उजबकोने उसपर एक साथ हमला किया, रन्तेला राजपूतोके बीर सरदार रामसिहने हौदेकी रस्सी काटनेको बर्छा फेका। मुरादने ढाल पीछे बैठे बालक बेटेपर उठा दी और रामसिहको ढेर कर दिया।

औरंगजेबने भाईका सन्देश सुन लिया था, पर उत्तर उसका उसने और तरह दिया। "हाथीके पैरोमे काटेदार जजीरे डाल दो, जंजीरे जमीनमे गाड दो। सामूगढका मैदान करवला होगा।" हाथीके पैरो काटेदार जंजीरे पड गई, जजीरे जमीनमे गाड़ दी गई। सूरजके घोडे ठिठक गये।

फिर आवाज़ आई—"दिल, यारॉ! खुदा है खुदा है!" दक्नी-गुज-राती रिसाले साहस कर लौट पडे। सहसा चमकता सूरज बीच आसमानसे गायब हो गया। शामतका मारा दारा हाथीसे उतर फौजकी नजरोसे ओझल हो चुका था।

फिर क्या था, भगदड मच गई। केवल बूँदीके राजपूत केसरिया लेबासमे रावराजा छत्रसालके पीछे औरगजेबके हाथीकी ओर बढे जा रहे थे। पिछली रात सीकरीकी सूनी दीवारोके सायेमे रावराजाने प्रेयसी

जहाँनाराको वचन दिया था—"शाहजहाँका सिंहासन जो खतरेमे पड़ा तो मैदानसे नही लौटूँगा।"

कठोर विकराल छत्रसाल चुपचाप भागते मित्रो, उमडते शत्रुओके बीच औरगजेबके हाथीकी ओर बढ़ा चला जा रहा था। उसके राजपूत उसी-की तरह कठोर विकराल चुपचाप घोडे बढाये दुश्मनोमे धँसे जा रहे थे। औरगजेबका हौदा तीरों और भालोसे बिधा काँटोभरी साही-सा दीख रहा था।

मौतकी जैसे एक धार-सी बह गई। हाथीके चारो ओर केसरिया राज-पूतोकी लाशोंका अम्बार खडा था। केसर फूली ज़मीनपर खुदाका शुक्रिया अदा करने जब औरंगजेब खडा हुआ तब जानमाजके नीचे दिल्लीका तख्त पडा था।

"तख़्तका नूर तुम हो, मैं तो उसका चौखटा भर हूँ!"

जहाँगीरका अरमान पूरा हुआ। नूर-महल 'नूरजहाँ' बनी। तख्तकी रौनक बढी। जहाँगीरने सल्तनतकी बागडोर नूरजहाँको सौप दी। उसके लिए एक खुराक अफीम और दो प्याले शराब काफी थी।

नूरजहाँने साम्राज्यकी बागडोर सम्भाली। नारीकी हुकूमतसे कुछ पेशानियोपर बल पडे, कुछ तेवर बदले, पर जहाँगीरकी शानमे किसीको कुछ कहने-करनेकी हिम्मत न हुई। फिर भी आग दबी-दबी सुलग रही थी, खासकर बेटोके दिलोमे।

जहाँगीरने जिन्दा बापसे बगावत की थी। बडा बेटा खुसरू मचल बैठा। बापने बेटेकी पलके सिलवा दी। दूसरे बेटे खुर्रमने बडे भाईको दक्खिन ले जाकर मौतके घाट उतार दिया। जहाँगीरका प्यारा था तीसरा बेटा परवेज, इसलिए कि वह बापके बराबर 'पी' सकता था। खुर्रमको जहाँगीर पुचकार-पुचकार कर घूँट पीकर जी हल्का कर लेनेको कहता, पर खुर्रम जामसे मुँह न लगाता। उसका-सा गम्भीर, शालीन मर्द सारी सल्तनतमे न था। नूरजहाँको सबसे छोटा बेटा शहरयार प्यारा था जिसने उसकी बेटीको ब्याहा था।

पर राजधानीमे नूरजहाँका भाई और खुर्रमका ससुर वज़ीर आजम आसफ़खाँ दामादके हकोका पहरुआ था। खुर्रम बादमे शाहजहाँके नामसे आगरेकी गद्दीपर बैठा। पर यह तबकी बात है जब अभी वह दक्खिनका सूबेदार था। उसने बगावत की, पर चोट उल्टी पड़ी। वह बिहार-

बंगाल भागा और वहाँ स्वतन्त्र मालिक हो जानेकी फिक्रमे लगा। पर वहाँसे भी दक्खिन भागकर उसे मालिक अम्बरकी शरण लेनी पडी। आगरेमे बापके पास बेटोको रख देनेपर माफी मिली।

नूरजहाँने देखा कि कामयाबी मुश्किल है। अब वह सेनाके पीछे पडी। सेनापति महाबतखाँ था। मलकाने उसे फोड़ना चाहा, पर वह अपनी जगहसे हिला तक नही। नूरजहाँ जल गई। उधर जब महाबतखाँने देखा कि उसका गुस्सा उसकी जानको खतरेमे डाल सकता है, तब उसने नामुमकिन कर गुजरनेपर कमर बाँधी। जहाँगीर पजाबमे था। काबुल-की बगावत दबानेके लिए जैसे ही वह झेलम बाँधने चला तभी महाबतने हिम्मत कर उमे सहसा पकड लिया।

जहाँगीरके जिस्मको कोई हाथ लगाये, यह नूरजहाँको कब गवारा हो सकता था। उसने फिर तो वह किया जो मर्दके लिए भी कठिन था, जिससे उसका नाम जवाँमर्दीके इतिहासमे अमर हो गया।

शेरनीकी तरह वह दुश्मनपर पंजा मारकर कैदसे निकल गई। महाबत-के सिपाही कुलाँचपर-कुलाँच मारते रहे, पर नूरजहाँ हाथ न आई। जहाँगीरकी शरीर-रक्षक सेनामे वह जा मिली। पतिके दुश्मनोके विरुद्ध वह मुट्ठी भर शरीर-रक्षकोको लेकर बढी और हाथीपर बैठ उसका संचालन करने लगी। हाथमे उसके धनुष-बाण थे। पीठपर तरकश और गोदमे शहरयारकी नन्ही बेटी, अपनी प्यारी नतिनी। आगसे खेल रही थी वह, पर नारी आगसे खेलनेसे कब हिचकी है ?

महाबतकी सेनाने ऐसा कभी न देखा था, सहम गई। उसके बाँके राजपूत लडाईकी इस नयी स्थितिको देख किंकर्तव्य-विमूढ हो गये। आज्ञा पा नूरजहाँपर हमला करने चले फिर तो वह घटना घटी जिसे देख सूरजके रथके घोड़े चमक गये। जमानेने आँखे फाड़-फाड़ देखी वह लड़ाई, जिसे औरतने खुले मैदानमे हाथीपर सवार हो हिन्दुस्तानके सबसे बड़े सिपहसालारसे लड़ी।

महावतके राजपूतोने नदीका पुल जला दिया। पर मलका रुकनेवाली न थी,। वह नदीमे कूद पडी, हाथीके साथ। उसकी गिनी-चुनी फौज भी झेलममे कूदी सवार, पैदल सभी। जहाँ पानी थोडा था वहाँ भी भीड देखने लायक था सवार-से-सवार टकरा गये, हाथीसे हाथी, पैदलसे पैदल। हाथी-घोडोका जमघट हो गया। राह मिलनी कठिन हो गई। जो गिरे फिर उठ न सके, घोड़ोके खुरोसे कुचल गये, हाथीके पैरोके नीचे आ गये। कुछ डूब गये, कुछ बह गये, कुछ जान बचाकर भागे।

दुश्मनका रुख़ नूरजहाँपर था। सबसे खूँख्वार हमला उसीपर हुआ। राजपूत जो मिलकर भाला फेके तो हाथीका मस्तक पार कर दे, उसपर चढ दौडे। महावत उनके आगे था। राजपूतोने उसके हाथीको घेर लिया। उसके रक्षक उन्होने उसीके सामने काट डाले। उसके चारों ओर गोले फट रहे थे। हौदा तीरोसे भर गया था। एक तीर आकर गोदमे बैठी शहरयारकी बच्चीके लगा, जिसने उसे जख़्मी कर दिया। नूरजहाँ जानपर खेल रही थी। लडना जूझनेसे कम न था, पर जब-जब उम बीच जहाँगीर-की कैद उसे याद आती तब-तब उसका क्रोध चण्डीका रूप धारण कर लेता। वह मैदानसे हिली नही। ढाल उसने बच्चीके ऊपर रख दी।

दुश्मनोने उसका महावत मार डाला। भालों और तीरोकी चोटसे बिलबिला कर आखिर उसका हाथी भाग चला। सामने खतरा देख वह सहसा फिरा और झेलममे कूद पडा। डूबता-उतराता वह उस पार निकल गया जहाँ नूरजहाँकी बाँदियाँ मलकाके ख़तरेको देख छाती पीट रही थी, धाड़ें मार रही थी। रोती-चीखती वे दौडी और लौटे जख़्मी हाथीको घेर कर खडी हो गई। पर जख़्मोसे भरी नूरजहाँको ख़ूनसे भीगी हौदेमे जो बैठा पाया तो उनके ताज्जुबका ठिकाना न रहा। नूरजहाँ इतमीनानसे बैठी चीख़ती बच्चीके जिस्मसे तीर निकाल रही थी।

पर दुश्मन सर न हुआ। बादशाह महावतख़ाँकी कैदमे पड़ा रहा। अब नूरजहाँने नीतिसे काम लेनेका निश्चय किया। साहस कर वह महावत

ख़ाँके पास पहुँची और पतिकी कैदमे शामिल हो गई। धीरे-धीरे बादमे उसकी नीति फल निकली। फौजके अफसर उसकी बहादुरी, हिम्मत और बेबसीसे विजित हो गये और एक दिन जहाँगीरने सहसा अपनेको आजाद और फौजको सामने सिर झुकाये पाया। नूरजहाँकी आँखें मुसकरा रही थी। जहाँगीरने पूछा—"रानी, कहा नही था कि तख़्तका नूर तुम हो, मै तो उसका चौखटा-भर हूँ ?"

नूरजहाँने उसके बालोंमे अपनी उँगलियाँ दौडा दी। फिर तो काबुलकी मुश्किले आसान होते ही शाही पडाव कश्मीरकी ऊँचाइयोपर चढ चला, शालीमारके बहिश्ती बाग़मे जा उतरा। सुकुमार हाथोने फिर ऐसे गुलाबकी कलमें छाँटी और उस झेलमकी केसरिया क्यारियाँ सम्हाली, जिनका निचला बहाव अभी मलकाके लहूसे लाल था।